हीरा-प्रवचन पीयूष
भाग-5

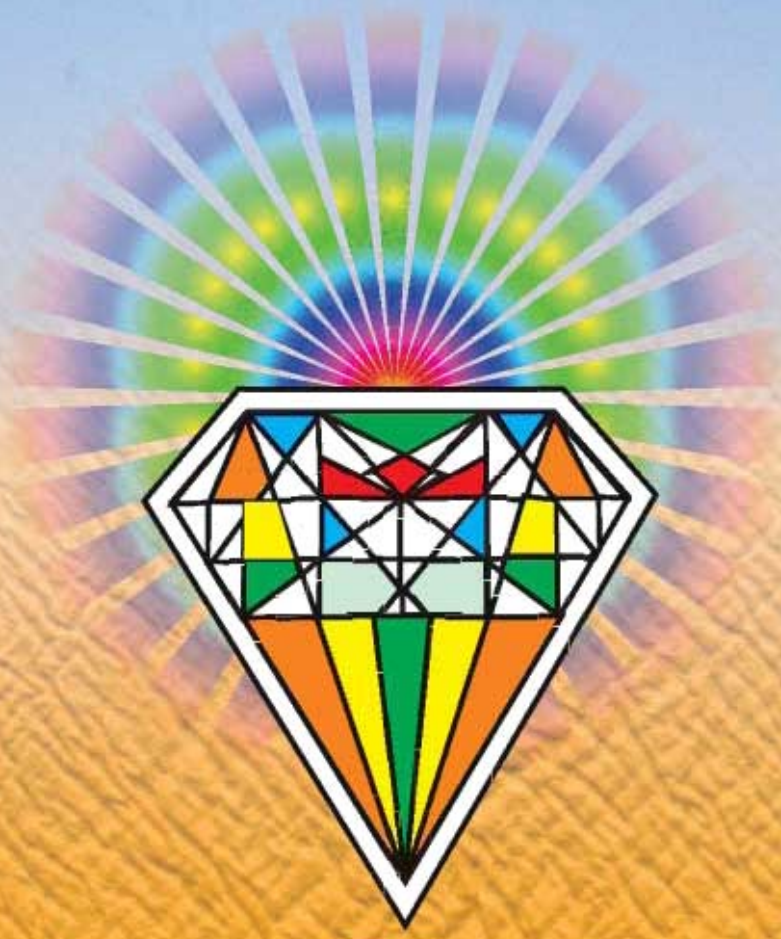

प्रवचनकार

आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्रजी म.सा.

प्रकाशक :

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

(संरक्षक : अ.भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ)

हीरा-प्रवचन-पीयूष

(भाग-5)

प्रवचनकार

आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा.

आशुलेखक एवं सम्पादक

नौरतनमल मेहता

-:: प्रकाशक ::-

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

(संरक्षक-अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ)

पुस्तक:

हीरा–प्रवचन–पीयूष (भाग–5)

प्रवचनकार:

आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा.

प्रकाशक:

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
दुकान नं. 182 के ऊपर
बापू बाजार, जयपुर–302003 (राज.)
फोन नं. 0141–2575997, 4068798
ईमेल–sgpmandal@yahoo.in

आशुलेखक–सम्पादक:

श्री नौरतनमल मेहता,
''पारस'' शिवशक्ति नगर रोड नं. 1
महामंदिर तीसरी पोल के बाहर
जोधपुर–342010 (राज.)
फोन नं. 0291–2548528, 9414827471

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण : 2017, प्रतियां–2100

मूल्य : 30.00 (तीस रुपये मात्र)

लेजर टाइपसैटिंग :

हस्ती पब्लिकेशन, जोधपुर
फोन नं. 2642331, 9414467824

मुद्रक

दी डायमण्ड प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर

अन्य प्राप्ति स्थल :

☐ श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ
घोड़ों का चौक, जोधपुर–342001(राज.)
फोन : 0291–2624891

☐ श्री प्रकाशचन्द जी सालेचा
16/62, चौपासनी हाउसिंग बोर्ड
जोधपुर–342001 (राज.)

☐ **Shri Navratan Ji Bhansali**
C/o Mahesh Electricals
14/5, B.V.K. Ayangar Road
BANGALURU-560053 (K.T.)
Ph. 080-22265957, Mob.09844158943

☐ श्रीमती विजयानन्दिनी जी मल्हारा
'रत्नसागर', कलेक्टर बंगला रोड
चर्च के सामने, 491–ए, प्लॉट नं. 4
जलगांव–425001 (महा.)
फोन–0257–2223223

☐ श्री दिनेश जी जैन
1296, कटरा धुलिया, चांदनी चौक
दिल्ली–110006
फोन : 011–23919370
मो. 09953723403

प्रकाशकीय

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल विगत सात दशक से जैन धर्म-दर्शन एवं संस्कृति के रक्षण-संवर्द्धन के साथ जीवनोपयोगी सत्साहित्य- प्रकाशन में अपनी भूमिका व भागीदारी का निर्वहन करता आ रहा है। साहित्य-प्रकाशन, साहित्य-वितरण और साहित्य-पठन की प्रेरणा में मण्डल सदा से सक्रिय रहा है। मण्डल द्वारा प्रकाशित प्रवचन-साहित्य, आगम-साहित्य, इतिहास- साहित्य, बाल-साहित्य जन-जन के लिए उपयोगी है। प्रवचन- साहित्य में पाठकों की अनवरत रुचि को देखते हुए मण्डल ऐसे साहित्य का निरन्तर प्रकाशन करता आ रहा है।

अध्यात्मयोगी -युगमनीषी जैनाचार्य पूज्य श्री हस्तीमल जी म. सा. की तरह आगमज्ञ, प्रवचन-प्रभाकर, व्यसनमुक्ति के प्रबल प्रेरक, जिनशासन गौरव जैनाचार्य पूज्य श्री हीराचन्द्र जी म.सा. के प्रवचन-साहित्य की मांग निरन्तर बनी रहती है। जन-जन के मन में नैतिक-आध्यात्मिक जागृति, व्यावसायिक प्रामाणिकता और अहिंसा-सत्य-सदाचार के प्रति रुचि व भावना जगे, एतदर्थ आचार्यप्रवर पूज्य श्री हीराचन्द्र जी म.सा. प्रभावी प्रेरणा करते हैं।

आचार्यप्रवर पूज्य श्री हीराचन्द्र जी म.सा. को लोग प्रवचन-प्रभाकर के विशेषण से सम्बोधित करते हैं, उसे पीछे कारण भी है कि आपश्री के प्रेरक प्रवचन जन-जन की अन्तश्चेतना जागृत करने वाले होते हैं। हीरा-प्रवचन पीयूष भाग 1 से 4 आबाल-वृद्ध सभी पाठक वर्ग में अत्यन्त लोकप्रिय हुए हैं। आचार्य श्री हीरा की दीक्षा अर्द्धशती के समापन पर प्रकाशित जीवन-वृत्त ''गुणसौरभ गणिहीरा'' पुस्तक पर तो श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, तमिलनाडू

ने खुली पुस्तक प्रतियोगिता आयोजित की, परिणामस्वरूप हजारों पाठकों को गुरु हस्ती पट्टधर गुरु हीरा के व्यक्तित्व, कृतित्व और नेतृत्व के सम्बन्ध में जानकारी मिली है।

हीरा-प्रवचन पीयूष (भाग-5) में चौतीस प्रवचनों का संकलन है। आचार्यप्रवर ने सन् 1999 का चातुर्मास नागौर किया, तदनन्तर मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आन्ध्रा, तमिलनाडु जैसे सुदूर प्रदेशों में संघनायक ने गाँव-गाँव, नगर-नगर और महानगरों में विचरण-विहार और चातुर्मास करके आबाल-वृद्ध और जैन-जैनेतर जन समुदाय को धर्म के सम्मुख लाने का महनीय प्रयास किया। तमिलनाडू से लौटते कर्नाटक, महाराष्ट्र और गुजरात प्रदेशों को सिंचित कर पुनः राजस्थान प्रदेश संभालने पधारे। वर्ष 2011 में जोधपुर प्रवास और चातुर्मास में प्रदत्त प्रवचनों का संकलन-सम्पादन आशुलेखक श्री नौरतनमल जी मेहता ने किया। मण्डल अनन्य गुरुभक्त श्रावकरत्न के सद्प्रयास के लिए साधुवाद ज्ञापित करता है।

आशा है हीरा-प्रवचन पीयूष भाग-5 सुधी पाठकों के लिए प्रेरणादायी और उपयोगी होगा। प्रबुद्ध पाठक एक-एक प्रवचन से प्रेरणा प्राप्त कर जीवन को समुन्नत करेंगे, यही अपेक्षा है।

पारसचन्द हीरावत **पदमचन्द कोठारी** **विनयचन्द डागा**

प्रमोदचन्द महनोत

अध्यक्ष **कार्याध्यक्ष** **मंत्री**

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

सम्पादकीय

अध्यात्मयोगी, युगमनीषी, प्रतिपल स्मरणीय, जैनाचार्य पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमल जी म.सा. के पट्टधर जैनाचार्य पूज्य श्री हीराचन्द्र जी म.सा. को श्रद्धा-भक्ति से भक्तजन आगमज्ञ, प्रवचन-प्रभाकर, व्यसनमुक्ति के प्रबल प्रेरक जिनशासन गौरव जैसे विशेषणों से सम्बोधित करते हैं। हम, गुरु हीरा के व्यक्तित्व, कृतित्व, नेतृत्व एवं संयम-साधना से विशेषणों का मूल्यांकन करें तो हमें निश्चित रूप से प्रयुक्त विशेषणों की सार्थकता दिखाई देगी। स्थानकवासी समाज के सबसे ज्येष्ठ आचार्य श्री हीराचन्द्र जी म.सा. ने अपने आराध्य गुरुवर्य की चरण-सन्निधि में रहते हुए सिद्धान्तप्रियता, साम्प्रदायिक सहिष्णुता, कथनी-करणी की एकरूपता, ज्ञान-दर्शन-चारित्र में रमणता में सतत पुरुषार्थ से सुयोग्य संतरत्न के रूप में अपनी पहचान तो बनाई ही, गुरु के दिल में भी अपना स्थान स्थापित कर लिया। दूरदर्शी गुरु हस्ती ने अपने सुयोग्य शिष्य को संघ-नायकत्व का गुरुत्तर दायित्व प्रदान किया। गुरु हस्ती पट्टधर गुरु हीरा विगत 25 वर्षों से अधिक समय से चतुर्विध संघ की सारणा-वारणा- धारणा करते हुए संघ को उत्तरोत्तर आगे बढ़ रहे हैं।

आचार्य श्री हीरा के कुशल नेतृत्व में चतुर्विध संघ में ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अभिवृद्धि के साथ संघ की एकता-एकरूपता अभिवृद्धित हो रही है। आचार्यप्रवर के जीवन-व्यवहार में सरलता, सहजता, सहिष्णुता, सिद्धान्तप्रियता, समाचारी के प्रति समर्पणता आचार-विचार-व्यवहार से स्पष्ट परिलक्षित होती है। आचार्यप्रवर प्रचार से परे रहकर आचार-धर्म के संदेशवाहक हैं। संघ-समाज में परस्पर प्रेम-मैत्री-सहयोग की भावना उत्तरोत्तर बढ़े और जैनत्व का गौरव जागृत हो, एतदर्थ आचार्यप्रवर वार्तालाप हो या प्रवचन अपना चिन्तन दो टूक शब्दों में रखने में कभी संकोच

नहीं करते। स्थानकवासी समाज आडम्बरविहीन साधना में गतिशील हो, देव-गुरु-धर्म के प्रति अटूट आस्थावान हो, मर्यादाओं का रक्षक-संवर्द्धन में सजग हो, एतदर्थ आपश्री किसी की निन्दा-आलोचना किए बिना आगमवर्णित विशुद्ध सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने के साथ जन-समुदाय को नैतिकता, प्रामाणिकता और सिद्धान्तप्रियता का पाठ पढ़ाते हैं। "सत्य सो मेरा" स्वीकार करने में सदा तत्पर रहने वाले संघनायक देखादेखी से दूर रहते हैं, बहाव में बहने के बजाय जन-जन के मन में रही बुराईयों-विकृतियों-विसंगतियों से बचने की प्रभावी प्रेरणा आपश्री के प्रवचनों की प्रमुख विशेषता है।

आचार्य श्री हीरा की प्रेरणा से हजारों शीलव्रत के खंद हुए हैं। अनेक ग्राम-नगरों के सुज्ञजनों में सामूहिक "रात्रि-भोजन त्याग" के संकल्प हुए हैं। धर्मस्थान में आकर सामायिक करना, सामायिक का शुद्ध स्वरूप समझकर सामायिक की शुद्ध आराधना करना, साप्ताहिक सामूहिक सामायिक कार्यक्रम की लोकप्रियता एवं स्वीकार्यता आचार्यश्री की प्रेरणा का ही सुफल है। शिक्षण बोर्ड के साथ संस्कार शालाओं की स्थापना व संचालन में भी आचार्य श्री हीरा का चिन्तन काम कर रहा है। चतुर्विध संघ में ज्ञान-ध्यान, त्याग-तप, साधना- आराधना एवं व्रत-प्रत्याख्यानों में जैन-जैनेतर जन समुदाय के झुकाव के पीछे भी आचार्य श्री की प्रेरणा ही प्रमुख कारण हैं। हजारों भाई-बहिन निर्व्यसनी बने हैं और यह कार्यक्रम भी निरन्तर विस्तार पा रहा है।

आचार्य श्री हीरा के प्रेरक प्रवचन जन-जन की अन्तश्चेतना जागृत करने वाले होते हैं। विषय-वस्तु का प्रतिपादन इतना प्रभावी होता है कि श्रोतागण तन्मयता के साथ न केवल प्रवचन श्रवण करते हैं, अपितु सामायिक, स्वाध्याय, संस्कार-निर्माण, व्यसन-त्याग और संघ सेवा-संत सेवा में अपनी भूमिका व भागीदारी निभाने में स्वतः होकर आगे आते हैं।

हीरा-प्रवचन-पीयूष भाग 1 से 4 के संदर्भ में पाठकों की सकारात्मक प्रतिक्रिया दर्शाती है कि आचार्यप्रवर के प्रवचन पाठकों में अत्यन्त लोकप्रिय हैं। हीरा-प्रवचन-पीर्यूष भाग 5 में वर्ष 2011 के जोधपुर चातुर्मास के चौतीस प्रवचन सुधी पाठकों के लिए प्रस्तुत करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हो रहा हैं। प्रवचनों में भाषाभाव और प्रस्तुतिकरण की प्रभावशीलता तो अपने-आपमें स्पष्ट है ही, हृदय-स्पर्शी प्रवचन हमारे जीवन की समस्याओं के समाधानार्थ उपयोगी हैं। आचार्य श्री आगमज्ञ हैं इसलिए प्रवचन का शुभारम्भ प्रायः भगवान् महावीर की आदेय-अनमोल वाणी के रूप में करते हुए जहां कहीं विषय-वस्तु समझाने का प्रसंग आता है तो अपने आराध्य गुरुवर्य पूज्य श्री हस्तीमल जी महाराज की नजीर प्रमुखता से रखते हैं। गुणग्राहकता का ऐसा अनुपम उदाहरण आपश्री की प्रमुख विशेषता ही है।

आचार्य श्री हीरा के प्रेरक प्रवचन अनमोल हैं। प्रवचनों का उपन्यास की तरह पठन नहीं हो सकता। प्रवचन में प्रदत्त चिन्तन को मनोयोगपूर्वक पढ़ने की आवश्यकता है तभी प्रवचन का आनन्द और उसके प्रभाव का अनुभव हो सकता है। आचार्य श्री नपेतुले शब्दों में अधिक-से-अधिक भावों को प्रकट करते हुए जीवनोपयोगी मार्गदर्शन देते हैं। प्रवचनों के क्रम में जब भी कोई पर्व या उत्कृष्ट साधक का विशिष्ट दिवस आता है तो उस पर भी आपश्री ने अपना गहरा चिन्तन प्रस्तुत किया है।

मेरे आशुलेखन-सम्पादन में श्रवण-दोष या रूपान्तरण की त्रुटि रह सकती है। मैं प्रवचन लेखन और सम्पादन में रही त्रुटियों के लिए क्षमाप्रार्थी हूँ। मेरे लेखन-सम्पादन में सरलता की प्रतिमूर्ति, संत-सेवी, बन्धु श्री सौभाग्यमल जी जैन-अलीगढ़ रामपुरा तथा साहित्य-साधक, संघसेवी बन्धु श्री सम्पतराज जी चौधरी-दिल्ली का महत्त्वपूर्ण योगदान कभी भुलाया नहीं जा सकता। पुस्तक में जहाँ कहीं भी संदर्भ दिए गए हैं, संदर्भों का चयन,

संकलन एवं संयोजक साहित्य-साधक श्री सम्पतराज जी चौधरी की देन हैं। मैं, मेरे दोनों आत्मीय बन्धुओं का हृदय से आभार प्रदर्शित करता हूँ और उन्हें धन्यवाद-साधुवाद ज्ञापित करता हूँ।

मुझे आशा ही नहीं, पूरा विश्वास है कि प्रबुद्ध पाठक आचार्यप्रवर पूज्य गुरुदेव श्री हीराचन्द्र जी म.सा. के सामयिक चिन्तन को हृदयंगम कर हीरा-प्रवचन-पीयूष भाग-5 से लाभान्वित होंगे।

नौरतनमल मेहता
आशुलेखक-सम्पादक

9 फरवरी, 2016
दीक्षा महोत्सव, पीपाड़ शहर

अनुक्रमणिका

1.	क्षमाशील बनें नर-नारी	1-6
2.	जागें और जगायें सबको	7-13
3.	सदुपयोग और दुरुपयोग	14-19
4.	गुणग्राही हो दृष्टि अपनी	20-30
5.	तन के रथ को सुपथ पर बढ़ाते चलो	31-36
6.	जीव के रक्षण में बनें सजग	37-43
7.	संथारा साधक श्री सागरमुनि जी : एक प्रेरणास्रोत	44-63
8.	जीवन की पवित्रता के लिए आहार, विचार और आचार शुद्धि चाहिए	64-71
9.	तप और दान का माहात्म्य समझें	72-78
10.	शांति और समाधि चाहिए तो पूर्वाग्रह छोड़िए	79-87
11.	वासुदेव श्री कृष्ण के गुणानुरागी बनें	88-99
12.	सर्वकालिक है पर्वाधिराज पर्युषण पर्व	100-107
13.	चारित्र में चरण बढ़ाना हो तो व्रत-नियम लीजिए	108-119
14.	तप को जीवन-व्यवहार का अंग बनाएं	120-132
15.	दान का माहात्म्य	133-142
16.	संयम है शिव सुखदाता	143-154
17.	आत्मोत्थान हेतु करें आलोचना	155-164
18.	मन-वचन-काया से क्षमायाचना कर दिल की दीवाली मनाएं	165-172
19.	करें इन्द्रियों का सदुपयोग	173-180
20.	सामंजस्य पूर्वक समस्या का समाधान निकालें	181-188
21.	सकारात्मक हो दृष्टि अपनी	189-192
22.	सामायिक को समाज-धर्म बनाइये	193-200

23. संघ की आधारशिला है- संगठन, समर्पण और सहनशीलता 201-211
24. गुण देखें, गुणी बनें 212-219
25. शरीर की ही नहीं, मन की सफाई भी करें 220-226
26. बच्चों को संस्कारित करने में समय दें 227-231
27. श्रद्धा से करें, सामायिक-साधना 232-236
28. शांति-समाधि चाहिए तो संयोग का सही उपयोग कीजिए 237-243
29. संयोग पाकर जगें, जगकर साधना में आगे बढ़ें 244-250
30. महावीर को जाने और माने ही नहीं, पाए भी 251-257
31. बनें वीर-धीर-गंभीर 258-262
32. विद्वत्त संगोष्ठी की सफलता निर्मल आचार के पालन में 263-269
33. नारियां शीलवान, गुणवान और संस्कारवान बनें 270-277
34. मोह जीतने के लिए है- स्वाध्याय, सत्संगति और आत्मचिन्तन 278-283

श्री रत्न हस्तिगण नूतन ज्ञान सूर्यम्,
शान्तं प्रसन्न वदनं चतुरं सुधीरम्।
प्राप्तं बहुश्रुतपदम् करुणावतारम्,
नित्यम् नमामि सुप्रियङ्कर हीराचन्द्रम्
भक्त्या नमामि सुप्रियङ्कर हीराचन्द्रम्।।

क्षमाशील बनें नर-नारी

पंच परमेष्ठी के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन!

बन्धुओं,

क्षमाशीलता अथवा सहनशीलता एक ऐसा सद्गुण एवं धर्म है जो मनुष्य को परिवार, समाज एवं संघ में रहने योग्य बनाता है। इस गुण के बिना कोई भी व्यक्ति न तो साधना के क्षेत्र में प्रगति कर सकता है और न ही उसका परिवार, समाज एवं संघ में समायोजन हो सकता है। क्षमाशीलता 'पर' की अपेक्षा 'स्व' के लिए अधिक हितकारी है। अनन्त करुणा के सागर तीर्थंकर भगवान् महावीर ने दस विध धर्मों में सबसे पहला स्थान खंती अर्थात् क्षान्ति को दिया। क्षान्ति के दो अर्थ होते हैं- क्षमा और सहिष्णुता। क्षमाशीलता, सहिष्णुता, सहनशीलता या समता की साधना इस जीव को कहाँ से कहाँ तक पहुँचा देती है, यह आपने अभी प्रवचन में सुना। मैं और आप ही नहीं, संसार की व्यवहार राशि में आने वाले हर जीव ने न जाने कितना सहन किया है, उसका वर्णन करना भी कठिन है। चाहे उसे उबाला गया, उसे काटा गया, उसे तरासा गया अथवा उसके अंग-अंग का छेदन-भेदन कर दिया गया, उस जीव ने उन सबको सहन किया। कब? जब जीव एकेन्द्रिय था। उसको बोलने, देखने और सुनने की शक्ति तब प्राप्त नहीं थी।

इन्द्रियों का विकास होने के साथ-साथ उसकी जागरूकता बढ़ी तो

उसकी सहनशीलता भी बढ़नी चाहिए, किन्तु वह तो घटती हुई देखी जा रही है। आज के परिप्रेक्ष्य में देखें तो लगता है कि व्यक्ति में मानों सहनशीलता का दिवाला निकल चुका है। हम स्वयं को जितना समझदार समझने लगे हैं उतने ही असहनशील हो गये हैं ऐसा कह दूँ तो कोई आश्चर्य नहीं? आपने नासमझी में न जाने कितना सहन किया? आज आपमें समझ है, लेकिन समझ का फायदा क्या? समझदारी किसे कहें, यह पूछूँ आपसे? नीतिकार कहते हैं- "विद्या ददाति विनयम्।" जितनी विद्या आयेगी, ज्ञान आयेगा, उतना ही व्यक्ति विनयवान होगा, झुकेगा। जितना ज्ञान होगा उतनी क्षमाशीलता बढ़ेगी। "नाणस्स सव्वस्स पगासणाए।" (उ.सूत्र 32.2) अर्थात् ज्ञान सबका प्रकाशक है। हमने समझ पाकर, ज्ञान का प्रकाश पाकर अहंकार बढ़ाया है या सहनशीलता? ज्ञान के साथ धर्म का संबंध जोड़ने के लिए मेरा एक प्रश्न है कि धर्म का उत्पत्ति स्थान या मूल क्या है? आगम में कहा है- "धम्मस्स विणओ मूलं।"(दश.सूत्र 9.2.2) अर्थात् धर्म का मूल विनय है। आप भी यही बोलोगे तो क्या, यह आगम वचन बोलने मात्र तक ही है? स्थानक में हैं तब तक के लिए हैं? पाठ करने के लिए है? परीक्षा देने के लिए है अथवा प्रतियोगिता में नम्बर लाने के लिए है? जरा चिन्तन करें कि हमारा ज्ञान हमारे भीतर में विनय या सहनशीलता बढ़ा रहा है या अहंकार?

इसके आगे प्रश्न करूँ कि फिर हमको क्या करना चाहिए? तुलसीदासजी कहते हैं-

काम-क्रोध-मद-लोभ की जब लग घट में खान।
'तुलसी' पंडित मूरखा, दोनों एक समान।।

वे कहते हैं कि जब तक कषायों की गंदगी भीतर में है, तब तक पंडित और मूर्ख दोनों एक ही तरह के हैं। मैं अपने-आपको साधक कह रहा हूँ, आप अपने-आपको श्रावक कह रहे हो। जैनधर्म को मानने वाला यह समझकर खुश है कि वह सम्यग्दृष्टि है एवं नहीं मानने वाले मिथ्यादृष्टि हैं।

सम्यग्दृष्टि कौन? क्या बाफना, बोहरा, गाँधी, कांकरिया आदि जैन कुल में जन्म लेने वाला अथवा गुरुदेव से देव-गुरु-धर्म का स्वरूप समझने वाला? सम्यग्दृष्टि का पहला लक्षण है- शम अथवा सम। शम का अर्थ है कषायों की मन्दता। दस विध धर्म में पहला स्थान 'खंती' का होने से जीव के विकास में भी पहला स्थान 'खंती' का है। 'खंती' यानि सहनशीलता। मैं एक मारवाड़ी कहावत कह रहा हूँ, जो आपने भी सुनी होगी- ''राजपूत ने रैकारौ भी गाळी है।'' अर्थात् राजपूत लोग 'तुम' आदि का सम्बोधन भी गाली समझते हैं। इसी तरह ''रानी ने काणी कहियोड़ो सहन नहीं होवे'' अर्थात् कानी को कानी कहना सहन नहीं होता है। संघ के सदस्य भी कई बार सोचते हैं कि उन्होंने मुझे ऐसा क्या समझ कर कहा? मुझमें भी समझ है, संघ के प्रति समर्पण है, फिर मुझे ऐसा क्यों कहा गया? श्रावक हो या साधु, वे शोभायमान तभी होते हैं जब जीव में क्षमा एवं सहनशीलता का सद्गुण हो। साधु भी कभी सोचते हैं कि अमुक व्यक्ति बाजू में बैठे छोटे साधु को वन्दन कर चला गया, मुझे वंदन करने का उसे खयाल नहीं आया? शायद उसने मुझे देखा नहीं होगा या शायद उसको पता ही नहीं कि मैं कौन हूँ। हो सकता है वह जानबूझ कर मुझे वन्दन करना नहीं चाहता। वह अपने-आपको क्या मान रहा है?

साधक अपना निरीक्षण करे कि मेरे कषायों की क्या स्थिति है? मेरी इन्द्रियों के विषय-कषायों की क्या स्थिति है? मेरे विषय-कषाय कितने घटे हैं? मैं संयम की इतनी दीर्घ पर्याय में आकर क्या कर रहा हूँ? गृहस्थ भी अपने जीवन को देखें। सासू समझती है कि मैं सास हूँ। ''आ काले री आयोड़ी छोरी म्हानै कांई समझे?'' बहू सास को आदर नहीं दे तो समस्या प्रारम्भ हो जाती है। आप चाहे संत-जीवन में हों या गृहस्थ जीवन में, आपको सोच-समझकर चलना आवश्यक है। आपको ध्यान रखना है कि आपकी सहनशीलता, अवस्था बढ़ने के साथ बढ़ी है या नहीं? गुरु की

संगति के साथ सहनशीलता बढ़ी है या घटी है? लोग कहते हैं कि "बूढ़ौ हो जावै तो बावळिया (बबूल) रे भी कांटा कम आवै।" पक जाने पर केरी (कच्चा आम) भी मीठी हो जाती है। कांटे में परिवर्तन आया, केरी में परिवर्तन आया, किन्तु हमारे कृतज्ञता के भाव, हमारा समर्पण-श्रद्धा, जिसके सहारे हमने इस जीवन का विकास किया है वे सब कहाँ पहुँच गये हैं?

कहावत है- समझदार को इशारा ही बहुत होता है। आप इस ज्ञान-सभा और धर्मसभा में बैठे हैं। रोज प्रवचन सुनने वाले सब ज्ञानी भी हैं, धर्मी भी हैं। देखना यह है कि इस ज्ञान का और धर्म का संगम हुआ है या नहीं? ज्ञान का और आचरण का संगम हुआ है या नहीं? बल्ब, ट्यूबलाइट, ए.सी., पंखा आदि तभी चलते हैं जब उनमें जा रहे बिजली के दो तारों का संगम हुआ हो। आपने ये सब तो लगा दिये, किन्तु बटन नहीं दबाया तो...? बटन दबाने से दो तारों का संगम होगा तभी बल्ब से अंधेरा दूर होगा। जब तक दोनों तार आपस में नहीं जुड़ेंगे तब तक कमरे में न तो प्रकाश ही होगा और न ही ए.सी. से ठण्डक मिलेगी। इसी तरह जीवन में शांति और समाधि तब तक संभव नहीं जब तक ज्ञान के साथ क्षमा-सहनशीलता आदि का आचरण न हो।

आप घर में देव पुरुष बनकर रहना चाहते हैं, शान्ति और समाधि से रहना चाहते हैं तो उसके लिए सबसे पहला सूत्र है-आप अपनी सहनशीलता बढ़ाइये। आपमें यदि सहनशीलता का गुण है तो आपके सामने भले ही कोई आग बन करके आये, परन्तु आप पानी बनकर रहोगे, तो वह आग शान्त हो जायेगी। तीर्थंकर भगवान् महावीर की इस अनमोल वाणी को मैं अपने जीवन में उतार कर अपने जीवन का विकास करूँ और आप अपने जीवन में उतार कर अपने जीवन का विकास करें। सहनशीलता एक गुण है।

अगर इस गुण का विकास होगा तो आप चहुँमुखी विकास कर सकेंगे। अव्यवहार राशि से व्यवहार राशि, एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय से मनुष्य और मनुष्य से वीतरागता; सबके मूल में सहनशीलता है। जिसने भी सहनशीलता नहीं रखी, उसकी गति बिगड़ी है। चौदह पूर्वधारी ने भी यदि सहनशीलता नहीं रखी तो उसे भी नरक में जाना पड़ा। दूसरी ओर पूर्वधर न होते हुए भी, पाँच समिति, तीन गुप्ति वाले ने सहनशीलता रखी तो वह पार हो गया।

जीवन बनाने के लिए लम्बे-चौड़े ज्ञान की जरूरत नहीं है। आप प्राप्त ज्ञान के साथ सहनशीलता बढ़ाने का प्रयास करें तो जीव सामान्य ज्ञान पाकर भी सिद्धि की ओर गमन कर जायेगा। वह जहाँ भी रहेगा, लोगों के लिए आदर्श बनेगा। लोग तपस्वी संतों के पास जाते हैं और वहाँ उनके पास शान्त, सहज और सरल बन जाते हैं। राम जहाँ भी गये प्रकृति में शांति छा गई। तीर्थंकर भगवान् जहाँ भी विराजते हैं वहाँ प्राणियों में वैर-भाव समाप्त हो जाते हैं। ऐसा कब होता है? जब तीर्थंकर भगवान् के दिये अनमोल सूत्र क्षमा को हम अपने जीवन में उतारें। यही जीवन में आगे बढ़ने का रास्ता है। किसी में सौ गुण भी हों, पर उसमें असहिष्णुता का तामस नहीं गया तो उसके सारे गुण धूमिल हो जायेंगे। मणि युक्त नाग को कोई पालने को तैयार नहीं होता, क्योंकि उसमें जहर भरा है। ऐसा भी कहा जाता है कि नाग के पास रही मणि कई रोगों को समाप्त कर सकती है, फिर भी मणि वाले सांप को पालने को कोई तैयार नहीं होता। पालना तो दूर की बात है, यदि वह पास से निकल भी जाये तो आदमी दूर भाग जाता है। कभी किसी के घर में सांप निकल आये तो घर वाले घर में नहीं रहना चाहते। इसी तरह ज्ञान के प्रकाश के साथ असहिष्णुता भी एक तरह का जहर है।

आचार्य भगवन्त (पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमल जी महाराज) ने एक

बार पीपाड़ में फरमाया था कि यदि कोई छह महीने का बालक दूध पी रहा हो और वह दूध ढुल (गिर) जाये तो वह बालक उसे हाथ से फैलाकर खेलने लग जाता है। कभी लघु शंका भी कर दी, तो उसे भी हाथ से फैला देता है। बड़ी नीत की, तो वह उसमें भी खेलता रहता है। क्यों? इसलिये कि उस बच्चे में समझ नहीं है। समझ नहीं है, इसलिये वह गन्दगी से खेलता है। उस बच्चे के सामने कोई रद्दी कागज आया तो आले (मुंह) में डालेगा और यदि हजार का नोट भी आ गया तो उसे भी आले में डालेगा। जब वह बच्चा छह साल का हो जायेगा तो क्या तब भी वह वैसा ही करेगा? नहीं, बड़ा होने पर वह गन्दगी में हाथ से नहीं खेलेगा। आप कई लोग साठ साल के हो गये हैं और सब समझदार हैं। गली में यदि कीचड़ बिखरा पड़ा है तो कपड़े की बात तो अलग, आपके जूते भी खराब न हो जाये, इसलिए आप उस कीचड़ से बचकर निकलेंगे। किन्तु, हमारे इस जीवन में असहिष्णुता युक्त- कषाय की कितनी कीचड़ या गन्दगी भरी पड़ी है। क्रोध एवं अक्षमा-दोष के कारण घर-परिवार स्वर्ग के बजाय नरक बन रहे हैं। यह बात मेरे लिए या आपके लिए ही नहीं, जीव मात्र के लिए है। तीर्थंकर भगवान् महावीर की वाणी किसी एक के लिए नहीं, सबके लिए है। जब तक ज्ञान के साथ आचरण का सम्बन्ध नहीं जुड़ेगा, जब तक ये दो तार आपस में नहीं मिलेंगे, जीवन में सुख, शांति, और समाधि मिलने वाली नहीं। चाहे घर हो, परिवार हो, समाज हो या संघ हो, सभी जगह आप सहनशील बनिये। सहनशीलता के गुण से शासन की दीप्ति बढ़ेगी, इसी मंगल मनीषा के साथ.....।

जोधपुर
30 जून 2010

जागें और जगाएँ सबको

अनन्तज्ञानी, अनन्तदर्शी अरिहन्त भगवन्तों एवं साधना में रमण करने वाले संत भगवन्तों के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन!

बन्धुओं,

शास्त्र के सन्देशों में, वीतराग वाणी के आधार से सर्व प्रथम अपने-आपको जगाने की बात कही जाती है। शास्त्र-स्वाध्याय के समय ज्ञान की बात चलती है तब भी यह कहा जाता है- पहले स्वमत का ज्ञान करें, फिर परमत का ज्ञान करें। दया की बात जब चलती है तो पहले स्व की दया एवं फिर पर-दया की बात कही जाती है। शास्त्र-वाणी में अनमोल सूत्र हैं। जब भी जागरण की बात आती है तो कहा जाता है, पहले खुद को जगाना है, फिर दूसरों की नींद उड़ाना है। दूसरों को छोड़ा नहीं जा रहा है, पर अपने को टाला नहीं जा रहा है। आज अधिकतम कार्यक्रम दूसरों के लिए चल रहे हैं। अमुक जगह प्रार्थना होती है या नहीं? प्रार्थना होती है तो यह देखा जाता है कि कितने लोग आए वहाँ पर? अपनी गणना नहीं, गणना दूसरों की करनी है। चाहे प्रवचन हो, प्रतिक्रमण हो, सामायिक हो, साधना हो, स्वाध्याय हो या आचरण की बात हो, कहाँ कितने लोग हैं यह देखा जाता है। कहते हैं तो भी दूसरों को कहते हैं- "आप पधारो। आप सत्संग सेवा, संत-समागम में आयेंगे तो लीला-लहर हो जायेगी।" आप आओ, आप करो, यह कहने वाले अनेक मिल जायेंगे, पर मैं करूँगा, मुझे करना है, ये कहने वाले और

करने वाले कितने हैं? आपके यहाँ पाठशाला चलती है, वह पाठशाला किनके लिए है? आपके यहाँ शिक्षण बोर्ड है, वह बोर्ड किनके लिए है? आप बोर्ड का रेकार्ड उठाकर देख लीजिये आपके सदस्य कितने और अन्य कितने हैं? जरूरत है- सबसे पहले अपने-आपको देखें। आपको सुयोग प्राप्त हुआ है तो उसका उपयोग पहले आप स्वयं करें, फिर दूसरों को करने का कहें। अभी तत्त्वचिन्तक प्रमोदमुनि जी महाराज चिन्तन के कई सूत्र रख गये। आपकी स्वयं की क्या तैयारी है, इस पर हर व्यक्ति को सोचना है। ऐसा संयोग पाकर मैं अपने कर्मों की निर्जरा करने में आगे बढ़ूँ। वह चाहे ज्ञान की बात हो, चाहे दर्शन की, चाहे व्रत-नियम की, चाहे आचरण की, दूसरों के नाम लिखने के पहले अपना खुद का नाम लिखें। यह सोंचें कि मैं दूसरों के नाम तो लिख रहा हूँ, कहीं मेरा नाम रह न जाय?

इस जीव ने पहली बार मानव जीवन पाया है, ऐसी बात नहीं है। यह संयोग पहली बार मिला, ऐसा भी नहीं है। आपको पहले भी इससे उत्तम संयोग मिले हैं। पूज्य आचार्य भगवन्त (श्रद्धेय श्री हस्तीमल जी महाराज) जैसे महान् साधकों का सुयोग आपको मिला। आपको क्या, कईयों को उस महापुरुष की चरण सन्निधि मिली, लेकिन उसका आपने उपयोग किया होता तो यहाँ बैठते (पाट पर होते), सामने बैठने की जरूरत नहीं पड़ती। जो गया, सो चला गया। 'जब जागे तब ही सवेरा' यह कहावत आप-सबको ज्ञात है क्योंकि आप सूर्यनगरी के सुज्ञजन हैं, आपके यहाँ तो प्रतिदिन सूर्य-उदय होता है। शायद अपने क्षेत्र में भी सूर्योदय होगा (चातुर्मास होगा), इस बात को लेकर कईयों के मन में विचार चल रहा होगा, पर आप यदि अपने-आपको जगा लें तो ज्ञान-दर्शन- चारित्र का सूर्य उदय हो सकता है। मैं यहाँ कुछ नाम लेकर कथन करूँ- जयपुर वाले जब भी विनति करते हैं तो कहते हैं- बाबजी! आपका जयपुर का चातुर्मास जयपुर का नहीं, पूरे प्रदेश

का चातुर्मास होगा। क्यों? क्योंकि जयपुर राजस्थान की राजधानी है। दिल्ली वाले आते हैं तो कहते हैं- आपका चातुर्मास दिल्ली का नहीं, पूरे राष्ट्र का चातुर्मास होगा। आप क्या कहते हैं? आप अपना चिन्तन करना। क्या जोधपुर का चातुर्मास पूरे महानगर का नहीं? मैं अचम्भा कर रहा हूँ। यहाँ का एक आदमी दिल्ली में नौकरी करता है तो क्या वह अपने-आपको जोधपुर का नहीं समझता है? ऑल इण्डिया का कोई काम करता है तो क्या वह जोधपुर का नहीं है? काम की जब भी बात आती है तो कुछ लोग हैं जो कह सकते हैं कि यह तो लोकल संघ का काम है। लोकल संघ हो या ऑल इंडिया अथवा दूसरी-दूसरी संस्थाएँ, यह तो व्यवस्था है। जोधपुर बड़ा नगर है। नगर ही नहीं, महानगर है। जोधपुर जैसे महानगर का चातुर्मास किसी एक क्षेत्र में ही होगा, हर जगह चातुर्मास की संभावना नहीं है। क्षेत्र चाहे जो हो, चातुर्मास जोधपुर का है तो काम किसका? काम कौन करे? किसका किसमें नाम हों?

आप चाहे जिस क्षेत्र के हैं आप-सब में ज्ञान की, दर्शन की, चारित्र की, तप की सामर्थ्य है। सामर्थ्य होते हुए भी नहीं करना माया है-"सर्वत्र स्ववीर्य निगूहनं माया।" व्याख्यान देने वाला यदि कहे कि मैं व्याख्यान देता हूँ, गोचरी लाना मेरा काम नहीं। सेवा करने वाला कहे कि मुझे सेवा करनी आती है, दूसरा काम मेरा नहीं तो क्या व्याख्यान देने या सेवा करने के अतिरिक्त उनकी कोई सामर्थ्य नहीं है। मैं कल कह गया, आज फिर कह रहा हूँ कि बड़े नगर में हर साल, हर महीने कोई न कोई चारित्र अंगीकार करने वाला निकल सकता है, पर आज क्यों नहीं निकल रहा है? माँ-बाप का काम क्या? बच्चे को मौजे पहनाना, पेंट पहनाना, खिलाना-पिलाना, तैयार करके स्कूल पहुँचाना। बस, क्या यही माँ-बाप का काम रह गया है? कितने माँ-बाप हैं जो अपने बच्चों को लेकर बैठते हैं, उन्हें नमस्कार महामंत्र,

सामायिक, प्रतिक्रमण सिखाते हैं? कितने लोग हैं जो अपने बच्चों को संतों की सेवा में लाते हैं? आप नारा तो लगाते हैं- "गुरु हस्ती के दो फरमान। सामायिक स्वाध्याय महान्।।" ये नारे किसके लिए? आप अपना चिन्तन करना। मैंने तो आचार्य भगवन्त (पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमल जी महाराज) से सुना है- जो बच्चों में संस्कार देता है, संस्कारों का रक्षण करता है, वह पिता है। आज क्या हो रहा है? कई ऐसे माँ-बाप हैं जो बच्चों के लिए पांच-दस मिनट निकालें, इसकी भी उन्हें फुर्सत नहीं। बच्चों को पूछना, संभालना उन्हें संस्कार देना किनकी जिम्मेदारी है?

आपमें उमंग है, उत्साह है। आप जिस भावना से महाराज को लेकर आए हैं उसका तदनुसार कर्त्तव्य अदा करें। आप सोचें- मैं क्या कर सकता हूँ? कर्त्तव्य-निर्वहन में आगे बढ़ने की भावना आ जायेगी तो फिर यह कहने और सोचने की बात नहीं रहेगी कि महाराज को पाली याद आ गई, जोधपुर में ऐसी क्या कमी देखी जो जोधपुर के बजाय पाली चातुर्मास किया? भाई! आप प्राप्त अवसर का उपयोग तो करें, मैं अब ब्याज सहित कर्जा चुकाने को जोधपुर आ गया हूँ। मैं चार महीने के लिए ही नहीं, करीब सात महीने के लिए आ गया हूँ। आप उत्साह, उमंग, कर्त्तव्यशीलता जगाकर सही मायने में कुछ करेंगे तो आपको पछतावा नहीं रहेगा। होली पर नहीं आया, दीवाली पर नहीं आया, आगे बोलूँ.....। "अब तो आधी खिचड़ी, आधा घी, घोल-घोलने पी।"

आप अपना पुरुषार्थ जगाइये, निष्ठा बढ़ाइये, पराक्रम फोड़िए। जिसको जितना लाभ लेना है, खुद लाभ लें तथा हमें भी ज्ञान-दर्शन-चारित्र में आगे बढ़ने में सहयोग करें। आप स्वयं करें तथा परिवार में, अड़ोस-पड़ोस में प्रेरणा करें। आप कर्त्तव्यनिष्ठ बनकर काम करेंगे तो मेरा खयाल है सारी भरपाई हो सकती है। जरूरत है जगने की, जरूरत है करने की।

पुण्यशाली सूर्यनगरी-जोधपुर को अनेकानेक पुण्यात्माओं की, आचार्यों व संतों की सेवा-भक्ति का सौभाग्य मिला। परम्परा के मूल पुरुष पूज्य श्री कुशलचन्द्र जी महाराज, आचार्य श्री गुमानचन्द्र जी महाराज, क्रियोद्धारक श्री रत्नचन्द्र जी महाराज से लेकर प्रतिपल स्मरणीय पूज्य आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज तक अनेकानेक महापुरुषों में से किसी की यह जन्म-स्थली रही, किसी की दीक्षा-स्थली रही, कई आचार्यों को यहाँ आचार्य-पद की चादर ओढ़ाई गई, कइयों ने यहाँ साधना का उत्कर्ष-समाधि-मरण प्राप्त किया। साधक आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज ने साधना के माध्यम से सिंहपोल जैसे क्षेत्र का उद्धार किया। उस महापुरुष का सूर्यनगरी में निरन्तर आवागमन बना रहा। ऐसी सौभाग्यशाली नगरी को आज प्रेरणा देने की बात कही जा रही है? यह ऐसा ही है जैसे माँ को मामा का परिचय कराया जा रहा है।

यहाँ के गुरुभक्तों में वे चाहे मोदी परिवार से रहे हों, लोढ़ा परिवार से रहे हों, कुम्भट परिवार से रहे हों, ऐसे कई परिवार हैं, सबके नाम न तो लिए जा सकते हैं और न गिनाये जा सकते हैं, पर जोधपुर के कई श्रावकों को घर का जितना खयाल नहीं था, उससे ज्यादा संघ का खयाल था, यह कह दूँ तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। वे चाहे विजयमल जी कुम्भट हों, न्यायमूर्ति इन्द्रनाथ जी मोदी हों, न्यायमूर्ति सोहननाथ जी मोदी हों, कवि दौलतरूपचन्द जी भंडारी हों, पडिमाधारी श्रावक किरतमल जी मूथा हों, उन्होंने संघ-सेवा में कैसा समर्पण रखा, यह कहने की जरूरत नहीं है। किरतमलजी मूथा जैसे अकेले व्यक्ति आचार्य श्री विनयचन्द जी महाराज के श्री चरणों में विनति रखकर चौमासा ले आए। हमारा गौरवशाली आदर्श रहा है, जरूरत है हम अपने-आपको देखें। यह नगर एक समय जोधाणे की ढाणी था, फिर जोधपुर नगर बना और अब महानगर कहला रहा है। नगर

महानगर में परिणत हो गया। नगर से महानगर तो जोधपुर बन गया, लेकिन यहाँ के रहने वालों के दिल कितने बड़े हुए, आप स्वयं चिन्तन करें?

जरूरत है एक-दूसरा एक-दूसरे को जोड़े। हम किसको, किस काम में जोड़ सकते हैं, यह चिन्तन करें। जोधपुर में बहुत-से रत्न हैं। क्षमता भी यहाँ बहुत है। ज्ञान की दृष्टि से कहूँ, अनुभव की दृष्टि से कहूँ, यहाँ के श्रावक-श्राविकाओं में कोई कमी नहीं है। यहाँ तो एक-दो, पांच-दस नहीं, अनेकानेक श्रावक गरिमा वाले पद पर रहकर संघ को सेवाएँ देते थे, उनका संघ के प्रति समर्पण था। आज भी आप अपने गौरव को ध्यान में रखकर ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप की आराधना करना चाहें तो बहुत कुछ कर सकते हैं। बस, जरूरत है सबसे पहले खुद के लिए सोचें। आप अपने लिए चिन्तन करें, जरूर करें, साथ-ही-साथ अपने परिवारजनों को, मौहल्ला वालों को, नगर और महानगर के साथियों को भी नहीं भूलें।

हमारा चातुर्मास जोधपुर का है, किसी क्षेत्र विशेष का नहीं। जोधपुर का चातुर्मास है इसलिये आप-सबकी भावना, चाहे वह ज्ञानाराधन की हो, व्रताराधन की हो, तपाराधन की हो, सेवा की हो, संगठन में प्रेम बढ़ाने की हो, हर क्षेत्र में जिसकी जैसी रुचि है, जिसकी जैसी योग्यता है, आप सब उसके अनुसार मिलकर पुरुषार्थ करेंगे तो प्राप्त अवसर का पूरा लाभ उठा सकेंगे। आपने बैंगलोर का चातुर्मास देखा है। वहाँ आपने देखा होगा संघ के मुखिया साधना में बैठे हुए थे, फिर भी काम करने वाले हर समय हर जगह मौजूद थे। एक-एक दिन एक-एक क्षेत्र के लोग आते, वे साधना तो करते ही, सेवा का काम भी करते। परिवार के साथ आने पर एक दूसरे का परिचय होता और कोई काम करना भारी नहीं लगता। आप हर उपनगर, कॉलोनी, गली-मोहल्ले वालों से सम्पर्क कर उन्हें संघ सेवा में जोड़ने का लक्ष्य लेकर चलेंगे तो हर व्यक्ति के मन में उत्साह जगेगा। सम्पर्क नहीं करने पर लोग

यह भी कहने वाले मिल जायेंगे कि काम करने की मन में बहुत भावना थी, पर क्या करें किसी ने कुछ काम दिया ही नहीं? संघ और समाज में न जाने कितने कार्यकारी लोग हैं जो काम करना चाहते हैं, पर उन्हें कोई जोड़ने वाला तो मिले? आप, सबको जोड़ने का लक्ष्य लेकर चलें, धर्मसंघ में हर व्यक्ति भावनापूर्वक अपनी भागीदारी निभाने को तैयार रहेगा। सूर्यनगरी में कार्यकर्ताओं की कोई कमी नहीं है, जरूरत है उन्हें ससम्मान प्रेरणा करके आगे लाने वालों की।

जोधपुर नगर से महानगर तो बन गया, आपको अपना दिल भी बड़ा बनाना है। आप दिल बड़ा बनाकर सबको साथ लेकर चलेंगे तो प्रत्येक क्षेत्र में सूर्योदय हो सकता है। आपको ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप में स्वयं को लगाना है, दूसरों को आगे लाना है।

जोधपुर
24 अप्रेल, 2011

सदुपयोग और दुरुपयोग

अविचल-अविनाशी सिद्ध भगवन्त, अनन्तज्ञानी, अनन्तदर्शी अरिहन्त भगवन्त और ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना करने वाले संत भगवन्तों के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन!

बन्धुओं!

तीर्थंकर भगवान् महावीर की आदेय-अनमोल वाणी से निरन्तर सदुपयोग-दुरुपयोग की बात आपके सामने रखी जा रही है। सारी विचार धाराएँ, सारी मान्यताएँ, सारा आचरण, सदुपयोग और दुरुपयोग इन दो शब्दों में आ जाता है। दुरुपयोग करने पर वह मन-दण्ड बनता है, वचन-दण्ड बनता है एवं काय-दण्ड बनता है और सदुपयोग करने पर मन-निधान, वचन-निधान एवं काया-निधान बनता है। आप निरन्तर सुन रहे हैं, ऐसा नहीं है कि आपने इस वाक्य को व्यवहार में भुला दिया है। अपने बढ़िया बंगले में कोई गली-मौहल्ले का कूड़ा-कचरा नहीं भरता है। अपनी रसोई में कोई शौच-निवृत्त नहीं करता है। अपने सोने-चाँदी के दागीने कोई पालतू पशु को नहीं पहनाता हैं। संसार व्यवहार में आप सब हेय उपादेय के व्यवहार का ध्यान रखते हैं। किसी चोर डाकू की जमानत या साक्षी देनी पड़े तो आपमें से कौन तैयार होगा? किसी आतंकवादी को कौन घर में आश्रय व दुकान में नौकरी देने को तत्पर होगा? आप यह चिन्तन तो करें कि चौरासी लाख जीवयोनियों में भटकते- भटकते चिन्तामणि रत्न के समान यह जो

अनमोल नर तन पाया है, नर से नारायण बनाने वाले इस तन को पाकर क्या करना चाहिये? इस तन को किसमें लगाना चाहिये? मैं जो बात कह रहा हूँ वह आपके समझ में आ रही है ना!

आप स्वयं सोचें, विचार करें, जिन पर आपको राग है उनके प्रति आपका कैसा व्यवहार रहता है? और जिन पर राग नहीं है उनके प्रति कैसा व्यवहार होता है? आपका लड़का काला-कलूटा है, नाक झर रहा है, मुँह से लार टपक रही है, किन्तु राग है इसलिए वह आपके लिए राजकुमार है। एक दूसरे का लड़का है, वह चाहे सर्वांग सुन्दर है फिर भी आप कहीं खोट निकाल कर यह तो नहीं कह देंगे कि यह लड़का एक आँख से टेढ़ा देखता है? तन सुन्दर है फिर भी उसके प्रति राग नहीं, तो सुन्दरता होते हुए भी सुन्दरता नहीं दिखती। एक दूसरे गाँव का आदमी कभी आपसे पूछे- अमुक का घर कैसा है? यदि राग है तो आप उस घर की दस खूबियाँ गिना देंगे और राग नहीं तो कुछ भी कह देंगे। एक नादान है, ना समझ है वह तो फिर भी सहनशीलता रख रहा है, पर जो समझदार है, ज्ञानी है, धर्मी कहलाता है वह यदि अहंकार में डूबा है तो समझदार कैसा? आप यहाँ बैठे हैं, समता की बात सुन रहे हैं, सम्यक् दर्शन की बातें सुन रहे हैं। आपने संसार से तिराने वाली बातें भी कितनी ही बार सुनी हैं, समझी हैं, पर राग-द्वेष के बंधन में ऐसे बंधे हुए हैं कि सब कुछ सुनकर भी आपके व्यवहार में सुनने का सार नज़र नहीं आ रहा है। आप समझदार कहलाना चाहते हैं, पाट के पाये बने हुए हैं, फिर भी वही की वही स्थिति है, कोई बदलाव नहीं?

यदि अच्छी बात सुनकर-समझकर भी आपके व्यवहार में नहीं आई तो नतीजा क्या? आप स्वयं चिन्तन करें। सिनेमा में रील चल रही है, बिजली कभी बन्द हो सकती है, मोबाइल खराब हो सकता है, पर यह जो कर्म की रील चल रही है वह कभी खराब हुई नहीं और होगी नहीं। कर्म की रील हर क्षण-हर पल जैसा कर रहे हैं वैसा फोटू उतार रही है। आप क्या कर रहे हैं?

कैसा कर रहे हैं? किस भावना से कर रहे हैं, कर्म की रील में सब उतर रहा है। आप चाहे सारी दुनिया को ठग लीजिये, चाहे वेष परिवर्तन कर लीजिये, सब-कुछ बदल लीजिये, पर भीतर की भावना नहीं बदली तो कर्मों से कभी बच नहीं सकते।

आश्चर्य है, सबसे बड़ा आश्चर्य है, इतना सब करके आदमी कहता है- "हे भगवान्! मैं ऐड़ों कांई करियो जो ऐड़ो संकट म्हारे आयो है।" कहने वाले यह भी कहते हैं- "भगवान् जाने किस जन्म के कर्म उदय में आए हैं? इसके साथ मेरी क्या दुश्मनी है, मेरा क्या वैर है जो यह मेरे पीछे हाथ धोकर पड़ा है।" ऐसा व्यवहार रखकर, आप भगवान के चरणों में पहुँचकर क्या सिफारिश करना चाहते हैं? मैं एक बात पूछूँ- "आपके पास कोई चोर आकर रहना चाहे तो क्या आप उसे अपने पास रखेंगे? " आप चोर को न घर में रखना चाहेंगे और न ही दूसरों के पास रखने को कहेंगे। जब आप उसकी कोई सहायता नहीं करना चाहते, तो क्या भगवान उनकी सहायता करेंगे?

भगवान से कुछ भी छिपा हुआ नहीं है। भगवान से मांगने वाले अपना व्यवहार बदलने की क्यों नहीं सोचते? दुःख है तो दुःख आया कहाँ से? दुःख पैदा किसने किया? दुःख काटने वाला कौन? आपको ज्ञात होना चाहिए कि दुःख भी स्वयं ने पैदा किया है एवं खुद ही उसे काट सकते हैं।

ओ घर खराब है, आ दुकान सुगनां(शकुना) री नहीं, छोरा रो नक्षत्र ठीक नहीं, इण बहू रो पगछेरो खराब (घर में पैर रखना अपशकुन) है। आदमी ऐसा न जाने कैसी-कैसी बातें बोल जाता है? किन-किन पर दोषारोपण करता है? क्या-क्या सोचता है? आप अपना चिन्तन करें। आप चिन्तन करेंगे तो ही आपको लगेगा, मैं कैसे अपने-आपको सुधारूँ? मुझमें क्या-क्या दोष हैं? जिस दिन आप अपने दोषों को निकालने की सोचेगें। उस

दिन आपका शुभ चिन्तन रूप मननिधान बन जायेगा। आपका हर चिन्तन, कर्म काटने वाला बन सकता है। आपके हर व्यवहार से पुण्य अर्जित किया जा सकता है, हर कर्म, निर्जरा करने वाला बन सकता है। परन्तु कब? जब आप अपने मन, वाणी और शरीर का सदुपयोग करेंगे। जो योग्यता मिली है, जो सामर्थ्य मिला है और जो परिस्थिति मिली है, उसका सदुपयोग करेंगे तब।

आज ऋण लेकर मकान बनाने का युग है। न जाने किससे धन लेकर, किससे उधार लेकर मकान बनाया और उस पर अपना नाम लिखा दिया? माल किसी दूसरे का है, सहायता किसी दूसरे ने की है, मेहनत किसी और की है, बीसियों जगह से लोन लिया है, फिर यह मकान किसका? खुद के घर का क्या लगा? लिया दूसरों से है और नाम अपना। हमारी ये वृत्तियाँ, हमारा यह चिन्तन जब तक नहीं बदलता तब तक हम खुद असमाधि में रहेंगे और साथ रहने वाले भी दुविधा में ही रहेंगे। भावना ही फलवती होती है। अन्तर के परिणाम अगर शुभ हैं तो कार्य का परिणाम भी शुभ ही होगा। संघ समाज में भी आज इसी विवेक दृष्टि की आवश्यकता है। आप किसी भी रूप में संघ-सेवा करें, अन्तर की निर्मलता के साथ करें, विनय व विवेक के साथ करें, उसमें कर्त्तापन का भाव न हो। तब छोटा सा कार्य भी अधिक फलदायी बन जाता है। जो भी करें निस्वार्थ, निरभिमान वृत्ति से करें, सेवा, श्रद्धा व समर्पण की भावना से करें। रात-दिन दान देने वाला आँखे नीची रखता है एवं उलीच भाव से देता है, क्यों? वह तो यही सोचता है-"देने वाला देत है, देता है दिन रैन, लोग भरम मुझ पर करे, इण सूं नीचा नैन।" पुण्योदय से जो पाया है वह उपभोग के लिये नहीं, सदुपयोग के लिये है। आप सोचें- "मुझे तो यह पूर्व पुण्याई से मिला है, मैं कहाँ दे रहा हूँ? मैं तो एक माध्यम मात्र हूँ। ग्रहण करने वाला स्वीकार कर मुझ पर उपकार कर रहा है।

संघ-सेवा में लेने आने वाला भाई मेरा बोझ हलका करने आया है, मुझे सेवा का अवसर देने आया है।" इस भाव से किया गया दान ही सार्थक है अन्यथा नाम व प्रसिद्धि के लिये दिया गया दान तो लाखों की सम्पत्ति का सौदा कौड़ियों के बदले करने जैसा है।

आचार्य भगवन्त (पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमल जी महाराज) की बात याद आती है, उन्होंने कहा- "मेड़ता में कभी चौरासी गच्छ के चौरासी स्थानक थे। किसी पुण्यशाली जीव ने यह सोचकर कि मेरे पास दो मकान हैं, रहने के लिए एक पर्याप्त है, क्यों नहीं मैं एक मकान धर्म-साधना के लिए दे दूँ? ऐसे थे वे श्रावक। आज की स्थिति क्या है? कई ट्रस्टी अपने को मालिक मान बैठे हैं। कहना होगा- कई हैं जो धर्मादा करते नहीं है, धर्मादा खा रहे हैं। न जाने कितने लोगों ने दयालुता पूर्वक अपनी पूँजी लगाई, द्रव्य का ही नहीं समय का भी भोग दिया, किन्तु स्वामित्व कोई और जताते हैं। बनाया किसी और ने था, लड़ते कोई दूसरे ही हैं। यह नासमझी है। जो छूट जाने वाला है तथा जो अपना नहीं है उसे अपना मानना ईमानदारी नहीं है।

बात को समय के साथ पूरी करूँ। सबसे पहले हम तीर्थंकर भगवान् की भाषा में समझें- न यह तन मेरा है, न यह जमीन मेरी है और न ही यह भवन मेरा है। मेरा होता तो छोड़कर जाता नहीं। छोड़कर जाता है इसलिए मेरा नहीं है। आप अभी हाँ में सिर हिला रहे हैं, परन्तु यह बात जीवन में प्रभाव छोड़े तो बात बने। आप पुण्यशाली हैं। पुण्यशालिता के बल पर यहाँ तक पहुँचे हैं। आप अपनी दृष्टि को पवित्र करेंगे और आपके सम्पर्क में जो भी हैं उनको इस तथ्य से अवगत कराने का लक्ष्य रखेंगे तो आपका यहाँ आना और सुनना सार्थक होगा। कहने को तो आपमें से कई कह जाते हैं-" जीव अकेला आया, अकेला जायेगा।" कहना और बात है, कहे अनुसार जीवन में उतर जाय तो फिर कहना ही क्या। मैं कह गया- पशु को कोई हार

नहीं पहनाता, बंगले में गली का कूड़ा-कचरा कोई नहीं भरता। फिर आप इस अनमोल तन में कितने-कितने पाप भर रहे हैं, स्वयं सोचें? नहीं तो फिर वह कहावत सच हो जाएगी- "ऊँचै चढ़ कर देखो, घर-घर यो ही लेखो" (विचारपूर्वक देखने से लगेगा कि अपनी आंतरिक स्थिति सबके जैसी ही खराब है)। आप अपनी दृष्टि बदलें, प्राप्त अवसर का सदुपयोग करें तभी आपका सुनना सार्थक होगा।

जोधपुर
29 मई, 2011

गुणग्राही हो, दृष्टि अपनी

सम्पूर्ण दोषों का निकन्दन कर अविनाशी-अविचल पद पर विराजमान सिद्ध भगवन्त, घाती कर्मों को क्षय कर अनन्तज्ञान-अनन्तदर्शन प्राप्त करने वाले अरिहन्त भगवन्त और दोष निकन्दन में सतत जागरूक बन समिति-गुप्ति की आराधना करने वाले संत-भगवन्तों के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन।

बन्धुओ!

तीर्थंकर भगवान् महावीर की आदेय-अनमोल वाणी में प्रत्येक आत्मा को सिद्ध भगवन्तों के समान अनन्त ज्ञान वाला कहा है। जिसे तत्त्व का सम्यक् ज्ञान नहीं उसे यदि यह बात कही जाय तो वह सुनते ही आश्चर्यचकित हो जाएगा। कई हैं, जिन्हें आत्मा में अनन्त ज्ञान है, इसका बोध नहीं है।

आज अधिकांश लोग दुःख का रोना रोते हैं। उन्हें यह पता ही नहीं कि आत्मा के भीतर अनन्त सुख का सागर है। अनन्तज्ञान-अनन्तसुख होते हुए भी अज्ञानी, आत्मा में रहे अनन्तज्ञान और अनन्तसुख को मानना तो दूर, सोचने तक की कल्पना भी नहीं करता। जो निरक्षर हैं, मूर्ख हैं, अज्ञानी हैं वे अनन्तज्ञान की बात सुनकर आश्चर्यचकित हुए बिना नहीं रहते। जवाब में आपको नहीं, हमको भी कह जाते हैं- "महाराज! क्यों मजाक करते हो?

पहले से ही मैं अनपढ़ हूँ, अज्ञानी हूँ, फिर आप यह ताना क्यों दे रहे हैं? भगवान् की वाणी कह रही है- आत्मा में अनन्तज्ञान है, अनन्त सुख है। महाराज भी वही बात कह रहे हैं तो कुछ लोगों को यह बात उचित लग सकती है। फिर भी वे सोचते हैं कि यदि मेरी आत्मा में अनन्तज्ञान है, अनन्तसुख है तो मैं दर-दर की ठोकरें क्यों खाता हूं? ऐसा सोचने वाला कर्माधीन है। जीव कर्म के अधीन है तो ठोकरें खाता है, दुःख पाता है, आश्चर्यचकित होता है।

स्वामीजी श्री चौथमल जी महाराज कहा करते थे कि एक राहगीर रास्ते से निकल रहा है। चलते-चलते सड़क पर उसे मैले-कुचैले कपड़े में लिपटी पोटली दिखाई दी। सड़क पर पड़ी उस पोटली में गदंगी भी हो सकती है तो हीरे-जवाहरात भी हो सकते हैं। पर मैली पोटली देखकर उसे उठाना कोई नहीं चाहता। राह चलते लोग देखते हैं, किन्तु उठाना तो दूर हाथ तक कोई नहीं लगाते, क्यों? गंदे कपड़े की पोटली ज्यों की त्यों पड़ी रहती है। गंदे कपड़े की पोटली को कोई हाथ नहीं लगाता, वहीं यदि साफ रूमाल में गदंगी ही क्यों न हो, राह चलता व्यक्ति उसे उठाएगा जरूर। आपने सुन रखा है कि हरिकेशबल कुरूप था। उसे कोई भी लड़की अगर देखती तो वह तुरन्त कह उठती कि मुझे इसके साथ संबंध नहीं करना है। वह कुरूप था तो क्या उसकी आत्मा भी खराब थी? जैसे गंदें कपड़े में लिपटी पोटली कोई नहीं उठाता, वैसे ही कुरूप की कोई वांछा नहीं करता। एक व्यक्ति है उसे न घर वाले चाहते हैं, न परिवार वाले। गली-मोहल्ले और गांव वालों की क्या कहें, जिन्होंने पाला-पोषा था वे भी दूर रहते हैं। क्यों? क्या कारण है? क्या उसकी आत्मा मलीन है? शरीर काला- कलूटा हो सकता है, कुरूप हो सकता है, पर उसकी आत्मा मलीन है, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

मैं पहले कह गया- आत्मा में अनन्तज्ञान है, अनन्तसुख है, फिर एक व्यक्ति के प्रति घृणा और दूसरे व्यक्ति के प्रति प्रेम, ऐसा क्यों? बात यह

है कि एक की दृष्टि गृणग्राही है, दूसरे की दृष्टि में विषय-कषाय और राग-द्वेष भरे हैं। यह सब दृष्टि पर निर्भर है। अगर देखने वाला उपकारी के उपकार देखता है तो वह दूसरे को अपने आत्मस्वरूप की तरह देखेगा। वह केवल देखता ही नहीं, यदि वह बीमार है तो उसकी सेवा भी करेगा।

आप सब अनुभवी हैं। प्रेम कब बढ़ेगा? द्वेष कब बढ़ेगा? जानते हैं? दृष्टि में यदि मिथ्यात्व है तो उसे अहंकार होगा, वह अपने-आपको बड़ा समझेगा, सामने वाले को हीन मानेगा। आपने सुना है, कुछ लोगों ने पढ़ा भी होगा। हर पंथ, मत, ग्रन्थ उठाकर देख लीजिए विषय-कषाय से किनारा करने की बात सब जगह सुनने को मिलेगी। अभी आपने तत्त्वचिन्तक प्रमोदमुनि जी से सुना ही है- 'विषय-कषाय निवारो, पाप हरो देवा।' इस कथन का सार है- मन में जो भी विकार हैं, उन्हें निकाल बाहर करो, वह चाहे विषय-कषाय निकालने की बात हो या पाप हटाने की बात। आपने कई बार सुना है, आप सुनते तो बहुत हैं किन्तु सार क्या निकाला? सुनने वाले आचरण में उतार लें तो फिर क्या धन के पीछे दीवाने होने वाले रहेंगे? अपनी संतान को मारने वाले रहेगें? भाई-भाई में झगड़ें होंगे? लड़ाई-झगड़े, मनमुटाव, परस्पर वैर-विरोध का कारण है- अच्छी बातें सुनने के बाद भी सुनी हुई बातों को आचरण में नहीं ढालना।

आज घर-घर में सुनने को मिलता है कि अमुक घर में बहू जल मरी। मिट्टी का तेल छिड़क कर हत्याएँ क्यों हो रही हैं? फांसी के फंदे पर लटककर आत्महत्याएँ क्यों बढ़ रही हैं? सास-बहू में, बाप-बेटे में, भाई-भाई में, अड़ोसी- पड़ोसी में टकराव बढ़ने के पीछे कारण है- अज्ञान। अज्ञान के कारण सहनशीलता नहीं रहती। आचार्य भगवन्त पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमल जी महाराज फरमाते थे कि आज सहनशीलता की कमी से अन्याय, अत्याचार, आपाधापी की बढ़ोतरी हो रही है। इस आत्मा ने एकेन्द्रिय में रहते कितना सहन किया? सहन करते रहने से जीव का विकास होता आया

है। एकेन्द्रिय से बेइन्द्रिय, बेइन्द्रिय से तेइन्द्रिय, विकास का यह क्रम आपने कई बार सुना है।

आपको सत्संग के सुयोग के साथ वीतराग वाणी श्रवण करने का सुअवसर मिल रहा है, फिर सहनशीलता क्यों घट रही है? बचपन में माता-पिता की, परिवारजन की, बड़ों की बातें सुन ली जाती थीं। अब आप बचपन से जवान हो गए हैं। आज आप छोरे नहीं, छोरे के बाप हैं, अब क्यों सुनना? आप बड़े हो गए हैं, बड़े होने पर सहनशीलता नहीं बढ़ी तो कहना होगा- आप से तो वह वृक्ष अच्छा है जो फल आने के साथ झुकता है। आप पेड़ को ध्यान से देखिए। वृक्ष फल आने पर झुकता है, गर्मी पाकर पेड़ के फल पकते हैं और ज्यों-ज्यों फल पकते हैं, फलों में मिठास बढ़ती है। पेड़ झुकता है और गर्मी सहन कर मीठे फल देता है। आप क्या देते हैं? क्यों आदमी बात-बात में उफनता है? क्योंकि उसमें सहनशीलता नहीं है। जरूरत है दृष्टि में गुणग्राहकता की।

आज आपमें से कईयों की वृत्ति ठीक नहीं है। एक बच्चा स्कूल जाता है वहाँ दो दूनी चार और दो तीया छः पढ़ता है और बोलता है। आपमें से कई हैं जो दुकान पर बैठते हैं तब दो दूनी आठ या सोलह पाण पिच्यासी नहीं करते क्या? सोलह पाण पिच्यासी कहने वाला कहता है- "ले पाँच छोड़िया, अस्सी तो ला।" यह वृत्ति कितनी उचित है, आप स्वयं सोचे? जो ऐसा कहते हैं और दूसरों को मिथ्यादृष्टि बताते हैं, क्या उन्हें सम्यग्दृष्टि कहा जा सकता है? आपने अभी तत्त्वचिन्तक मुनि जी से सुना। सम्यग्दृष्टि दूसरों के गुण देखता है और अपने दोष देखता है। अधिकांश लोगों की आज क्या दृष्टि है? "उसके बेटे में दोष है, अमुक के बाप में दोष है, भाई दोषी है, पड़ोसी ठीक नहीं, यह गलत, वह गलत, बस ठीक हूँ तो मैं। मेरे सिवाय सब दोषी हैं। महाराज भी दोषी हैं।"

सम्यक्त्व मुँहपत्ति बांधने से नहीं आता, वेष बदलकर सामायिक

करने से भी नहीं आता। वीतराग देव और निर्ग्रन्थ गुरु मिलने से भी सम्यक्त्व नहीं आता। ओसवाल या जैन बनने से समकित आ ही जाएगी, ये भी कहना ठीक नहीं। सम्यग्दृष्टि गुण-दर्शन, गुण-वर्णन, गुण-ग्रहण करने वालों को प्राप्त होती है। मिथ्यादृष्टि दूसरों में दोष देखता है, सम्यग्दृष्टि गुण देखता है। दोनों में यही अन्तर है। मिथ्यादृष्टि तो आप हममें ही नहीं, अनन्त ज्ञानियों को, जिनमें सुख सागर लहलहा रहा है, उनको देखकर भी कोई-न-कोई कमी बता देगा। उसका कारण है- दृष्टि की मलीनता। आलोचना पाठ में आता है-

रतन बंध्यो गठड़ी विषे, सूर्य छिप्यो घन मांय।
सिंह पींजरा में दियो, जोर चले कछु नाय।।

हम सब दृष्टि को पवित्र बनाएँ, गुण-ग्रहण करें। सूर्य में प्रकाश है, ऊर्जा है। वह प्रकाश कम नहीं हुआ, कम नहीं होगा भले ही आज बादलों की ओट में सूर्य दिखाई नहीं देता है, किन्तु सूर्य का प्रकाश वैसा का वैसा ही है। सूर्य में प्रकाश था, है और रहेगा। घनघोर बादलों में सूर्य का प्रकाश छिप नहीं सकता। हां, कुछ समय उस पर बादलों का आवरण रह सकता है। ऐसे ही हमारी आत्मा पर आवरण आ सकता है और उसे हटाने का प्रयास किया जाना चाहिए। आप यदि सम्यग्दृष्टि बन गए तो सब जीवों में गुण ही गुण देखेंगे। दूसरी तरफ मिथ्यादृष्टि हैं, उसके सामने गुणवान हीं नहीं, भगवान् भी आ जाये तो वह कहेगा- "ये कैसे भगवान्? अपरिग्रह की बातें कहते हैं मगर स्वयं सोने के सिंहासन पर विराजमान हैं। अपरिग्रह सिद्धान्त की प्ररूपणा करने वाले क्या सिंहासन पर आरूढ़ होते हैं? भगवान् के सिर पर छत्र है, एक-दो ही नहीं, तीन छत्र है।"

आप, अपने-आपको देखें, अपना निरीक्षण करें। काँच पर मैल है तो उसमें स्पष्ट प्रतिबिंब नहीं दिखता। मैल साफ करके देखें तो अपना चेहरा स्पष्ट नजर आ जाएगा। आपको अपने चेहरे पर दाग, धब्बा या गदंगी नजर

आए तो आप साफ कर सकते हैं। काँच में मुँह देखा जाता है तो उसका उपयोग दूसरे कामों में भी किया जाता है। पतंग उड़ाने वाले बच्चे काँच का उपयोग करते हैं। वे डोर को पक्का करने के लिए काँच के चूरे के घोल में पतंग की डोर डालकर उसे दूसरे की डोर को काटने के योग्य बनाते है। काँच में देखकर केवल ज्ञान मिलाने वाले भी हैं और लड़ने वाले भी हैं। एक चिड़िया काँच के सामने बार-बार चोंच मारती है। वह अपनी चोंच को लहूलुहान कर देती है पर बार-बार चोंच मारना उसकी प्रकृति में है। काँच का कैसे उपयोग करना यह व्यक्ति पर निर्भर है।

जरूरत है आप अपनी दृष्टि पवित्र करके चलें। दृष्टि गुणग्राही है तो कहीं चले जायें, वह गुण दर्शन ही करेगा, गुण-ग्रहण ही करेगा। पवित्र दृष्टि वाला कहीं भी क्यों न चला जाये उसे बाधा नहीं आती। सुभद्रा सती को कितने कष्ट उठाने पड़े, किन्तु उसने चम्पानगरी के दरवाजे खोल दिए। मैं आपसे पूछूँ- सुभद्रा सती के उस समय के कष्ट ज्यादा थे या आपके इस समय के कष्ट ज्यादा हैं? कष्ट आते हैं, आएँगे। किन्तु हम-सबको सहनशक्ति बढ़ानी है। सहना आ गया तो मानकर चलिये एक-न-एक-दिन वह आत्मा से परमात्मा बन सकता है। दोष घटाने का प्रयास हो, इसके लिए दूसरों में गुण देखें, अपने दोषों को जानकर और समझकर उन्हें बाहर निकालने का प्रयास करें। आज पक्खी है। आप प्रतिक्रमण करेंगे तो केवल मिच्छा-मि-दुक्कडं कह कर नहीं रहें। जो पाप किए हैं, उनका प्रायश्चित्त करें और फिर से वे पाप नहीं हो, इसका पूरा ध्यान रखें। आप अपने आपको निर्मल-निष्कलंक-निर्दोष बनाकर सिद्धत्व की ओर बढ़ने का प्रयास करें, इसी मंगल भावना के साथ.....।

जोधपुर
30 जून, 2011

संदर्भ

1. दर्पण में अपना रूप देखकर जिनकी अन्तर्मुखी वृत्तियों के आत्म-परिणाम सर्वोच्च सोपान पर चढ़ गये, जिससे उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हुई, वे भगवान् आदिनाथ के ज्येष्ठ पुत्र भरत चक्रवर्ती थे। भरत चक्रवर्ती ऐसे तो पूर्ण निःस्पृह भाव से राज्य का संचालन करते थे, परन्तु भगवान् आदिनाथ के निर्वाण के पश्चात् उनकी विरक्तता और बढ़ गई। अब आवश्यकता थी समय के परिपाक की, एक प्रबोधक निमित्त रूपी घटना की। वह मिली नहीं कि घाती कर्मों के आवरण हटे नहीं। चक्रवर्ती होने के नाते भरत को लोक व्यवहार का पालन करते हुए शरीर का अभ्यंगन और सुन्दर वेशभूषा एवं अलंकार धारण करना अनिवार्य था। एक बार भरत स्नान, गंधमर्दन और दिव्य वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर अपने शीश महल आरिसा भवन में गये। चक्रवर्ती भरत वहाँ आदमकद दर्पण (काँच) के सम्मुख खड़े होकर अपनी रूप राशि निहारने लगे। उनकी अंगुलियों में पड़ी रत्नजटित मुद्रिकाएँ सुशोभित हो रही थी।

अचानक उनकी दृष्टि एक अँगुली पर पड़ी जो कान्तिहीन लग रही थी। उसमें रत्नजटित मुद्रिका गायब थी। भरत ने देखा कि वह मुद्रिका आँगन में पड़ी है। उनकी विचारधारा में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया। उन्होंने सोचा- "क्या मेरा सौन्दर्य इन पार्थिव रत्नों से ही है? क्या शरीर का अपना सौन्दर्य नहीं है?" शरीर के सौन्दर्य को देखने के लिए उन्होंने एक-एक कर अपने अलंकार और वस्त्रों को हटाया। मुकुट उतारा। जब सारे अलंकार उतार दिये तो उन्होंने दर्पण में देखा कि शरीर की शोभा लुप्त हो गई है। भरत को अहसास हो गया कि यह सब आरोपित सौन्दर्य है। शरीर तो असुन्दर है बाहर से और भीतर से भी। चिन्तन आगे बढ़ा- "कहाँ है इस शरीर में बल? यदि जल, अन्न, वायु न मिले तो बल कहाँ चला जायेगा? तब बल या शक्ति कहाँ है?" उन्होंने अनुभव किया कि अन्ततः आत्मा ही अनन्त शक्ति, ज्ञान और सुख का भंडार है। प्रश्नों के उत्तर खोजने में भरत के अन्तर्मन में शुभ परिणाम प्रकट हुए। भरत की चिन्तनधारा पूर्णतः आत्माभिमुख हो गई। संवेगों और निर्वेदों की भूमिका पर वे पहुँच गये। प्रशस्त अध्यवसाय एवं विशुद्ध लेश्या से आत्मगवेषणा करते-करते वे मतिज्ञानावरण कर्म के क्षय से अपने आत्मा पर लगे कर्मरज को पृथक् करते हुए उन्होंने अपूर्वकरण में प्रवेश किया। तदनन्तर उन्हें अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण प्रतिपूर्ण केवलज्ञान एवं केवलदर्शन उत्पन्न हुआ। उनके चारों घाती कर्म क्षय हो गये। पहले वे चक्रवर्ती के रूप में विजेता थे और अब वे घातीकर्म समूह के विजेता थे। देवों ने जय-जयकार

किया- केवली भरत का।

वे आरिसा भवन से निकले और स्वयमेव पंचमुष्टि लोच किया और दस हजार राजाओं को प्रतिबोध दे उन्हें श्रमण धर्म में दीक्षित किया। आत्मगवेषणा में लीन होने के समय से केवलज्ञान प्रकट होने के अन्तर्मुहूर्त्त जैसे समय तक न वे चक्रवर्ती पद से सम्बन्धित रहे, न श्रमण पर्याय से और न केवली पर्याय से ही। अतः उन्होंने उस समय को छोड़कर कुछ कम एक लाख पूर्व तक केवली पर्याय और उतने ही समय श्रमण पर्याय का पालन किया।

2. समस्त विपरीत परिस्थितियों में भी अपनी दृष्टि पवित्र रखने वाली महासती सुभद्रा का जीवन धर्म में दृढ़ता का एक अद्भुत उदाहरण है। चम्पानगरी में एक धनाढ्य युवक रहता था- बुद्धदास। सुभद्रा के सौन्दर्य पर वह अतिशय अनुरक्त था, परन्तु उसे जीवन संगिनी बनाने में एक बहुत बड़ी अड़चन थी। सुभद्रा भगवान् महावीर की अनुयायी थी और बुद्धदास बौद्ध धर्म का अनुयायी था। ऐसी स्थिति में उसे आशा नहीं थी कि सुभद्रा उसे अपना लेगी। उसने इस समस्या का निदान खोजा। वह जैन मुनियों एवं आचार्य की सेवा में रहने लगा और धार्मिक क्रिया-कलापों में सक्रिय रुचि लेने लगा। जैन धर्म के प्रति दृढ़ आस्था दिखाने से सुभद्रा का पिता उससे प्रसन्न रहता था। अनुकूल अवसर पाकर बुद्धदास ने सुभद्रा के साथ विवाह के लिए सुभद्रा के पिता के पास प्रस्ताव भेजा। सुभद्रा के पिता जिनदास ने सुभद्रा का पाणिग्रहण बुद्धदास के साथ कर दिया। सुभद्रा भी इस पर खुश थी, उसे क्या पता था कि बुद्धदास का यह व्यक्त रूप उसके अन्तरंग रूप से सर्वथा भिन्न है? प्रवंचना का आश्रय लेकर उसने सुभद्रा से विवाह किया था।

पति के घर आने पर सुभद्रा की दिनचर्या भगवान् महावीर की बताई धर्माराधना के अनुसार होती जबकि बुद्धदास और उसके सारे परिजन बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। वे सुभद्रा को विधर्मी मानकर उससे घृणा करने लगे। बुद्धदास ने भी सुभद्रा को स्पष्ट कह दिया कि तुम्हें महावीर को भूलना होगा। बौद्ध धर्म के अतिरिक्त यहाँ किसी और धर्म का अस्तित्व नहीं रह सकता। सुभद्रा ने सब कुछ सहन करते हुए बिना कोई प्रतिक्रिया दिये अपनी धर्मचर्या पूर्ण निष्ठा के साथ चालू रखी। घर के लोग सुभद्रा को अनेक तरह के कष्ट देते और उस पर व्यंग्य कसते। अब उसे स्पष्ट हो गया कि उसके साथ छल करके विवाह किया गया है। वह अजीब स्थिति में फंस गई। विवाह से मुक्त होना अपने शील को त्यागना होगा और साथ में रहने से धर्म की हानि होगी। उसने न तो विवाह से मुक्त होने का सोचा और न ही

अपने धर्म को छोड़ने का।

सुभद्रा एक पतिव्रता नारी थी, अतः धर्मसाम्य न होने पर भी, विपरीत परिवेश में भी उसने अपने पति को तिरस्कार की दृष्टि से नहीं देखा। पर उसका संकल्प और भी दृढ़ हो गया कि वह भगवान् महावीर के बताये धर्म पर ही अविचल रहेगी। जैनधर्म के प्रति बुद्धदास और उसके परिजन हर वक्त अनर्गल प्रलाप करते रहते थे। सुभद्रा की सहनशीलता चुकने लगी। उसने बुद्धदास से कहा कि- "यदि आपको जैन धर्म से इतनी घृणा है तो आपने मेरे से विवाह करने के लिए इसमें झूठी आस्था दिखाकर, दूसरों के भगवान् को अपना मानकर, स्वयं के भगवान् बुद्ध को धोखा नहीं दिया क्या? मेरा दृढ़ संकल्प है कि मैं तो जैन धर्म की अनुरागिनी ही बनी रहूँगी। आपकी आज्ञानुसार मैं लोकाचार करूँगी, परन्तु धर्म तो आत्मा का विषय है, इसमें आप मुझे स्वतंत्र रखिये।"

सुभद्रा की इस अविचल आस्था से सभी के मन में क्षोभ था। अब वे उस पर मिथ्या लांछन लगाकर उसे पतिता सिद्ध करने का अवसर ढूँढने लगे। देवयोग से उनको ऐसा अवसर मिल गया। एक बार एक अभिग्रहधारी मुनि सुभद्रा के घर आये। सुभद्रा का चित्त प्रसन्नता से खिल उठा। उसने उनसे भिक्षा ग्रहण करने का निवेदन किया। यकायक सुभद्रा का मन करुणा से भर उठा। उसने देखा मुनिराज की आंख में एक तृण दिखाई दिया। उसने सहज करुणा से भावित हो मुनि की आँखों से तृण निकाल दिया। मुनि की पीड़ा दूर हो गई। बुद्धदास की माता उसकी इस सेवा को सहन नहीं कर सकी और उसने बुद्धदास को बुलाकर कहा कि इस कुलक्षणी बहु ने एक मुनि के साथ अपना मुँह काला कर लिया है। माता के कहने पर बुद्धदास रोष से भर उठा और सुभद्रा को बुरा-भला कहने लगा। सुभद्रा समझ ही नहीं पाई कि पवित्र भावना से मुनि सेवा का प्रसंग ऐसी अपकीर्ति का वीभत्स रूप ले लेगा। फिर भी सुभद्रा मौन रही। बुद्धदास की माँ कहने लगी वो कोई मुनि नहीं, लम्पट होगा जो इसके बुलाने पर मुनिवेश में आया था। इसने तो अपने वंश की नाक ही कटवा दी।

अब घर के सभी लोग सुभद्रा को अनेक तरह के ताने देने लगे कि- " तुम्हारा धर्म यही दुराचार सिखाता है क्या?" केवल धर्मानुसरण के कारण सुभद्रा पर भयंकर विपत्ति आ पड़ी। उसने सभी से कह दिया- "मैं निर्दोष हूँ, मेरे शील का विश्वास आपको स्वतः ही कभी न कभी हो ही जायेगा।"

आगामी दिवस में चम्पानगरी में एक अद्भुत समस्या उठ खड़ी हुई। नगर की

प्राचीर के सभी द्वार, जो रात्रि में बंद किये गये थे, उनको द्वारपाल प्रयत्न करने परभी नहीं खोल पाया। हाथियों से भी द्वार खुल नहीं पाये। उन्हें काटकर खोलने के लिए बढ़इयों के सारे उपकरण विफल हो गये। अब यह निश्चित हो गया कि यह कोई देवी विपत्ति है। सभी लोग चिन्तित हो गये। तभी आकाशवाणी हुई कि- ''यदि इस राज्य में ऐसी कोई सती हो जो कच्चे सूत से चलनी को बाँध कर उससे कुएँ से पानी निकाल सके और वह पानी द्वारों पर छिड़का जाये तो द्वार स्वतः ही खुल जायेंगे।

राजा ने नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि ऐसी सती राज्य में कोई हो तो आकर नगर को कष्ट से मुक्ति दे। देखते ही देखते कई कुलवधूएँ आ गई लेकिन कोई भी कच्चे सूत के धागे से चलनी बांध कर कुएँ से पानी निकालने में सफल नहीं हो सकी। सुभद्रा को जब इस बात का पता चला तो अपने सतीत्व की परीक्षा के लिए वह भी जाने को तत्पर हुई, परन्तु सास ने उसे दुराचारिणी कह कर घर में ही बैठने को कह दिया। उसने कहा कि वे विश्वास करें, परन्तु घरवाले नहीं माने। फिर भी सुभद्रा अपने सतीत्व की परीक्षा के लिए अरिहन्त का स्मरण करती हुई, चल निकली। लोग उस पर खूब हँसे पर वह हताश नहीं हुई, उसे अपने सतीत्व पर पूरा विश्वास था। उसने कच्चे सूत से चलनी को बांध कर उसमें से पानी निकाल लिया। सभी लोग आश्चर्यचकित रह गये। राजा स्वयं आया और सुभद्रा को सम्मान सहित प्रणाम कर उससे निवेदन किया कि- ''हे देवी! अब इस पवित्र जल को नगर के द्वारों पर छिड़क कर उन्हें खोलिए। सुभद्रा ने महावीर प्रभु का स्मरण कर एक द्वार के पास आकर कहा- ''मैंने शीलधर्म का पालन किया है। मैं प्रभु महावीर और उनके धर्म पर अटल विश्वास रखती हूँ। सत्य, अहिंसा और करुणा की आराधना के साथ सतीत्व का पालन ही मेरा कर्त्तव्य रहा है। यदि मेरा सतीत्व पवित्र है तो इस जल के छींटे लगते ही यह द्वार खुल जाये।'' जैसे ही उसने जल के छीटें मार नगर के द्वार खुल गये। सुभद्रा की जय-जय से चारों दिशाएं गूँज गई। प्रपंचों की झूठी कहानियाँ खत्म हुई और सुभद्रा का सतीत्व प्रकट हो गया। बुद्धदास और उसके परिवार ने सुभद्रा से माफी मांगी और कहा- ''तुम सती-साध्वी हो। तुम्हारा धर्म महान् है। हम भी अब इसे अंगीकार करते हैं।'' सुभद्रा अनेक कष्टों के बीच भी अटल रही, पवित्र रही और अपने शील और धर्म पर आँच नहीं आने दी। पवित्र व्यक्ति की सभी बाधाएँ अन्त में समाप्त हो जाती है। जैन धर्म में सत्य-शील की प्रातः स्मरणीय 16 सतियों में सुभद्रा का नाम आज भी बड़े आदर के साथ लिया जाता है।

तन के रथ को सुपथ पर बढ़ाते चलें

शाश्वत स्थान को प्राप्त करने वाले सिद्ध भगवन्तों, आत्मा की शांति का संयोजन करने वाले अरिहन्त भगवन्तों और शांति के पथ पर चलकर समाधि भावों को बढ़ाने वाले संत भगवन्तों के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन!

बन्धुओं!

तीर्थंकर भगवान महावीर की आदेय-अनमोल वाणी में अभी तत्त्व-चिन्तक प्रमोदमुनि जी द्वारा शान्ति-प्राप्ति के कुछ मार्ग सुझाये गए। महाव्रतों को अपनाकर, अणुव्रतों का आचरण कर, श्रावक के कर्त्तव्यों का पालन कर इस उपलब्ध मानव-जीवन का सदुपयोग करके शान्ति को प्राप्त किया जा सकता है, यह आपने सुना। सबसे पहले अपने-आपका चिन्तन आवश्यक है। शान्ति-पथ के इन विभिन्न रूपों को सुनकर आपने अपना क्या लक्ष्य बनाया? क्या आप इस अनमोल तन के सदुपयोग हेतु सार्थक प्रयास कर रहे हैं? अथवा जो आपकी दिनचर्या बन गई है, वह चाहे धनप्राप्ति की हो, चाहे परिवार चलाने की हो, चाहे शरीर को सुख देने की हो, क्या उसमें कहीं कुछ धर्म का प्रभाव हुआ है? खेद तब होता है जब यहाँ एक घंटा जिनवाणी सुनने वाले भाई तीन घंटे तास खेलते हैं, तीन घंटे टी.वी. देखते हैं और न जाने कितने पापों का सेवन करते हैं? फिर भी उनके मन में ग्लानि नहीं, संकोच नहीं, सुधार का कोई प्रयत्न नहीं। धर्मस्थान में सात्त्विक दिखाई देने वाले व्यक्ति धन के लोभ में कितना अहित कर रहे हैं, शरीर के सुख के

लिए कितनी हिंसा रहे हैं? आप जानते हैं, जिस समाज के गौरव की बात अभी आपके समक्ष रखी गई उसमें बताया गया- ओसवाल वे थे जो व्यसनों के त्यागी थे। आप जरा चिन्तन तो करें कि आप उस मर्यादा में कितने कायम रह पाये हैं?

धर्म-साधना का प्रभाव जीवन के हर व्यवहार में झलकना चाहिए। यहाँ बैठकर एक घंटे वीतराग वाणी सुन लेने, सामायिक कर लेने, पाप से निवृत्ति कर लेने का मतलब यह तो नहीं कि फिर दिन भर पाप करने का अधिकार मिल गया। अपना दृष्टिकोण निर्मल हुए बिना क्या एक घंटे की सामायिक-साधना से आप दिनभर का पाप धो लेंगे? दृष्टि बदले बिना क्या ऐसा कभी होता है? क्या ऐसा कभी हुआ है? अगर ऐसा नहीं है तो हमें अपने भीतर का सुधार करना होगा। हमारे जीवन में आये हुए व्यसन, जो हमारे कुल, खानदान, धर्म और शासन-दीप्ति को धूमिल करने वाले हैं, दाग लगाने वाले हैं, उन्हें दूर करना होगा। इसके लिए दृढ़ संकल्प-शक्ति की आवश्यकता है। जीवन में जो भी बुराइयाँ आ गई हैं, वीतराग वाणी श्रवण कर धीरे-धीरे ही सही, उन बुराइयों को नष्ट करने अथवा कम करने का प्रयास अवश्य करें।

मुझे अचम्भा होता है कि अच्छे खानदान में जन्म लेने वाले कुछ भाई ऐसे भी होते हैं जो प्रवचन के पश्चात् मुँहपत्ति उतारते हैं तो उनके दाँत कत्थे की तरह लाल दिखते हैं। कुछ लोगों के मुँह से गुटखे की गंध आती है, कुछ के मुख से बीड़ी-सिगरेट की बदबू आती है। क्या यह मानव-जीवन व्यसनों का सेवन कर बर्बाद करने के लिए है? सुन तो यह रखा है कि पारस पत्थर चटनी बाँटने के लिए नहीं, अमृत कलश पैर धोने के लिए नहीं, नवलखा हार कुत्ते आदि पशु के गले में पहनाने के लिए नहीं है। क्या आपने कभी कुत्ते के गले में हार पहनाया है? नहीं तो फिर इस देव-दुर्लभ, नर-तन को पाकर इसे व्यसनों से कलंकित क्यों करते हैं? क्यों किसी के साथ

वैर-विरोध, क्रूर व्यवहार करते हैं? पैसे के लिए क्यों भाई-भाई कोर्ट-कचहरी में चढ़ते हैं? क्यों लालच में आकर परिवार की बहू को पीड़ा दी जाती है? क्यों एक बहू दहेज का नाम लेकर पूरे परिवार को जेल भेज देती है? यह सब कुछ क्या आप नहीं देख रहे हैं? इनमें सुधार कौन करेगा? मात्र धन के लक्ष्य से नैतिकता का कितना ह्रास हो रहा है सुनकर मन खिन्न हो जाता है।

कल एक भाई आया। वह एक किस्सा सुनाने लगा। पाप धोने का झाँसा देकर दो मित्र हरिद्वार पहुँचे। वहाँ पर एक ने दूसरे से कहा- ''यहाँ डुबकी लगा, तेरे सब दुःख समाप्त हो जायेंगे, सारे पाप धुल जायेंगे।'' उसने लोटा भर पानी लिया और शरीर पर डाल दिया। पहले मित्र ने कहा- ''ऐसे नहीं, डुबकी लगा।''

वह भाई बोला- ''मुझे तैरना नहीं आता। मैं डूब गया तो?''

''अरे तूने नोटिस बोर्ड पर लिखा हुआ नहीं पढ़ा? लिखा है- डूबने वाले को जो बचायेगा उसे पाँच सौ रुपये इनाम में मिलेंगे। तू डुबकी लगा। मैं तुझे निकाल लूँगा।''

ज्यादा कहने पर वह कूद गया। पानी में जाते ही गुचलकियाँ (डुबकी लगाने से गोता खाना) खाने लगा। वह चिल्लाने लगा- ''बचाओ, बचाओ।''

''अरे चिल्लाता क्यों है? नोटिस बोर्ड के पीछे जो लिखा है क्या उसे तुमने नहीं पढ़ा। वहाँ लिखा है जो डूबी लाश निकालेगा उसे 2500 रुपये इनाम मिलेगा।''

वह दोस्त को पाप धोने के बहाने लेकर गया। अब 2500 रुपये के लिए विश्वासघात कर रहा है। यह क्या है?

अचम्भा होता है यह सुनकर कि शील की रक्षा के लिए प्राणों को न्योछावर करने वाली, रूप सुन्दरियाँ आज देश में अपना शील बेचने को तैयार हो रही हैं। मैं कोई आश्चर्य की बात नहीं कह रहा। आज घर-घर में

क्या हो रहा है? लड़का अपने बाप के साथ क्या व्यवहार कर रहा है? बहू ससुराल वालों के साथ कैसा व्यवहार कर रही है? क्या इस तरह के व्यवहार से कोई सुखी हो जायेगा? क्या इस तरह के व्यवहार से प्रतिष्ठा बढ़ जायेगी? क्या ऐसे व्यवहारों से कभी शांति मिली है?

हमारा लक्ष्य क्या है? गृहस्थ के षट् कर्म हैं- ईश-स्मरण, गुरु-सेवा, स्वाध्याय, संयम, तप और दान। आप इनमें से क्या-क्या कर रहे हैं? अपना चिन्तन करें। आप नोट कर लें- दुःख देने से कभी सुख मिलने वाला नहीं है। आप यह तो सोचें कि आपके बुजुर्ग जिनके पास न पंखा था, न कूलर और न ही ए.सी. था, वे गर्मी में कैसे रहते थे? गर्मी पहले भी थी, आज भी है, लेकिन आज आप बिना साधन के नहीं रह सकते है। सहनशक्ति घटती जा रही है।

कई लोग कहते हैं- "महाराज! मैंने धंधा छोड़ दिया। अब मैं निवृत्ति में हूँ।" आपमें से बहुत से निवृत्त हैं, लेकिन क्या करते हैं? व्यापार से निवृत्ति के पश्चात् संवर-सामायिक-रूप धर्म की प्रवृत्ति में स्वयं को ढ़ालने के बजाय अनर्थ की प्रवृत्ति में ढालना क्या निवृत्ति है? राजनीति, तेरी-मेरी, अखबार, टी.वी. आदि में समय बिताना क्या निवृत्ति कहलाती है? निवृत्ति वालों को तो भावी पीढ़ी को संस्कार देना और परिवार के सदस्यों को नैतिक बनाना चाहिए, लेकिन उन्हें स्वयं भी सामायिक में बैठना, प्रवचन सुनना, साधना करना, माला जपना भारी लगता है। कुछ हैं जो घंटे भर के लिए ही सही, यहाँ आते हैं, लेकिन यहाँ से जाने के बाद समय का कोई ठीक उपयोग नहीं करते। निवृत्ति का अर्थ है- पाप कार्यों से निवृत्ति। धंधे से निवृत्ति के साथ संवर की, संयम की साधना करनी चाहिए।

आज असंख्य जीवों को दुःख देकर सुख ढूँढ़ा जा रहा है। किन्तु दुःख देने से सुख नहीं मिल सकता। फिर इतनी हिंसा करके भी क्या आप

सुख की अनुभूति कर रहे हैं? क्या अब शरीर को शांति है? आप तेईस घंटे भौतिक सुख-साधनों के बीच रहते हैं तो यहाँ एक घंटा रहना आपको कैसा लगता है? जरूर उन तेईस घण्टों की अपेक्षा धर्मश्रवण में शान्ति का अनुभव तो होता ही होगा। आप जिस भौतिक सुख को साता मान रहे हैं वस्तुतः वह साता नहीं, असाता है। दूसरे जीवों को दुःख देकर जो भी सुख मिल रहा है वह आगे चलकर दुःख देने वाला ही बनता है। आप अगर इस तथ्य को समझ लेंगे तो हिंसा के साधनों में कमी लाने का भाव बनेगा।

आज न शरीर का दुःख सहन करने की स्थिति है, न वचन का दुःख सहने की स्थिति है। किसी ने कुछ कह दिया तो अनबन या लड़ाई-झगड़ा हो गया। आज सहन शक्ति बिल्कुल नहीं है। अध्यक्ष को भी कह देते हैं- "मैं आपकी क्यों सुनूँ? मैं अपने घर की रोटी खाता हूँ।" संघ-समाज की क्या बात कहूँ? अपने घर में भी सहनशक्ति नहीं है। इसी जोधपुर में कभी एक-एक घर में तीस-तीस, चालीस-चालीस सदस्य एक साथ रहते थे, आज चार सदस्यों का साथ रहना भी मुश्किल हो रहा है। कारण क्या है? मैं आगे की बात कहूँ- आप शायद साथ रहना ही नहीं चाहते। लड़के का कमरा अलग है, लड़की का अलग। उसके साधन अलग हैं, आपके अलग। बच्चों को जब बचपन से ही अलग-अलग कमरों में रखा जाता है तो आगे चलकर वे साथ रहेंगे और एक दूसरे की सेवा करेंगे, इसकी उम्मीद मत रखना।

आज पारिवारिक स्थिति हो या सामाजिक स्थिति, करणीय काम छूट रहे हैं। श्रद्धावश यहाँ आकर सामायिक करने वाले भी हैं तो उनके लिए भी लोग कहते हैं- "बाबजी! यहाँ से जाने के बाद ये चार घंटे ताश खेलते हैं, तीन-चार घंटे टी.वी. देखते हैं, आप इनको नियम करा दें।" जरूरत है हमारी नैतिकता की भूमि मजबूत हो। यह जितनी मजबूत होगी उतना मजबूत आध्यात्मिक महल खड़ा हो सकता है। आप अपनी दिनचर्या में,

व्यवहार में परिवर्तन लाने का काम कीजिये। देव-स्मरण, गुरु-भक्ति, स्वाध्याय, संयम, तप, दान को जीवन-व्यवहार में बढ़ाइये, फिर देखिये आपके जीवन में हीं नहीं, घर-परिवार में और संघ-समाज में शांति बढ़ती है या नहीं। आज शांति नहीं है। पिता ने पुत्र को कुछ कह दिया तो वह मुँह चढ़ाकर पाँच दिन पिता से बोलता नहीं, आखिर पिता को ही उसे मनाना पड़ता है।

आप शिक्षारूप वचन सुनकर भी आचरण में लाने की कितनी तैयारी कर रहे हैं, आप अपना चिंतन करना। जीवन उत्थान के लिए ये सूत्र बताये जा रहे हैं, लेकिन आप में से अधिकांश इन सूत्रों को यहाँ से उठने के साथ भुला देते हैं। आपका लक्ष्य, आत्मा से महात्मा और महात्मा से परमात्मा अभी बना नहीं है। अतः आवश्यकता है अपने व्यवहार में परिवर्तन लाने की। आप जीवन-निर्माण में, घर-परिवार और संघ-समाज की शांति के साथ शासन-दीप्ति में ऊँचे उठने का लक्ष्य रखेंगे, इसी मंगल मनीषा के साथ....।

जोधपुर
3 जुलाई, 2011

जीव के रक्षण में बनें सजग

आत्म-रमण करने वाले सिद्ध भगवन्त, अभयदाता, ज्ञानचक्षुप्रदाता अरिहन्त भगवन्त, अभय के इसी मार्ग पर तीन करण तीन योग से चलने वाले संत भगवन्तों के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन!

बन्धुओं!

तीर्थंकर भगवान महावीर की आदेय-अनमोल वाणी में धर्म के मूल सूत्र आचारांग के माध्यम से अज्ञान हटाने की प्रेरणा दी जा रही है। 'लोगंसि जाण अहियाण दुक्खं' (आचारांग 1.3.3) अर्थात् संसार में अज्ञान तथा मोह ही अहित और दुःख करने वाला होता है। इस तरह दुःखों का मूल अज्ञान, अविद्या या अविवेक बताया जा रहा है। अपने शरीर के रक्षण में अथवा दूसरे शब्दों में विनाशी जड़ के रक्षण में हम जितनी सावधानी बरत रहे हैं, जितने सचेष्ट हैं, हम आत्मगुणों की हानि में उतनी ही बड़ी नादानी कर रहे हैं। अपने शरीर की थोड़ी-सी पीड़ा हमें सहन नहीं हो पा रही है। परिणामस्वरूप, इस विनाशी की थोड़ी-सी सहूलियत के लिए थोड़े-से आराम के लिए, असंख्य-अनन्त जीवों की घात किए जा रहे हैं। कहने के लिए कहा जा रहा है-

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।
देवावि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो।।

(दशवैकालिक सूत्र 1.1)

अहिंसा-संयम-तप रूप धर्म उत्कृष्ट मंगल है। कहा तो यही जा रहा है, पर न अपने जीव की रक्षा हो रही है, न दूसरे जीवों की घात बचाई जा रही है। धोखेबाज की रक्षा के लिए विश्वासी को घर से निकाला जा रहा है। दगा देने वाले दोस्त को घर में रखकर, साथ निभाने वाले मित्र को घर से बाहर किया जा रहा है। आत्मा की उपेक्षा कर शरीर के सुख को प्रधानता दी जा रही है। यह मानते हुए कि इस शरीर को कितना ही अच्छा खिलाया जाय, कितनी ही सावधानी रखी जाय, यह शरीर साथ रहा नहीं, रहेगा नहीं। क्या आप सब इस तथ्य को जानते हैं? क्या आपको भरोसा है कि शरीर साथ रहेगा? यदि नहीं तो हमारी दैनिक क्रियाओं में उसका प्रभाव क्यों नहीं? हम किस कारण नादानी कर रहे हैं? यह चिन्तन का विषय है।

सचित्त के त्याग को लेकर आपके सामने विषय का विवेचन रखा जा रहा है। यह मात्र धर्मस्थान के लिए ही नहीं, इस स्थानक में प्रवेश करने के ही लिए नहीं, अपितु जीवन के हर क्षेत्र में अपनाने के लिए है। यह बात विवेक जगाने के लिए कही जा रही है। हमारी जो कार्यप्रणाली है, हमारा जो व्यवहार है चाहे वह खाने का है, पहनने का है, रहने का है, शरीर की लज्जा निवारण के लिए लिया जाने वाला वसन है, उन सबमें छः काय के जीवों को अपने समान मानना एवं समझना है- "अप्पसमे मण्णेज्ज छप्पिकाए।" "मैं जीना चाहता हूँ, इसी तरह सब जीव जीना चाहते हैं। मुझे दुःख प्यारा नहीं, इसी तरह किसी को दुःख इष्ट नहीं। मैं अहंकार के मद में जानबूझकर अथवा अविवेक असावधानी से ऐसी कोई क्रिया नहीं करूँ जिससे एक, अनेक, असंख्य, अनन्त जीवों को पीड़ा का अनुभव होता हो।"[1] अपनी रक्षा का यह सूत्र जैसे अपने लिए ठीक है, उसी तरह अन्य जीवों के प्रति अपनाया जाय, तो बहुत बड़े पाप से बचा जा सकता है, बहुत बड़े बन्धन से अपना बचाव किया जा सकता है। हिंसा सबसे बड़ा पाप है। आप हँसी-हँसी में, खेल-खेल में, स्वाद के वशीभूत होकर जो भी हिंसा कर रहे हैं उससे बढ़कर

कोई पाप नहीं है। व्यवहार दृष्टि में हिंसा से बड़ा कोई पाप नहीं और निश्चय दृष्टि में मिथ्यात्व बड़ा कोई पाप नहीं है।

आचार्य भगवन्त (पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमल जी महाराज) फरमाया करते थे- "अगर आपकी माँ, आप पर दया नहीं करती, आपका रक्षण नहीं करती, स्वयं दुःख पाकर भी आपको कष्ट नहीं हो, ऐसा प्रयास नहीं करती तो यह सामायिक कौन करता? ध्यान कौन करता? प्रवचन कौन सुनता? उपवास-बेला-तेला-अठाई कौन करता? जन्मते ही माँ गला घोंट देती तो आज आप जो क्रियाएँ कर रहे हैं कौन करता? आप हैं तो माँ की दया के बल पर। जन्मने के पहले से माँ आप पर दया कर रही है।" ध्यान रहे, मैं जन्मने के पहले की बात कह रहा हूँ। अर्थात् आप जब माँ के पेट में थे तभी से दोस्त, साथी, मास्टर, सहयोग देने वाला कोई भी क्यों न हो, सबसे पहले दया के संस्कार किसने दिए? क्या कह कर संस्कार दिए? क्या माँ ने कभी कहा कि मैं तेरे रक्षण के लिए कष्ट उठा रही हूँ?

दूसरों की पीड़ा देखकर, दूसरों के कष्ट देखकर आपके मन में कष्ट या पीड़ा का अनुभव होता भी है या नहीं? अगर आपको पीड़ा का अनुभव नहीं होता है तो मानकर चलिये धर्म में अभी पहला चरण तक नहीं रखा है। आप नोट कर लें दुनियाँ के दूसरे पाप जीवन में रहते हुए समाप्त किए जा सकते हैं, परन्तु किसी जीव के प्राण हरने का पाप तो भोगना ही पड़ेगा किसी न किसी भव में।

अगर आपने किसी लोभ-लालच में झूठ बोल दिया तो भी बुरा है। झूठ बोलना पाप है। झूठ पाप तो है ही, विश्वास घटाने वाला है, सुख-चैन उड़ाने वाला है, भरोसा समाप्त करने वाला है। झूठ बोलकर किसी को पीड़ा पहुँचाई, समझ में आ जाने पर पश्चाताप कर लिया जाय तो शायद किए हुए झूठ के पाप की धुलाई हो सकती है। आप कह सकते हैं- मैंने परिस्थितिवश,

नादानी से, लाचारी के कारण, विशेष आवश्यकता होने से किसी का धन लूट लिया, किसी का माल हड़प लिया, किसी की रकम निकाल ली। शास्त्र कहता है- अगर उसे ब्याज सहित वापस दे दिया जाय तो शायद चोरी का पाप भी धुल सकता है। क्रोध आने के बाद कहने वाला कह सकता है- भाई! मुझ पर भूत सवार हो गया, मुझे ध्यान नहीं रहा और गुस्सा आ गया। क्रोध कई कारणों से आ सकता है, आपकी बात नहीं मानने पर, हानि हो जाने पर, किसी के द्वारा तिरस्कार कर दिए जाने पर, जिस पर आपका राग है उसे पीड़ा देने पर, आदि कई कारणों से गुस्सा आ सकता है। पर चिन्तन करने की बात यह है कि अमुक बात नहीं मानी तो गुस्सा आ गया, लेकिन आपने क्या भगवान की बात भी मानी? भगवान ने क्रोध की विनाशलीला दिखाते हुए कहा कि क्रोध वह भयंकर आग है जिसमें सारे गुण नष्ट हो सकते हैं। करोड़ वर्ष तक तप करके गुस्सा करने वाला, तप के लाभ को गवाँ बैठता है। अमुक ने बात नहीं मानी तो गुस्सा आ गया, लेकिन आपने क्या गुरु की बात मानी, भगवान की बात मानी, शास्त्र की बात मानी? जब तुमने भगवान, गुरु, शास्त्र की बात, जो तुम्हारे हित के लिए, सुख के लिए थी उसे भी नहीं मानी तो आप ऐसे कौनसे छत्रपति हो, देव-देवेन्द्र हो, राजा- महाराजा हो जो आपकी हर बात मान ली जानी चाहिये। तूने गुरु की ही नहीं, भगवान की बात नहीं मानी। उन्हें उनकी बात न मानने पर गुस्सा नहीं आया तो तुम्हें कैसे गुस्सा आ गया? कदाचित् समझो गुस्सा आ भी गया, सामने वाला नाराज हो गया, बोलना बंद हो गया, लेकिन इस क्रोध की आग को बढ़े हुए वैर को, नाराजगी को भी समाप्त किया जा सकता है। आप हाथ जोड़कर, क्षमायाचना करके, माफी मांग सकते हैं और शायद माफी मांगने पर सामने वाला क्षमा भी कर सकता है। क्रोध का पाप, साफ हो सकता है, धुल सकता है।

अहंकार में आकर आपने किसी का अपमान कर दिया, तिरस्कार कर दिया- लेकिन यह पाप भी धुल सकता है। इसी तरह कपट किया, षड्यंत्र, निंदा, चुगली आदि कितने ही पाप करके भी पश्चात्ताप की आग में विनम्रता से सही-सही बात बता देने के बाद उस पाप का कचरा यहीं जलाया जा सकता है, इसी जन्म में भोग कर समाप्त किया जा सकता है।

परन्तु यदि आपने किसी जीव के प्राण हर लिये, उसे मार दिया तो क्या वह पाप धुल सकता है? प्राण-रहित जीव के प्राण, क्या भगवान से विनति करके भी लाए जा सकते हैं? हिंसा का पाप कैसे छूटेगा? याद रखें- प्रभु महावीर की वाणी आचारांग सूत्र में स्पष्ट कहा है कि- मारने वाले को मरना पड़ेगा, काटने वाले को कटना पड़ेगा, दुःख देने वाले को दुःख भोगना पड़ेगा। जैसा करोगे, वैसा भरना होगा।[2] प्राण ले लेने के बाद फिर से प्राण दिए नहीं जा सकते। आपमें चाहे जो मंत्र-तंत्र-शक्ति हो, फिर भी प्राणरहित जीव में प्राण वापस नहीं लाये जा सकते।

हिंसा सबसे बड़ा पाप है। आप अपना चिन्तन करें कि हर दिन हमसे कितनी-कितनी हिंसा होती है? रोज एक नहीं अनेकानेक जीवों की हिंसा हो रही है। वह हिंसा का पाप नवकार मंत्र की माला फेरने से, पाँच सामायिक कर लेने से, महीने में दो-चार दया कर लेने से, उपवास, अठाई ही नहीं मासक्षमण तप से भी छूटने वाला नहीं है। त्रिपृष्ठ वासुदेव के भव (भगवान् महावीर का अठारहवाँ पूर्वभव) में शय्यापालक के कान में शीशा डलवाकर मारने का पाप भगवान महावीर को अपने पूर्वभव में हजारों मासक्षमण करने पर भी समाप्त नहीं हुआ। वह पाप साधु बनने के बाद भी कानों में कीलें ठुकाकर ही समाप्त हुआ, जबकि उनकी सेवा में असंख्यदेव रहते थे, परन्तु कर्म के उदय होने पर एक भी देव नहीं आया।

आज कितने जीवों की घात हो रही है, इसका हिसाब तो लगाओ।

कभी एक दिन दया कर लेने वाले को दूसरे दिन दया करने की कहें तो जवाब मिलता है- "बाबजी! काले तो करी, म्हाने ही म्हाने क्यूँ कहो?" लेकिन पाप करते भी कभी मन में आता है कि कल इतनी हिंसा की, आज क्यों कर रहा हूँ?

आप अपना चिन्तन कीजिये, विवेक जगाइये। आपकी हर क्रिया में, आचरण में, पहनावे में, खाने में, पीने में न जाने कितनी-कितनी अनर्थ की हिंसा हो रही है, इसका भी कोई विचार है? दीक्षा-प्रसंग पर आपने सुना होगा, गौतम मुनि जी ने किसी दीक्षार्थी की भावनाव्यक्त करते हुए एक बात कही थी- "संसार में दुःख है इसलिये मैं दीक्षा नहीं ले रहा हूँ। मेरे कारण संसार में रहते हुए दूसरों का दुःख मिटाया जा सके, अर्थात् मेरे द्वारा दूसरों को दुःख नहीं हो, इसलिए दीक्षा ले रहा हूँ।" आपको कोई मारे तो कैसा लगे? और आप किसी को मारो तो उसे भी कष्ट होगा। आपके तो सूई भी बिना विवेक के लग जाय तो गुस्सा आ जाता है। डॉक्टर इंजेक्शन देता है, चीरफाड़ करता है, आपके हित के लिए, रोग मिटाने के लिए, पीड़ा कम करने के लिए वह भी अविवेक से सीधी सूई घुसेड़ दे तो डॉक्टर पर भी गुस्सा आ जाता है। दाढ़ी बनाने वाला केश उतारने के बजाय चमड़ी उतार दे तो क्या दूसरी बार उसके पास जाओगे?

पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति के न जाने कितने ही जीवों की घात हो रही है। जब तक जीव-हिंसा नहीं छोड़ेंगे, आप आराम कैसे पायेंगे? बबूल का बीज बोकर आम कैसे मिलेंगे?

आचार्य भगवन्त (आचार्य हस्ती) फरमाते थे- "खाने को पहले भी गृहस्थ खाते थे, पेट भरने को खाते थे, पर आज खाने के तरीके कुछ अलग हो गये हैं। हरी शाक छीलने का तरीका पहले अलग था, आजकल तोरु हो या भिण्डी उसका पेट चीर कर मसाला भरकर खाया जाता है। यह खाना

स्वाद के लिए है। वरना खाने के लिए कहा जाता है- "उतरा घाटी, हुआ माटी।" आज नौकरों से काम करवाया जाता है, नौकरों के काम करने का तरीका आपकी तरह विवेक वाला नहीं हो सकता। वनस्पति के जीवों की क्या हालत की जाती है। आपको कोई इसी तरह शल्य क्रिया करते समय डिजाइन करे, ऊपर की चमड़ी उतारकर नई चमड़ी लगाये, अंग को आलू की पपड़ी की तरह समान भाग से काटे तो आपको कैसा लगेगा?

सचित्त का विवेक क्या? यह विवेक क्या स्थानक तक के लिए है? सचित्त का विवेक स्थानक के लिए तो है ही, आपके हर व्यवहार में भी होना चाहिये। पहले धर्मस्थान में बहिनों को कहा जाता था कि छोटे बच्चों के कारण व्याख्यान में बाधा न आए इसका उपयोग रखना। आज बहिनों के बच्चे कम हैं, लेकिन आपकी जेबों में जो खुनखुना (मोबाइल) हर दम रोने की आवाज निकालता रहता है। कभी कोई भाई ऊपर आया हुआ है, नीचे मोबाइल की घंटी बज रही है तो तुरन्त भागकर जाता है।

लोग कहते हैं पर्यावरण दूषित हो रहा है। पर्यावरण दूषित किससे हो रहा है? ये बिजली के जितने भी संयंत्र हैं, पैट्रोल से चलने वाले जितने भी साधन हैं वे सब पर्यावरण को दूषित कर रहे हैं। पहले धर्मस्थान में पैदल चलकर आया करते थे, आज पास में से सब्जी भी लानी हो तो स्कूटर चाहिये, पाँव से चलना नहीं चाहते। क्या आपको कोई बीमारी है? क्या इतनी कमजोरी है कि आप दो-चार फर्लांग भी चल नहीं सकते? स्वयं ही बीमारी को क्यों बुला रहे हो? क्यों घुटने जाम कर कुर्सी पकड़ रहे हो? संसार में जो काम पहले दिमाग से चलता था, आज कम्प्यूटर से किया जा रहा है। जोड़-बाकी, गुणा-भाग सब कुछ कम्प्यूटर करता है।

धर्म का स्वरूप अहिंसा-संयम-तप में कहा गया है। सभी प्राणियों पर दया करना सर्वश्रेष्ठ धर्म है। आपके मन में जब तक अपने समान दूसरे

जीवों को समझने की बात नहीं आयेगी, तब तक हिंसा से विरक्ति होगी नहीं। यह अहिंसा-दया जीवन के हर व्यवहार में आयेगी तो आप कम से कम अनर्थ के पाप से बचकर अल्पारम्भी भी बन सकेंगे। सचित्त का विवेक धर्मस्थान के लिए तो है ही, जीवन के हर क्षेत्र में इसका उपयोग हो, ऐसी मंगल भावना है।

जोधपुर
24 जुलाई, 2011

संदर्भ

1. सव्वे पाणा पिआउया, सुहसाता दुक्खपडिकूला।
   अप्पियवधा पियजीविणो, जीवितुकामा, सव्वेसिंग जीवितं पियं।।
   (तम्हा ण हंता ण विघातए) -आ.सूत्र 1.2.3.4
2. आवंती के आवंती लोयंसि विप्परामुसंति अट्ठाए अणट्ठाए वा एतेसु चेव विप्परामुसंति।। -आचारांग सूत्र 1.1.5.1

   इस लोक में जो भी मनुष्य सप्रयोजन या निष्प्रयोजन हिंसा करते हैं, वे उन्हीं योनियों में उत्पन्न होकर उन-उन प्रकारों से हिंसाजनित कर्म उदय में आने पर भोगते हैं।

   ण य अवेदयित्ता अत्थि हु मोक्खो।। -प्रश्नव्याकरण सूत्र 1.43

   हिंसा के कटुफल को भोगे बिना छुटकारा नहीं।

संथारा साधक श्री सागरमुनि जी : एक प्रेरणास्रोत

शाश्वत स्थान को पाने वाले सिद्ध भगवन्तों, आत्मतत्त्व से एकाकार बनने वाले अरिहन्त भगवन्तों, समर्पणशील जीवन से श्रद्धा व विश्वास का भाव जन-जन में जगाने वले संत-भगवन्तों के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन। बन्धुओं!

तीर्थंकर भगवन्त प्रभु महावीर का यह जिनशासन ज्ञान से, श्रद्धा से, संयम व समर्पण की पावन भावना से आज भी जयवंत है। ज्ञान से और श्रद्धा से इस शासन की प्रभावना करने वाले आज भी हैं और तप व संयम में समर्पण के साथ शासन की जाहोजहाली करने वाले भी हैं। जैन इतिहास के एक-एक पृष्ठ को ध्यान से देखें, चिन्तन-मनन करें तो ज्ञान से, श्रद्धा से, तप व संयम से, शासन व गुरु के प्रति समर्पण से धर्म व शासन के प्रति अश्रद्धा रखने वालों के अन्तर में श्रद्धा के भावों को जागृत कर, अनित्यता से उनके मन को हटा, नित्यता के भावों में स्थिर करने वाले, अनेक आचार्यों के नाम आज भी मिल जायेंगे। हमारे समक्ष उनका शरीर तो नहीं है, पर जिनानुयायियों के ज्ञानादि गुणों की महक, आज भी विद्यमान है और वर्तमान में जिनशासन के इस उद्यान को महका रही है। प्रभव, शय्यंभव, भद्रबाहु, हेमचन्द्राचार्य[1] आदि एक-एक आचार्य ऐसे हुए हैं, जिन्होंने संघ और शासन

की महती प्रभावना की और लाखों को संघ व शासन के प्रति श्रद्धावान् बनाया।

ज्ञानीजन इस जीवन को एक खेल बताते हैं और जीवों को खिलाड़ी। वे कहते हैं कि जीवन के इस खेल को इस तरह खेलें कि खेलने वाले खिलाड़ियों का जीवन तो आदर्श बने ही, पर साथ ही साथ इस खेल को देखने वाले हजारों-लाखों दर्शक इसे देखकर जागृत बनें, उनमें श्रद्धा व समर्पण का वैसा ही भाव जगे। इस जीवन को नाटक भी कहा गया है। जीव को चाहिए कि वह इस नाटक में महावीर की तरह, राम और कृष्ण की तरह अभिनय करे और इस मर्यादा के साथ नाटक खेले कि उससे जन-जन कुछ सीखे। आपका यह नाटक युगों-युगों तक लोगों की स्मृति में रहे, पीढ़ियाँ उसे याद करे और याद कर-कर के कुछ न कुछ ग्रहण कर आगे बढ़े।

आज जिस महापुरुष की पुण्यतिथि आप और हम यहाँ पाप-हटा अर्थात् पावटा के स्थानक में तप-त्याग सहित मना रहे हैं, उस महापुरुष ने भी ऐसा ही एक खेल खेला और अपने जीवन को और जन्म को सार्थक बनाया। रत्नों को परखने वाले जौहरी कुल में जन्म लेकर इस लाल ने ज्ञान, दर्शन, चारित्र के रत्नों की परीक्षा करने में अत्यन्त कुशलता प्राप्त की। आचार्य भगवन्त पूज्य श्री हस्तीमल जी महाराज फरमाते थे- "कभी-कभी उच्च कुलों में ऐसे पुण्यशाली जीव जन्म लेते हैं, जिन्हें जरा-सा भी सत्संग मिल जाये, तनिक-सा भी सद्धर्म का रंग लग जाए तो उनके जीवन में बदलाव आ जाता है, आत्म-जागृति हो जाती है और वे पर-पदार्थ से सर्वथा मन हटा कर स्व में आसीन हो जाते हैं। इसके विपरीत कुछ ऐसे जीव भी अच्छे-अच्छे कुलों में आते हैं जिन्हें जीवनभर सत्संग मिलता है, श्रुतवाणी श्रवण का लाभ मिलता है, पर उनके जीवन में बदलाव नहीं आता, आत्मा जागृत नहीं बनता, धर्म-ध्यान में मन नहीं रहता।"

जौहरी कुल के जिस लाल का यहाँ कथन चल रहा है, उसे

सद्गुरुओं का संग मिला, श्रुतवाणी श्रवण का लाभ मिला तो ऐसा केशरिया रंग चढ़ा कि पूरा जीवन ही संयम-साधनामय बन गया। वे साधना के उच्च से उच्चतर शिखर पर पहुँचे। उन्होंने उस पवित्रता को प्राप्त किया कि उनका सारा जीवन ही परम पावन बन गया। आज भी उनका वह पावन-जीवन, जन-जन को पवित्र बनने, जागृत बनने, धर्म से जुड़ने का सन्देश दे रहा है।

राजस्थान प्रान्त के किशनगढ़ नगर में पिताश्री फूलचन्दजी लोढ़ा और माताश्री पहपकुंवर जी की रत्नकुक्षि से आषाढ़ शुक्ला द्वादशी संवत् 1944 की पावन वेला में जन्में इस लाल की दीक्षा 28 वर्ष की आयु में आचार्य श्री विनयचन्द्रजी म.सा. के श्रीचरणों में जयपुर में पौष शुक्ला द्वितीया के शुभ दिन विक्रम संवत् 1972 में सम्पन्न हुई। संवत् 1972 की मार्गशीर्ष कृष्णा द्वादशी को आचार्यश्री विनयचन्द्र जी म.सा. के स्वर्गवास होने के पश्चात् इसी वर्ष फाल्गुन कृष्णा अष्टमी के पावन दिवस पर मुनिश्री शोभाचन्द्रजी म.सा. को अजमेर में आचार्य-पद प्रदान किया गया।[2]

आचार्य भगवन्त पूज्य श्री हस्तीमलजी म.सा. ने अपने संयमी जीवन के संस्मरण सुनाते हुए मुनि श्री सागरमलजी म.सा. के लिए जो कुछ कहा, मैं आपके समक्ष उनके भाव कह रहा हूँ- "बहुत दीक्षाएँ देखी, दीक्षित चारित्र भी अनेकानेक देखने के अवसर मिले, पर मुनि श्री सागरमल जी के संयमी जीवन में जो समर्पण का भाव देखा, वह अन्यत्र नहीं देखा। साधक अवस्था में मैं भी कभी उनके समीप चला जाता, सेवा में उनके निकट बैठ जाता तो वे कहते- मैं तो पापी जीव हूँ। मेरे पास नहीं, आप पूज्य आचार्य भगवन्त श्री शोभाचन्द्रजी म.सा. के पास जाकर बैठो। उनके पारिवारिकजन आते, वंदन कर उनके निकट बैठते तो वे उन्हें भी यही कहते।"

आगम में साधु के लिए 'काले कालं समाचरेत्' (अर्थात् जो कार्य जिस समय उचित हो उसे उसी समय करें) का विधान दिया गया है। यहाँ भी

मैं उनके समर्पण भाव की बात कहूँ। उनके संयमी-जीवन सम्बन्धी प्रत्येक कार्य निश्चित समय पर होते। प्रतिलेखना करते समय कोई भक्त आता तो हाथ ऊपर कर देते, पर मुख से कोई शब्द उच्चारित नहीं करते। प्रतिक्रमण के समय प्रतिक्रमण ही करते। प्रभु आज्ञा उन महापुरुष के लिए सर्वोपरि थी। विशिष्ट ज्ञान के धारी न होने पर भी उनकी जीवनचर्या अनूठी, अनुपम, असाधारण थी। सभी यह बात जानते थे कि यदि सागरमुनिजी स्थानक में विराज रहे हैं तो वे स्थानक के अन्य किसी स्थान पर नहीं मिलेंगे, वे मिलेंगे केवल और केवल गुरुचरणों में, गुरु भगवन्त के निकट, गुरुवर्य की सेवा में।

आगम-ग्रन्थों में मोक्ष के अनेक मार्ग बताए हैं, यथा- सत्रह प्रकार का संयम, दस प्रकार का यति धर्म, पंच महाव्रत पालन, ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप का आराधन। संक्षेप में कहूँ तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्ष मार्ग है-"सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" (तत्त्वार्थ सूत्र 1.1), आगे कहूँ तो-"ज्ञानक्रियाभ्याम् मोक्षमार्गः।" मोक्ष के दो मार्ग- ज्ञान और क्रिया हैं। पर महामुनि, महापुरुष सागरमलजी महाराज के लिए तो संसार-सागर से तिरने अर्थात् मोक्ष प्राप्ति का एक ही उपाय था- जो उत्तराध्ययन (4.8) में कहा गया है-"छंदं निरोहेण उवेइ मोक्खं" अर्थात् कामनाओं के निरोध से मुक्ति प्राप्त होती है। अपनी इच्छा से कुछ मत करो- गुरु आज्ञा से करो, अतः श्वास लेने और पलक झपकने के अतिरिक्त प्रत्येक कार्य में गुरु आज्ञा होनी चाहिए। ज्ञान की साधना करो, चाहे तप की आराधना करो, स्वाध्याय में लगो या भिक्षाचरी के लिए प्रस्थान करो, कार्य कैसा भी, कोई भी हो, गुरु आज्ञा से करना है, गुरु की अनुज्ञा में करना है। आगम पढ़े जाते हैं, विवेचित किए जाते हैं, पर क्या सब कुछ वैसा ही जीवन में उतारा जाता है ? सभी आचार्य, साधु-साध्वी, श्रावक- श्राविकाएँ बातें कहते तो शास्त्रसम्मत हैं, पर तदनुसार करते कितने हैं ? वे महापुरुष बिरले ही होते हैं जो अपनी संयम-साधना की दिनचर्या प्रातः से संध्या और संध्या से प्रातः तक प्रतिदिन

वीतराग भगवन्तों की वाणी के अनुरूप व्यतीत करते हैं। जो उसमें सजग नहीं हैं, उन्हें जीवन को सागरमुनि की तरह बनाना है, उनका अनुकरण करना है, उनकी तरह प्रवृत्तियाँ- क्रियाकलाप करने हैं। इतिहास, ऐसे ही महनीय पुरुषों के गीत गाता है, जन- जन की जिह्वा पर उन्हीं की गाथा रहती है, कथाओं-व्याख्यानों-वाचनाओं में उदाहरण उन्हीं के दिए जाते हैं, जो पढ़ने-सुनने-कहने के साथ-साथ अपने जीवन में वैसा ही परिवर्तन लाते हैं। दृष्टान्त के दावेदार वे ही होते हैं जो गुरु आज्ञा के अनुरूप अपने जीवन को ऐसे साँचे में ढालते हैं कि स्वयं किसी दिन गुरु-सम जीवन बना लेते हैं।

सागरमुनि वैसे ही बिरले महनीय पुरुष थे। गुरु ने जो कहा, वह उनके लिए ब्रह्मवाक्य बन जाता था। ऐसे समर्पित जीवन वाले ही गुरु के हृदय में स्थान बनाते हैं। यह कहा जाता है कि- संसार में वे पुरुष धन्य हैं जिनके अन्तर में गुरु का वास रहता है, पर वे महापुरुष उनसे भी धन्य हैं, महान् भाग्यशाली हैं जो शिष्य होकर भी अपनी श्रद्धा, अपने समर्पण, अपने विनय व सेवा-भाव के कारण गुरु के हृदय में स्थान बनाते हैं। ऐसे बिरले, निर्मल, सरल शिष्यों के लिए गुरुमुख से अनायास प्रशंसा के शब्द निकल जाते हैं। सम्पूर्ण जगत में भक्त अपने-अपने गुरु का गुणगान करते हैं, उनके गीत गाते हैं, उनकी प्रशंसा करते हैं। मैं भी अपने धर्माचार्य गुरु भगवन्त का स्मरण करता हूँ, उनके गुणों की महक को जन-जन तक पहुँचाता हूँ। आप भी अपने-अपने गुरु भगवन्तों की प्रशंसा करते हैं, गुणकीर्तन करते हैं पर बिरले वही होते हैं, जिनकी गुरु स्वयं अपने श्रीमुख से प्रशंसा करते हैं।

"काले कालं समाचरेत्" सागरमुनिजी के जीवन का मुख्य सूत्र था। जिस समय जो काम करना है, उसे उसी समय ही करते। साधक का यह सर्वोपरि गुण माना जाता है। मुनिजी ब्रह्ममुहूर्त में उठते, स्वाध्याय करते, फिर प्रतिक्रमण होता और बाद में प्रतिलेखना। उसके बाद पुनः प्रातःकाल का

स्वाध्याय। यह सब था, पर स्वाध्याय आदि के साथ ही सेवा के किसी भी कार्य में वे पीछे नहीं रहते। वैयावृत्त्य तप ही उनके संयम-जीवन का वास्तवित तप रहा।

सेवा, समर्पण, विनय, श्रद्धा-ये जहाँ हों, जिनमें हों, वे गुणी व्यक्ति दूसरों के गुणों को देखते हैं। जिनमें गुण नहीं, अपितु कमियाँ और दोष हों, उनकी नज़र दूसरों के गुणों पर नहीं, उनकी कमियों, उनके अवगुणों और दोषों पर ही जाएगी। परन्तु गुणी की नज़र अपने अवगुणों पर जाती है। सागरमलजी महाराज कहा करते थे- "मुझसे न तप होता है, न ज्ञान-साधना। एक उपवास करता हूँ तो पित्त पड़ने लगते हैं, गले में काँटे पड़ जाते हैं। दूसरा उपवास तो कर ही नहीं पाता हूँ।" तप शरीर की अनुकूलता से होता है, पर उनकी शारीरिक अवस्था तपाराधना के अनुकूल नहीं थी। ज्ञान-साधना में भी क्षयोपशम मंद था। पाँच गाथा वे पूरी याद नहीं कर सकते थे, पर अपने एक गुण से ही उन्होंने अपने जन्म व जीवन को सफल बना लिया और वह गुण था- गुरु के प्रति समर्पण का भाव।

गुरु आज्ञा में रहते-रहते और आज्ञानुरूप प्रवृत्तियाँ करते-करते उन्होंने अपने गुरु के हृदय में ही नहीं, अपितु जन-मन में, सर्वत्र सभी के हृदयों में एक विशिष्ट प्रकार का विश्वास उत्पन्न कर दिया था। इसी विश्वास के कारण संघ में स्वामीजी श्री सुजानमलजी म.सा. तथा स्वामीजी श्री भोजराजजी म.सा. जैसे अनेक बड़े-बड़े दिग्गज संतों के रहते हुए भी आचार्य भगवन्त पूज्य श्री शोभाचन्द्र जी महाराज ने सतारा के परम भक्त और संघसेवी श्री मोतीलालजी मूथा से कहा- "संघ में जब कभी कोई समस्या आए तो सागरमलजी महाराज से पूछ लेना।" चिन्तन करिए- आचार्य कौन और संघ समस्या के लिए किनसे समाधान कराने का कहा गया? क्यों कहा पूज्य भगवन्त ने ऐसा? क्योंकि गुरुचरणों में समर्पण, श्रद्धा,

विनय व सेवाभाव का प्रतिफल था यह।

उन महापुरुष के सम्बन्ध में गुरुदेव पूज्य आचार्य भगवन्त श्री हस्तीमलजी म.सा. ने जो कहा, उसे आपको सुना रहा हूँ-

गुण सागर के गा प्राणी, संथारे की दिल ठानी।टेर।
लोढ़ा कुल का यह नन्दन, सौम्य, शान्त मन है चन्दन,
रत्नों सम आतम ज्ञानी.,.संथारे की दिल ठानी।
पलक प्रमाद नहीं तन में, थी भक्ति गुरु चरणन में,
सेवा में सब सुख मानी, संथारे की दिल ठानी।।1।।
तन, बुद्धि-बल सीमित था, ज्ञान-ध्यान भी परिमित था,
छंद-निरोध बने ज्ञानी, संथारे की दिल ठानी।।2।।

उनका जन्म संवत् 1944 का और, दीक्षा संवत् 1972 की थी। ग्यारह वर्ष की दीक्षा पर्याय हुई होगी उनकी, तभी जोधपुर में वि. सं. 1983 की श्रावण कृष्णा अमावस्या के दिन आपके गुरु आचार्य पूज्य श्री शोभाचन्द्रजी म.सा. का संथारे के साथ स्वर्गवास हो गया। गुरु का साया, गुरु का वरदहस्त मुनि सागरमलजी के सिर से उठ गया। चिन्तन किया, गुरु चरणों में कुछ भेंट करूँ। उसी समय संकल्प लिया- "गुरुवर चले गये, अब मुझे जीवन पर्यन्त कैसी भी परिस्थिति में दवा नहीं लेनी है।"

अपने संकल्प को जीवन की अन्तिम श्वास तक मुनिजी ने दृढ़ता से निभाया। उनके इस संकल्प से प्रभावित व्यक्तियों ने कहा- "धन्य है सागरमुनि, संयम में इन्होंने दोष नहीं लगाया। अस्वस्थता कई बार आई होगी, पर संकल्प में दृढ़ता थी अतः कोई चिकित्सा, कोई डॉक्टरी या वैद्य से परीक्षण नहीं कराया, कोई दवा नहीं ली, दवा के निमित्त सौंठ, लौंग तक नहीं लिया।" आज अस्वस्थता का कारण बनते ही क्या होता है? हम भी जानते हैं और आप भी। अपनी अस्वस्थता से हम मुनि, जितना परेशान नहीं होते, उससे अधिक परेशानी हमारे लिए आप लोग जताते हैं। हम शायद स्वास्थ्य

के गिरने से जितने कमजोर बनते हैं, उससे अधिक कमजोर हमें आप लोग बना देते हैं और फिर डॉक्टर, परीक्षण, दवाइयों का क्रम चलता है। बीमारी कैसी? कोई विशेष नहीं। डॉक्टर की वहाँ कतई जरूरत नहीं पर अमुक बीमार पड़े और ऐसी ही कोई खास बीमारी नहीं थी, डॉक्टर आते और कभी-कभी तो दो-दो डॉक्टर आते थे। लोगों में से कोई कहता है मैं अभी डॉक्टर ले आता हूँ आदि बातें यहाँ-वहाँ सर्वत्र हो जाती हैं।

इस शरीर के प्रति स्वयं का राग यदि हो तो व्यक्ति सोचता है- मैं बीमार हूँ, पर मेरे लिए डॉक्टर क्यों नहीं, दवा क्यों नहीं ? गुरु के शरीर के प्रति भक्तों के मन में राग-भाव हो तो भी और स्वयं के शरीर के प्रति राग हो तो भी चिकित्सा का प्रश्न खड़ा होता है। बीमारी की बात एक तरफ कर दीजिए, आज तो ताकत बढ़ाने के लिए टॉनिक का सेवन किया जाता है, आप गृहस्थों में और हम साधु-साध्वी वर्ग में भी। विटामिन टेबलेट्स ली जाती हैं, च्यवनप्राश खाया जा रहा है, आँवले का मुरब्बा लिया जा रहा है, और भी चीजें हैं, किन-किन के नाम गिनाऊँ। ये सब हम साधु-साध्वी के लिए शास्त्र सम्मत नहीं है। वर्जनीय हैं ये चीजें। साधुवर्ग तो शरीर चलाने के उद्देश्य से ही आहार करता है, पर ऐसा हो नहीं रहा है। गरिष्ठ और स्वादिष्ट भोजन को प्राथमिकता दी जा रही है।

उत्तराध्ययन सूत्र के 24 वें अध्ययन में अष्ट प्रवचन माताओं अर्थात् पाँच समितियों व तीन गुप्तियों का विवेचन है। साधु के लिए इनका पालन अनिवार्य है। पाँच समितियों में पहली है- ईर्या समिति। इसमें बताया गया है कि साधक को सावधानी से गमनागमन करना चाहिये। गमनागमन का अर्थ यहाँ साधक की चर्या से है जिसमें साधक का उठना-बैठना, सोना-जागना आदि सभी चर्याएँ आ जाती हैं। साधक की ये चर्याएँ ऐसी हों कि किसी भी प्राणी को क्लेश न हो। वह निरुद्देश्य गमन न करे। ज्ञान-

दर्शन-चारित्र के उद्देश्य से गमन करे। आवश्यकता होने पर, विशेषकर रात्रि में प्रमार्जन करता हुआ गमन करे। मार्ग-मार्ग चले, उन्मार्ग से जाने में आत्मविराधना की संभावना रहती है। इसी तरह भाषा समिति में साधक क्रोधवश आवेश में नहीं बोले, उसके बोलने में अहंकार का पुट न हो, छल-कपट की भाषा न बोले, लोभ-लालच के वशीभूत न बोले, उसके बोलने में हास्य, भय, मुखरता न हो, वह विकथा न करे।

इन दो समितियों में साधक अर्थात् हम स्वयं साधु और साध्वी सावधानी रखते हैं। इनमें सावधानी रखना हमारे स्वयं के वश की बात है, पर तीसरी ऐषणा समिति जिसमें साधु-साध्वी के लिए गृहस्थी के घरों से भिक्षादि लेने की निर्दोष प्रवृत्ति का कथन है, उसमें सावधान बने रहना हमारे अकेले के वश की बात नहीं है। वहाँ आपका साधु-साध्वी के प्रति राग-द्वेष, आग्रह और अपने को विशिष्ट स्तर का प्रदर्शन करने का भाव आपको और हम दोनों को दोष लगाने में सक्षम है। उसमें भी अस्वस्थता के समय तो भक्तों के आग्रह में कुछ अधिक ही प्रबलता बन जाती है।

मुनि श्री सागरमलजी महाराज ने चिन्तन किया- "साधु को तो समाधि भंग होने की स्थिति में ही दवा का सेवन करना चाहिये।" गुरु भगवन्त के चले जाने पर इसी चिन्तन के कारण सागरमुनिजी महाराज ने औषधि सेवन का त्याग किया था। वे अपने इस संकल्प में आजीवन दृढ़ बने रहे। साधक अपने संकल्प में, नियम के प्रत्याख्यान में कमजोर कब होगा, ढीला कब बनेगा ? तब, जब साधक की स्व-शरीर के प्रति आसक्ति हो, शरीर के प्रति अन्तर में राग-भाव की विद्यमानता हो, शारीरिक-सुखों के लिए मन जागृत बन गया हो। सागरमुनिजी महाराज के मन में स्व-शरीर के प्रति ममत्व भाव नहीं के बराबर हो गया था, अतः वे दवाओं के त्याग का संकल्प ले सके। शरीर, तप-साधना में अनुकूल नहीं था, पर उनका भोजन

भी उतना ही होता था जितने से शरीर संयम साधना के लिए, गुरु सेवा के लिए तत्पर बना रह सके।

संवत् 1944 में जन्म, संवत् 1972 में दीक्षा, संवत् 1983 में गुरु का स्वर्गगमन और सागरमुनिजी का दवाओं के त्याग का संकल्प और अन्त में संवत् 1984 में शरीर ने अपने स्वभाव का प्रदर्शन लगता था, उनका शरीर उनके संकल्प का परीक्षण लेने को तत्पर हो गया। अशक्ति व अस्वस्थता ने घेरना प्रारम्भ किया। आयु मात्र 40 की थी और शरीर को दवाओं की आवश्यकता थी, आहार लेते, पर पचता नहीं। धीरे-धीरे स्थिति ऐसी आई कि थोड़ा-सा खाते और पेट फूल जाता, आफरा आ जाता, लगता जैसे पेट को भोजन की जरूरत नहीं।

चिन्तन चला- "पेट में भोजन पचता ही नहीं, भोजन करने पर तकलीफ होती है तो भोजन करना ही क्यों? जबरदस्ती पेट में उड़ेलना अब बन्द कर देना चाहिये।" संवत् 1985 में किशनगढ़ विराज रहे थे तब आहार की यह वेदना और बढ़ी और संथारे की भावना अन्तर में जाग उठी। आज अगर नहीं खाएँ तब सुना दिया जाता है- नहीं खाएँगे तो ताकत कैसे आएगी? शरीर कमजोर हो जाएगा। खाने की इच्छा नहीं है या रुचता नहीं है तो दो कौर ही खाएँ, कुछ न कुछ तो पेट में डालना होगा। खाने का मन न करे तो कोई पौष्टिक पेय ही पीओ। ऐसी ही अनेक बातें कही जाती हैं।

शायद उन्हें भी ये सब कहा गया होगा, पर मुनिजी ने तो संथारे का प्रबल मानस बना लिया था। अनन्त-अनन्त पुण्य-पुँज से आता है साधक का संथारा। हमारे इस शासन में, वर्तमान में कितने साधक हैं ? प्रतिक्रमण में पाँच पदों की भावना में आप श्रावक-श्राविका कहते है- जघन्य दो हजार करोड़ और उत्कृष्ट नौ हजार करोड़ जयवन्ता विचरण करते हैं, पर संथारा कितनों को आता है? नहीं आता है हर किसी को। हजारों-लाखों में से किसी

एक महान् पुण्यशाली, भाग्यवान को ही आता है संथारा।

तीन मनोरथों में अन्तिम मनोरथ है- संथारे का आना। यह तीसरा मनोरथ किसी-किसी बिरले महापुरुष का ही पूर्ण होता है। आयु 41 वर्ष की। समय के अनुसार अवस्था वाला कभी संथारे की बात कहे तो समझ में आती है, पर बिना अवस्था, बिना समय के जीवन की अनित्यता का बोध करके जो संथारे की बात कहे तो बड़े-बड़ों के दिल-दिमाग में नहीं बैठती।

अपनी भावना साथ के संतों के समक्ष प्रकट की। पास में थे बड़े संत स्वामी श्री लाभचन्दजी म.सा., लालचन्दजी म.सा. आदि। उन्होंने कहा कि- हम इस विषय में कुछ कहने की स्थिति में नहीं हैं। संथारा कराना या नहीं? इस विषय में निर्णय लेने में तो संघाचार्य या फिर व्यवस्थापक ही सक्षम हैं। आचार्य भगवन्त श्री हस्तीमल जी महाराज रीयाँ में विराजमान हैं और स्वामी श्री सुजानमलजी म.सा. जो संघ व्यवस्थापक हैं, वे नागौर में विराज रहे हैं। हम उनके पास संदेश भिजवा देते हैं, फिर जैसा उनका आदेश होगा वैसा ही होगा।

सागरमुनिजी ने चिन्तन किया- "शायद तब तक देर हो जाए। शरीर का क्या भरोसा? काल तो किसी भी क्षण आ सकता है। आयुष्य समाप्ति के पश्चात् क्या? इस साधक को खाली ही जाना पड़ेगा।" वे बोले- "आप लोग संथारा नहीं कराएँगे और आने वाले मेहमान के समय का कोई पता नहीं, न जाने कब पधारे और ये चलने वाली श्वासें रुक जाएँ।"

साथ के संतों ने असमर्थता बताकर समाचार नागौर व रीयाँ भिजवा दिए। सागरमुनिजी ने तब तक उपवास के प्रत्याख्यान लेकर उपवास करना प्रारम्भ कर दिया। जीवन भर, तप से दूर रहने वाले मुनिजी ने तप-साधना का क्रम प्रारम्भ कर दिया। रीयाँ में समाचार पहुँचा। आचार्य भगवन्त श्री हस्तीमल जी महाराज ने रीयाँ से विहार कर दिया। पीपाड़ पहुँचे, वहाँ एक

अच्छे ज्योतिषी थे- धूलचन्दजी सुराणा। वे अच्छे वैद्य, अच्छे घड़ीसाज एवं कवि भी थे। आचार्यश्री के साथ थे स्वामीजी श्री भोजराजजी महाराज। पीपाड़ में उन्होंने धूलचन्दजी से पूछा- "सागरमलजी महाराज संथारा करना चाहते हैं। आपका ज्योतिष ज्ञान इस विषय में क्या कहता है?"

अपनी गणना से और नक्षत्रों की स्थिति देखकर वैद्य धूलचन्दजी ने कहा- "संथारा लम्बा चलेगा। एक मास व्यतीत होने के बाद ही संथारा सीझेगा। नक्षत्र यही बताते हैं।" आचार्यश्री की सेवा में स्वामीजी ने जाकर यह कह दिया। पीपाड़ से विहार कर आचार्यश्री व स्वामीजी आदि संत पच्चीस दिनों में किशनगढ़ पहुँच गए। मुनिजी के तप चालू था। आचार्य भगवन्त ने उनके चेहरे को पढ़ा, वहाँ कोई उद्विग्नता नहीं थी, पूर्ण शांति थी और धैर्य विराजमान था। उन्होंने मुनिजी का संथारा करवा दिया।

तब तक आषाढ़ आ चुका था। भंयकर उष्णता से धरती, गगन, दिशाएँ सभी तप्त-संतप्त बने हुए थे। समय व्यतीत होने लगा। संथारा आगे बढ़ने लगा फिर आषाढ़ भी उतरने लगा। कहीं पर वर्षा नहीं। बून्दा-बांदी भी नहीं। गगन में आषाढ़ी-मेघों का नामोनिशान तक नहीं। किशनगढ़ निवासी जैन व जैनेतर सभी लोगों तक मुनिश्री के संथारे की बात पहुँच गई थी। "मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना" जितने लोग उतने मत वाली कहावत के अनुसार लोगों में तरह-तरह की बातें होने लगी। जैनेतर व संयम-तप आदि में अश्रद्धा रखने वाले लोग तो संथारे के विरुद्ध बातें करते ही थे, पर कुछ श्रद्धावान् भक्त भी ऐसा ही चिन्तन करने लगे थे। सर्वत्र कानाफूसी होने लगी, स्थान-स्थान पर इस महातप के विरुद्ध वातावरण बनने लगा। किशनगढ़ के हर मोहल्ले में चर्चा चलने लगी कि एक संत को भूखा रख कर मारा जा रहा है, यही कारण है कि अब तक वर्षा नहीं हुई।

भारत में तब अंग्रेजों का राज्य था और गाँवों-कस्बों में

ठाकुरों-राजाओं का। एक दिन गुरुभक्त और धर्मनिष्ठ कहे जाने वाले श्रावक गंभीरमलजी सांड ने बग्घी पर खड़े होकर एकत्रित जनता के बीच कहा- "यह उचित नहीं है। एक संत को मारा जा रहा है।" गोपीचन्दजी, अमरचन्दजी छाजेड़ ने भी सुना, छाजेड़ों की हवेली के बाहर चौक में इसी बात को लेकर सभाएँ हुई। लोग कहने लगे संत का संथारा तुड़वा देना चाहिये। वहाँ के महाराजा को इस बात का पता चला। राज्य का दीवान अंग्रेज था। उसे स्थिति जानने के लिए भेजा गया। दीवान स्थानक पहुँचे और मुनिजी से प्रश्न किया- "आपको ये लोग क्यों मौत के मुँह में पहुँचाना चाहते हैं? इन सभी ने आपका आहार क्यों बंद कर दिया है?"

अत्यन्त शांत स्वर में सागरमुनि ने कहा- "मुझे कोई नहीं मार रहा है। मैं स्वेच्छा से तपाराधन कर रहा हूँ, अतः मैंने आहार का त्याग कर दिया है।"

सुनकर दीवान ने कहा- "आप यह कहना चाहते हैं कि आप जान-बूझकर अपने-आप को मार रहे हैं।" मुनिश्री मुस्कुराए। कुछ क्षण शान्त रहकर बोले- "मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ।" पूछिए। दीवान के यह कह देने पर सागरमुनिजी ने पूछा- "आप जिस घर में रह रहे हैं, उस घर का मालिक आपको घर से निकाल देना चाहता है। उसका कहना है कि आप शीघ्रातिशीघ्र मकान खाली कर दें। वह आपको कुछ समय देता है घर खाली करने के लिए और यह कहता है कि अमुक अवधि में घर खाली नहीं हुआ तो सभी को धक्के मार-मार कर बाहर निकाल दिया जाएगा, ऐसी स्थिति में आप क्या करेंगे ?"

दीवान ने प्रत्युत्तर में कहा- "धक्के खाकर निकलना कौन पसन्द करेगा? मैं स्वयं ही उस मकान को छोड़ दूंगा।" सागरमुनि ने कहा- "बस यही बात मेरे साथ है। मेरा शरीर अब काम नहीं करता, वह मुझे छोड़ देना

चाहता है, ऐसी दशा में क्यों नहीं मैं स्वयं उसे छोड़ दूँ ?आहार त्याग मैंने अपनी इच्छा से किया है। मुझे भूखा रखकर मारा जा रहा है, यह सोचना पूर्णतः असत्य है।''

दीवान समझ गया कि यह आत्महत्या का केस नहीं है। लोगों की सोच ही गलत है। ये मुनिजी जो कर रहे हैं, स्वेच्छा से कर रहे हैं, अपने शरीर में समाधि रहते हुए कर रहे हैं। मुनि को नमन कर दीवान चले गए। दरबार को वास्तविक स्थिति बता दी।

आप सभी समझ गए होंगे कि आत्महत्या, हत्या और संथारे में रात-दिन का अन्तर होता है। आत्महत्या भय, कामना, परेशानी, चिन्ता व घबराहट से की जाती है। हत्या प्रलोभन से या बदले की भावना से की जाती है। इच्छा पुरी न होने पर या पाप के फल को भोगने के भय से होती है- हत्या या आत्महत्या। संथारा तो मृत्यु को सन्निकट जानकर, अवस्था सम्पन्न होने पर, पूर्ण समाधि के रहते हुए स्वेच्छा से आत्मकल्याण की भावना के साथ किया जाता है। संथारे में कोई प्रलोभन, किसी तरह की कामना अथवा कोई भय नहीं होता। संथारा तो एक विशिष्ट साधना है, तप है, एक विशिष्ट योग है। शरीर से आसक्ति को पूर्णतः हटाकर मन की अशुभ भावनाओं की आहुति देने का नाम है संथारा। जीव को सबसे बड़ा भय मृत्यु का होता है। संथारे द्वारा साधक मृत्यु पर विजय प्राप्त कर मृत्युञ्जयी बनता है।

आत्महत्या स्वयं व्यक्ति द्वारा जीवन से घबराकर, परेशान होकर नदी, तालाब, समुद्र में डूबने से अथवा ज़हर, रासायनिक, कीटनाशक आदि के लेने से मरण प्राप्ति को कहते हैं। हत्या में कोई एक व्यक्ति, किसी अन्य को ईर्ष्या, द्वेष या बदले की भावना से मौत के घाट उतारता है। संथारा तो साधना है जो पूर्ण समाधि की स्थिति में शांत मन से इच्छा पूर्वक लोगों के व गुरु के समक्ष ग्रहण किया जाता है। आत्महत्या आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत

बड़ा अपराध है और कानून सम्मत भी नहीं है। हत्या तो दण्डनीय अपराध है ही। संथारे द्वारा समाधिमरण कोई अपराध नहीं है, अपितु वह तो अपराधों के क्रियान्वयन की जड़ कषायों को काटने वाला होता है। आत्महत्या व हत्या में व्यक्ति अत्यन्त कष्ट पाता है, मन क्लान्त व त्रसित बनकर हाय-त्राय करता है, आर्त्त और रौद्र ध्यान की उत्पत्ति होती है। वहीं समाधिमरण में तीव्र वेदना तो होती है, पर मन के हर कण में समुज्जवल वीतराग-वाणी का आघोष गूँजता रहता है- देहदुक्खं महाफलं।

समाधि का अर्थ ही चित्त की एकाग्रता है। जिस मरण अर्थात् देह त्याग में चित्त अशांत न बने, आकुल-व्याकुल न बने, आत्मा के उत्थान के ध्यान में एकाग्रता रखे, वह है समाधिमरण। इसे मरण-महोत्सव भी माना जाता है। साधक तो इसे महा-महोत्सव भी कहते हैं। मरण को निकट देखकर साधक अन्तरात्मा से कहता है- "आहारमुवहिं देहं, सव्वं तिविहेण वोसिरामि", आप इसे इस तरह कहते हैं-"आहार, शरीर, उपधि, पचखूँ पाप अठार।" कैसी उत्कट तत्परता बन जाती है। रोम-रोम, मन का कण-कण, जीवन का क्षण-क्षण तब कहने लगता है- "भंते! मैं हिंसा, झूठ, चोरी आदि अठारह पापों का तीन करण, तीन योग से त्याग करता हूँ।" संथारे में तीन या चारों आहार के त्याग के साथ 18 पापों के त्याग से ही इस साधना की सफलता मानी जाती है।

मृत्यु जीवन का अटल सत्य है। जीवन धारण किया है जिसने, उसे एक दिन मरना ही पड़ेगा। ठाणांग सूत्र के सप्तम स्थान में सात भय बताए गए हैं। सांसारिक जीवों के लिए उन सात भयों में मृत्यु ही सबसे बड़ा भय है (ठाणांग सूत्र 7/27/6)। जिसके मन से मृत्यु भय मिट गया, वही साधना के उच्चतम शिखर तक पहुँचने का अधिकारी है। जैन-दर्शन में, जीवन जीने की तरह ही मरण को भी एक कला माना गया है। व्यक्ति को चाहिये कि वह

जीवन-मरण इन उभय कलाओं में पारंगत कलाकार बने। अमर कलाकार वही है जो जीवन जीना भी सीख गया और मरण की कला में भी पटु बन गया।

अणिस्सिओ इहलोगे, परलोगे वि अणिस्सिओ। -उत्तराध्ययन सूत्र 19/92

जो इहलोक और परलोक में निरपेक्ष हो गया अर्थात् इहलोक संबंधी कामनाओं से रहित हो गया और पारलौकिक सुखों की कामनाओं से भी रहित हो गया एवं

जीवियं णाभिकंखेज्जा, मरणं णो वि पत्थए।। -आचारांग 8/8/19

अर्थात् जिसके जीवन की आसक्ति मिट गई और मरण का भय भी हट गया, उसी का जीवन, जीवन है और मरण, समाधिमरण है।

यह शरीर जीव का घर है। इस घर में रहता हुआ जीव, मरण के सत्य को जानकर भी यदि प्रतीक्षा करता है कि कोई उसे धक्के देकर घर से बाहर निकाले तो यही कहना होगा कि उसमें बुद्धिमत्ता नहीं, विवेक नहीं, चिन्तन शक्ति नहीं है। जैन-दर्शन में साधना के लिए-परिग्रह का त्याग, आरम्भ से निवृत्ति और तीसरा समाधिमरण, ये तीन कदम सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। तीसरे कदम की पूर्ण सफलता से सिद्धि निश्चित है। अतः यह सत्य है कि समाधिमरण आत्महत्या नहीं, आत्म संजीवन है।

श्री सागरमलजी महाराज ने इस आत्म संजीवन का अवलम्बन लिया। मृत्युञ्जयी बनने की सफल साधना के लिए अग्रसर थे। एक दुर्धर योद्धा की तरह मृत्यु को आगे होकर ललकारा उन्होंने। अपने आपको समस्त विनाशी क्षणिक पौद्गलिक पदार्थों से हटाकर उस महासाधक ने शरीर के ममत्व का त्याग किया और केन्द्रीय तत्त्व- आत्म-तत्त्व पर स्वयं को ऐसा केन्द्रित किया कि मृत्यु का भय होने की जगह, स्वयं मृत्यु को उनकी साधना से भय लगने लगा। परास्त कर दिया मृत्यु को उस महासाधक ने। संथारा चला, लम्बा चला। कामना और वासना, सागरमुनिजी की तप की ज्योति में

जलते रहे। यह महायज्ञ उनसठ (59) दिनों तक चला। आज के दिन अर्थात् श्रावण कृष्णा त्रयोदशी को संवत 1985 के दिन यह महायज्ञ पूर्ण हुआ। संथारा सीझ गया, पक गया। सफल हुआ उनका तप, सिद्ध हुई उनकी साधना और वह महापुरुष बढ़ गया परम सिद्धि की तरफ।

जैन परम्परा में संथारा मरण नहीं, अपितु समाधिमरण है, मरण पर विजय यात्रा है, अमरता की यात्रा है। यह ऐसी यात्रा है जिसमें चित्त की एकाग्रता है, मन की शान्त स्थिरवृत्ति है जिसमें व्याकुलता का सर्वथा अभाव है। मोक्ष प्राप्ति में विध्न रूप और संसार वृद्धि तथा दुर्गति के कारण जो अठारह पाप हैं, उनका तीन करण, तीन योग से इसमें त्याग किया जाता है।

उनसठ दिन के लम्बे समय में संथारे पूर्वक समाधिमरण प्राप्त करने वाले श्री सागरमुनिजी महाराज का नाम इतिहास में एक स्वर्णिम पृष्ठ बन गया।

हम और आप भी साधक हैं। उस महासाधक के महनीय जीवन से हमें कुछ सीखना है। मृत्युञ्जयी बनने के विषय पर चिन्तन करना है। जीवन में तीसरा मनोरथ अवश्य आए, ऐसा जीवन बनाना है। तत्पर हो जाइए, तपाराधन प्रारम्भ कर दीजिए, इच्छाओं के निरोध में आगे बढ़िए।

आप हम सभी जीवन को ऐसा ही सुन्दर, पावन, विशुद्ध बनायें और समाधिमरण के साथ जीवन का अन्तिम पृष्ठ लिखें, यही मंगलकामना है।

जोधपुर,
28-29 जुलाई, 2011

संदर्भ

1. आचार्य प्रभव स्वामी (भगवान् महावीर के तृतीय पट्टधर) आचार्य काल- वीर निर्वाण संवत् 64-75। आचार्य प्रभव श्रुतकेवली थे। इन्होंने (अपने पाँच सौ साथी चोरों के साथ) आर्य जम्बू के साथ गणधर सुधर्मा स्वामी से दीक्षा ग्रहण की। (इनके विस्तृत जीवन

परिचय के लिए देखिए- जैन धर्म का मौलिक इतिहास (भाग-2)- श्रुत केवली : आचार्य प्रभव स्वामी)

आचार्य शय्यंभव स्वामी (भगवान् महावीर के चतुर्थ पट्टधर) आचार्य काल- वीर निर्वाण संवत् 75-98। आचार्य शय्यंभव स्वामी श्रुत केवली थे। इन्होंने आचार्य प्रभव स्वामी से दीक्षा ली। इन्होंने ही दशवैकालिक सूत्र की रचना की। (इनके विस्तृत जीवन परिचय के लिए देखिए- जैन धर्म का मौलिक इतिहास (भाग-2)- श्रुत केवली : आचार्य शय्यंभव स्वामी)

आचार्य भद्रबाहु (भगवान् महावीर के छठे पट्टधर) आचार्य काल- वीर निर्वाण संवत् 156-170। आप भगवान् महावीर के शासन के अंतिम श्रुतकेवली थे। आपने भगवान् महावीर के पाँचवें पट्टधर आचार्य यशोभद्र से दीक्षा ली। आपने चार छेद सूत्रों की रचना की। दशपूर्वधर स्थूलिभद्र स्वामी आपके शिष्य थे। (इनके जीवन के बारे में विस्तृत जानकारी के लिए देखिये- जैन धर्म का मौलिक इतिहास (भाग-2)- श्रुत केवली : आचार्य भद्रबाहु स्वामी)

कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्र सूरि (जन्म वि.सं. 1145, दीक्षा वि.सं. 1153, स्वर्गवास वि. सं. 1229) ये गुर्जर राजा सिद्धराज जयसिंह और महाराज कुमारपाल के समय में थे। बालवय में ही आचार्य पद पर आसीन हुए और अनेक ग्रन्थों की रचना कर एक महान् प्रभावक आचार्य बने। सिद्धहेम व्याकरण, त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र, अभिज्ञान चिन्तामणी, योगशास्त्र, वीतराग स्तोत्र आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की। (इनके जीवन के बारे में विस्तृत जानकारी के लिए देखें- जैन धर्म का मौलिक इतिहास (भाग 4) : हेमचन्द्र सूरि)

2. इस प्रवचन में वर्णित रत्नसंघीय संतों का साधक काल-

पंचम आचार्य श्री विनयचन्द्र जी म.सा. (दीक्षा पर्याय - वि.सं. 1912-1972, आचार्य काल- वि.सं. 1937-1972) आचार्य विनयचन्द्र जी से दीक्षित हुए- स्वामी श्री सुजानमल जी (बाबाजी) म.सा. (दीक्षा पर्याय वि.सं. 1951-2010), स्वामी श्री भोजराज जी म.सा. (दीक्षा पर्याय- वि.सं. 1958-1994), श्री सागरमल जी म.सा. (दीक्षा पर्याय- वि.सं. 1972-1985), श्री लाभचन्द्र जी म.सा. (दीक्षा पर्याय- वि.सं. 1970-2026)

षष्ठ आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी म.सा. (दीक्षा पर्याय- वि.सं. 1927-1983, आचार्य काल-वि.सं. 1972-1983) आप चतुर्थ आचार्य श्री कजोड़ीमल जी म.सा. से दीक्षित हुए।

सप्तम आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा. (दीक्षा पर्याय- 1977-2048, आचार्य काल- वि. सं. 1987-2048)

जीवन की पवित्रता के लिए आहार, विचार और आचार शुद्धि चाहिए

स्वभाव में रमण करने वाले सिद्ध भगवन्त, भीतर-बाहर एक रूप के अध्यवसाय वाले अरिहन्त भगवन्त, इस माया-निदान को निकालने का प्रयास कर महाव्रत, समिति-गुप्ति की साधना करने वाले संत भगवन्तों के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन!

बन्धुओ!

तीर्थंकर भगवान् महावीर की आदेय-अनमोल वाणी आचारांग सूत्र के माध्यम से हम सबको सरलता का संदेश दे रही है। सरल बनने के लिए कपट, छल, छिद्र छोड़ने के लिए आलोचना की बात कही जा रही है। आलोचना कौन कर सकता है? आलोचना के लिए पाप के प्रति घृणा का भाव, जीवन में पवित्रता की भावना, मन में संकल्प-शक्ति जैसे कारण चाहिए तो सद्गुरु की संगति भी एक कारण है। शास्त्र की सुन्दर उक्ति है- "सूरोदए पासइ चक्खुणेव।" इस उक्ति का हार्द कहें तो कहना होगा- आँख सूर्य के प्रकाश में ही देख सकती है, अंधेरे में नहीं।

आप-हम-सब आँखों वाले हैं। आँखें सभी को मिली है। आँख निर्मल है, ज्योति वाली है, दूर तक देखने में सक्षम है। परन्तु आँख कब देखती है? अगर प्रकाश है तो आँख देखने में सक्षम है। आँख से समीप वाली

वस्तुएँ देखी जा सकती है तो दूरस्थ चीजें भी आँख ही देखती है। तारे, चांद और सूरज तक को देखने की आँख में क्षमता है, बशर्ते की प्रकाश हो। अंधकार में आँख में ज्योति होते हुए भी देखा नहीं जा सकता। अमावस्या की घोर अंधियारी रात है तो पास में रही वस्तु भी दिखाई नहीं देती। आँख की ज्योति प्रकाश में काम करती है, आँख को प्रकाश चाहिए ठीक इसी तरह हमारी यह आत्मा गुरु के सहारे आलोचना कर सकती है। गुरु हमें लक्ष्य तक पहुँचने की प्रेरणा करते हैं, हम पथिकों को मार्गदर्शन देते हैं।

आत्मा में अनन्त ज्ञान है, अनन्त दर्शन है, अनन्त शक्ति है, अनन्त सुख है। जन्मते बच्चे में वही शक्ति है भले ही बच्चे में उठने की ताकत नहीं, पैर फैलाने की शक्ति नहीं किन्तु उसकी आत्मा में अनन्त शक्ति है। तीर्थंकर भगवान् महावीर ने जन्म के साथ मेरु पर्वत हिला दिया। कैसे हिलाया? भगवान् में जन्म के साथ शक्ति थी। आपके जन्मजात बच्चे में वही शक्ति है पर उसे माँ का सहारा चाहिए। बच्चा माँ के सहारे बैठना-उठना, चलना-फिरना, बोलना-खाना सब कुछ सीखता है। मैं इससे आगे बढ़कर कहूँ- जन्मते बच्चे में ही नहीं, गर्भ में रहे बच्चें में भी वही ताकत है। गर्भस्थ शिशु वैक्रिय रूप से संग्राम कर सकता है। अभी जन्म नहीं हुआ, जीव गर्भ में है परन्तु वह युद्ध में विजयश्री का वरण कर सकता है। यह ताकत आत्मशक्ति की है। जन्म के बाद जब तक माता-पिता और परिजनों का सहारा नहीं मिलता तब तक बच्चे का चलना, उठना, बैठना, अ-आ बोलना संभव नहीं होता, क्योंकि बच्चे को सहारा चाहिए।

शास्त्रकार कह रहे हैं- आत्मा में अनन्त ज्ञान है, अनन्त दर्शन है। पर, वह ज्ञान-दर्शन अनन्त कर्मों के आवरणों के द्वारा ढंका हुआ है। कर्मों के आवरणों को हटाने का रास्ता कौन बताए? बताने वाला कौन है?

हम आज एक ऐसे ही कर्मों के आवरण हटाने का रास्ता बताने वाले गुरुदेव का स्मरण कर रहे हैं, उनके गुणगान कर रहे हैं। पूज्य आचार्य श्री

शोभाचन्द्र जी महाराज को शिक्षा मिली- "खण निकम्मो रहणो नहीं, करणो आतम काम।" यह श्लोक आपने सुना होगा। श्लोक के शब्द सरल हैं, समझ में आने वाले हैं परन्तु आसान शब्दों के श्लोक में रहा वाक्य "करणो आतम काम" अर्थात् स्वयं की आत्मा के हित का काम करना शायद उतना सरल नहीं है। आज उठने से लेकर सोने तक, सूर्य उदय से अस्त तक, शरीर की, परिवार की, आवश्यकता-पूर्ति की, खाने-कमाने की और जीवन के हर कार्य की बात करते हैं, कहते हैं, जानते और समझते हैं फिर क्षण निकम्मो रहनो नहीं क्यों कहा? मतलब है- आत्म-हित के लिए एक क्षण का प्रमाद नहीं हो। यदि यह सूत्र जीवन-व्यवहार में रम जाय तो फिर कहना ही क्या? आप सब सुज्ञ हैं। क्या कभी आपका यह चिन्तन भी चला कि मन में रहा मोह क्यों नहीं छूट रहा है? क्यों आज का मानव पद, पैसा और प्रतिष्ठा में अकड़ा हुआ है? किस मान-बढ़ाई को लेकर अतल तल में पहुँच रहा है? यदि चिन्तन चले तो कौनसी ऐसी क्रिया है जिसमें परिवर्तन नहीं आ सकता?

मैं पूज्य आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी महाराज की बात के प्रसंग से कह रहा हूँ। वे जोधपुर में जन्मे थे। जोधपुर पुण्यशाली जगह है। आपमें से अनेकों का यहाँ जन्म हुआ, आप जोधपुर में जन्में हैं इस बात को लेकर अहंकार मत करना। आप अहंकार करेंगे तो पाप घटाने का आपका प्रयास सफल नहीं होगा। इस शहर की पुण्यवानी के संदर्भ में क्या कहूँ? भारत-पाक के युद्ध में यहाँ सौ से अधिक बम गिरे परन्तु जन-धन की हानि नहीं हुई। किसी एक व्यक्ति तक को खरौंच का सामना तक नहीं करना पड़ा। क्यों? क्या बात थी?

मैं जोधपुर की पुण्यवानी के प्रसंग से कह रहा हूँ कि यहाँ साधना-आराधना, त्याग-तप और व्रत-प्रत्याख्यानों के प्रति कोई-न-कोई साधक, साधना में रत रहा हुआ था। आप बोलते हैं कि मारने वाले से बचाने वाला बड़ा होता है। मारने से बचाने वाला कौन? जंगल में मंगल करने वाला कौन?

दुःख में शरणभूत बनने वाला कौन? आप जानते हैं, मानते हैं कि बम वर्षा में किसी का हताहत नहीं होना शहर की पुण्यवानी नहीं तो क्या है?

यह केवल जोधपुर की बात हो, ऐसा नहीं है। आपने सुना है- द्वारिका नहीं जली। क्यों? जोधपुर पर एक बार नहीं, दो-दो बार बम बरसे किन्तु न जान का नुकसान हुआ, न माल का। शहर का अमन-चैन बना रहा, इसके पीछे इस शहर में साधना-आराधना करने वाले महापुरुष रहे हैं। ज्ञान-दर्शन-चारित्र और व्रत-नियम के अनुष्ठान की शृंखलाएँ होने से बाहर के उपादान निष्प्रभावी, निष्फल रहे। जोधपुर तक की ही नहीं, थार के टीलों में, रेत के ढेरों में बम-वर्षा हुई पर बिगाड़ कुछ भी नहीं हुआ।

जीवन-निर्माण के शिल्पकार पूज्य श्री शोभाचन्द्र जी महाराज के चरणों में हस्तीमल जी, चौथमल जी, लक्ष्मीचन्द जी की दीक्षाएँ हुई। बाल मुनियों को पढ़ाने-सिखाने और आत्मज्ञान जगाने के लिए पंडित की आवश्यकता अनुभव की गई। जैन कॉन्फ्रेंस के अन्तर्गत पं. दुःखमोचन जी झा, जिन्होंने पूज्य जवाहरलाल जी महाराज, पूज्य घासीलाल जी महाराज जैसे संतों को पढ़ाया, वहाँ के कॉन्फ्रेंस के अध्यक्ष ने प्रस्ताव किया कि आप आज्ञा दें तो हम झा साहब को रखने की व्यवस्था करें।

संतों को पढ़ाने के लिए जैन पंडित सुलभ नहीं थे, इसलिए अजैन को रखने के अलावा अन्य कोई विकल्प नहीं था। जैनियों में जज हैं, वकील हैं, डॉक्टर हैं, इंजीनियर हैं, आइ.ए.एस. और आइ.पी.एस. भी हैं किन्तु जैन दर्शन के विद्वान् कितने हैं? क्या जैन पंडित नहीं होने का आपको कोई मलाल नहीं है? आपके बच्चे-बच्चियाँ सीए की परीक्षा पास कर रहे हैं। कई परिवारजन आते हैं और गर्व से कहते हैं- बाबजी! बच्चे ने सीए कर लिया आप माँगलिक फरमाए। क्या आपका मात्र पैसा कमाना ही लक्ष्य है? क्यों केवल जीवन-निर्वाह का दृष्टिकोण बना हुआ है? आत्म-ज्ञान सीखने-सिखाने की बात भुलाई में क्यों पड़ रही है? है कोई आपके पास

जवाब? आचार्य श्री शोभाचन्द्र जी महाराज दूरदर्शी महापुरुष थे। वे अजैन पंडित को बिना परीक्षा किए नहीं रखना चाहते थे। उन्होंने पंडित जी को कल्याणमंदिर के दो श्लोक अर्थ करके समझाने की बात कही। पं. दुःखमोचन जी झा ने कल्याणमंदिर के श्लोकों का जैसा अर्थ होना चाहिए, ठीक वैसा ही अर्थ किया तो उन्हें पढ़ाने का अवसर दिया गया।

बालमुनियों के अध्ययन की व्यवस्था सातारा वाले मुथा जी ने की। छोटे संतों को पढ़ते देखकर कुछ संघ-सेवी श्रावकों के चिन्तन में आया कि इन बालमुनियों को दूध में थोड़ा घी मिलाकर देना चाहिए जिससे कि इनका दिमाग तेज और स्मरण-शक्ति बढ़े। यह घटी घटना है, इसमें अपनी ओर से कुछ मिलाकर नहीं कह रहा हूँ। श्रावकों की बात श्रवण कर स्वामी जी श्री हरकचन्द जी महाराज ने कहा- "इन बालमुनियों को दूध में घी मिलाकर देने के बजाय भूंगड़े व खाखरे दिए जाने चाहिए।" स्वामी जी महाराज अनुभवी थे। घी-दूध से विकार पैदा हो सकते हैं। हम विगय-त्याग की प्रेरणा करते हैं, उसके पीछे भी विकारों से दूर रहने की बात का लक्ष्य रहता है।

आप में से अधिकांश लोग उपवास करते हैं। पारणक में दूध-घी लेते हैं, उसके पीछे चिन्तन क्या है? आप शरीर को कमजोर नहीं, पोषण देना चाहते हैं। मैं आपसे पूछूं- भोजन मीठा होता है या भूख। भूख लगने पर सूखी-बासी रोटी ही क्यों न हो वह मीठी लगती है, खाखरे भी खाने का मन होता है। कभी किसी ने तेला किया और पारण में खाखरे के अलावा कुछ भी नहीं हो तो उस समय खाखरे भी मीठे लगते हैं। भूख में पाँच पकवान के बजाय घाट-राबड़ी हो तो क्या, उड़द के बाकले भी मीठे लगते हैं। भूख नहीं हो तो बादाम का हलवा भी सामने आ जाय तो उसमें भी कमी निकालते देर नहीं करते। यह कच्चा है, यह मीठा ज्यादा है, यह बराबर सिका हुआ नहीं है, न जाने कितने-कितने नुक्स निकाल देंगे। क्यों? भूख नहीं है।

जो लोग बिना भूख के खाते हैं वे कर्मबंध तो करते ही हैं, अन्न का

दुरुपयोग करते हैं वह अलग और अहं का पोषण करते हैं वह अलग। तप-साधना करने वाले ऐसे भी हुए हैं जिन्होंने मासखमण का पारणा पानी में राख घोलकर किया। खाने में जूठन न हो, अन्न बिखरे नहीं अतः चावल के दाने को सूई से उठाकर भी खाया। आज लोग खाते कम हैं, नखरे ज्यादा करते हैं। जो भी जूठन छोड़ते हैं, जीव हिंसा को प्रोत्साहित करते हैं। पड़ा हुआ अन्न नालियों में जायेगा, गटर में बहेगा। आप थाली को खोलकर पीएँ तो जीव-रक्षा के साथ अन्न की बर्बादी से भी बचे रह सकेंगे।

आप सेठ हैं। खाने में अनेक तरह के व्यंजन चाहिए। आपको अठाई के पारणक में खाखरे खाने को दिए जायें तो जीभ के चट्टू का सारा मद उतर सकता है। मैं कठोर शब्द कह रहा हूँ। आज जैन समाज में शादियों में ही नहीं, धर्म-स्थान पर आने वालों से जूठन की शिकायत सुनने को मिलती है। जो अन्न की कीमत नहीं जानता, वह जूठन छोड़ता है अन्यथा अन्न का अपमान किसी को करने का अधिकार नहीं है। जब तक अकाल का दुःख नहीं देख लिया जाता है तब तक अन्न की बर्बादी से बचा रहना मुश्किल होता है।

जीवन-निर्माण में आचारशुद्धि चाहिए। आचार-शुद्धि के लिए आहार की शुद्धता आवश्यक है। आहार कब लेना? कितना लेना? कैसा लेना? इन सब बातों को समझना चाहिए। यह बात साधना करने वाले साधुओं के लिए ही नहीं, आप श्रावकों के लिए भी है।

मैं अध्ययन करने वाले संतों के लिए आहार कैसा हो इस संदर्भ को लेकर कुछ कह रहा था। संतों के लिए विगय विपत्ति है। तीर्थंकर भगवान् महावीर ने तो घी-दूध-दही जैसे विगयों को विकार बढ़ाने वाला बताया है। ये विगय आवश्यकता के बिना नहीं दिए जाने चाहिए। गाड़ी चलते-चलते चूँ-चूँ बोलने लगे तब तेल दिया जाता है अन्यथा तेल देने की जरूरत नहीं।

बालमुनियों को पढ़ते देखकर एक श्रावक ने कहा- "इनको दूध

दिया जाना चाहिए।'' पास में खड़े दूसरे श्रावक ने कहा- ''इनको क्यों मारते हो? किसान का लड़का कब दूध पीता है? दूध-दही का सेवन नहीं करते हुए भी किसान का लड़का तन्दुरूस्त रहता है। उसके हृष्ट-पुष्ट रहने का राज है कि वह खाकर पचाता है।'' जो खाकर पचाता है, वह भोजन से शक्ति का संचार करता है। बालमुनियों को विगय देकर परम्परा नहीं बिगाड़नी है।

खाना, शरीर निर्वहन के लिए है। खाना सबको चाहिए। सुबह उठते ही चाय चाहिए, नाश्ता चाहिए। पर न नाश्ते का समय है, न खाने का। खाने ने आज आचार-विचार दोनों में बदलाव कर दिया है। धर्म और संस्कृति का ह्रास खाने-पीने में परिवर्तन की आदत से अनुभव किया जा सकता है। खाने-पीने की आदत से समाज में वर्षों से प्रचलित परम्परा और मान्यता में बदलाव आ गया है, ऐसा कहें तो उसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। सुबह नौ-दस बजे नाश्ता, दिन में दो-तीन बजे खाना और रात में नौ-दस बजे भोजन करने वाले न चौविहार कर सकते हैं और न ही रात्रि-भोजन का त्याग। पहले लोग घर पर खाते थे, आज शान-शौकत के कारण बाहर खाना पसंद किया जाता है। छुट्टी का दिन हो तो बच्चे ही नहीं, बच्चों की माँ तक कहती है- चलो, बाहर होटल में खाना खाते हैं। घर का शुद्ध भोजन सात्त्विक होता है जबकि बाहर का खाना न शुद्ध होता है न स्वास्थ्य वर्द्धक। लोग देखा-देखी करने में माहिर होते जा रहे हैं। आहार शुद्धि की बात हम संतों के लिए है तो आप गृहस्थों के लिए भी है। आहार-शुद्धि से विचार-शुद्धि और विचार-शुद्धि से आचार-शुद्धि बनी रहती है। अतः खान-पान पर हर सद्गृहस्थ को विचार करना चाहिए जिससे जीवन की पवित्रता-निर्मलता बनी रह सकती है।

जोधपुर
31 जुलाई, 2011

तप और दान का माहात्म्य समझें

तिरने-तारने वाले तीर्थंकर भगवन्त, तप से अपने कर्मों को तपाने वाले संत भगवन्तों के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन।

बन्धुओं!

तीर्थंकर भगवान् महावीर की आदेय-अनमोल वाणी के माध्यम से कर्म-निर्जरा के साधन तप का वर्णन किया जा रहा है। तप, विकार मिटाने वाला है, तप वासनाएँ हटाने वाला है, तप इन्द्रियों का दमन करने वाला है। तप भूख की पीड़ा समझाने वाला है। सामने वाला भूख की पीड़ा से कैसे व्याकुल है, वह कैसा अनुभव करता है, भूख की तकलीफ कितनी और कैसी होती है, तपस्या करने वाला तपस्वी तप के माध्यम से भूख की पीड़ा स्वयं अनुभव करता है। तप से तपे हुए तपस्वी अपने बचाए हुए द्रव्य का सदुपयोग करने की कोशिश भी इसी तप से करते हैं। सद्गृहस्थ के षट्कर्मों में पाँचवा कर्म, तप है, छठा कर्म दान है। कहा भी है-

देव-पूजा, गुरुपास्तिः, स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां, षट्कर्माणि दिने-दिने।।

दान क्या है? दान की परिभाषा समझें, दान कैसा होता है? इसको जानें। दान का क्या माहात्म्य है, विचार करें। दान किसे दें, इस पर भी विचार-चिन्तन करें। आज कई हैं जो अपने सगे-सम्बन्धियों, इष्ट-मित्रों और पारिवारिक-परिजनों व रिश्तेदारों को बुलाकर खिलाते हैं, यह दान नहीं है। जँवाई की मनुहार करना अथवा अपने मिलने वालों को पुनः पुनः आग्रह

अनुरोध करके खिलाना भी दान नहीं है। कई हैं जो खिलाते-खिलाते मनुहार ही नहीं, गले की सौगन्ध दिलाकर कहते हैं कि म्हारी मनुहार तो माननी ही पड़ेगी, जो यह कहकर खिलाता है तो क्या वह दान है?

दान की एक परिभाषा है-

दातव्यमिति यद्दानम्, दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे, काले च पात्रे च तद्दानम् सात्त्विकंस्मृतम्।।

-गीता 17/20

अर्थात् दान देना कर्त्तव्य है- ऐसे भाव से जो दान देश, काल और पात्र के प्राप्त होने पर निष्काम भाव से दिया जाता है, वह दान सात्त्विक कहा गया है।

जो दिया जा रहा है, वह दान है। यह दान ममता रखकर नहीं हो, मोह के वशीभूत नहीं हो। अपने स्वामित्व की वस्तु जरूरतमन्द को देना दान है।

तप और दान दोनों षट्कर्मों में शुमार हैं। आचार्य भगवन्त पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमल जी महाराज वर्षों से तप और दान की प्रेरणा करते रहे। आपने भगवन्त के प्रवचन सुने हैं, अथवा व्याख्यान मालाओं में भगवन्त का चिन्तन आपको पढ़ने को मिलता है। तप और दान का परस्पर का संबंध भी है। तप करने वाला अगर भूख की पीड़ा महसूस करता है तब उसमें देने की भावना जगती है। जिसे जरूरत है, उसे देना चाहिए। जरूरत नहीं उसे दिया जाय तो कोई अर्थ नहीं। बिना आवश्यकता के देना तो पहाड़ पर हुई वर्षा की तरह है। पहाड़ पर बरसा हुआ पानी किस काम का? वह तो बहते-बहते समुद्र में जा मिलता है। पानी का उपयोग पहाड़ पर नहीं, खेती के लिए जमीन पर जरूरी है। समुद्र में कई नदियाँ आकर मिलती है, समुद्र में गए पानी का क्या लाभ?

'दिया कहाँ जाय' इस सूत्र को समझने की जरूरत है। वर्षा खेत में

हो तो खेत में पड़ी एक-एक बूँद फसल के लिए लाभदायक है। खेती से हजारों-लाखों को जीवन-दान मिलता है। जहाँ जरूरत हो वहाँ देना उपयोगी है। आज तपश्चर्या करने वाले बहुत हैं। उपवास, बेले, तेले, पाँच, आठ की तपस्याएँ ही नहीं, मासक्षपण-तप भी हो रहे हैं। तप करने वाले अन्न का भोग नहीं करते परन्तु तप के पहले और तप के पश्चात् कैसा खाते हैं उसे देखना चाहिए। धारणा में कितने आइटम और कैसा गरिष्ठ भोजन है, आप इससे परिचित हैं, मुझे कहने की जरूरत नहीं। पारणक में क्या-क्या चाहिए? केर-पापड़, उकाली, दूध में घी, हलुआ और कितने-कितने आइटम? तप के पहले और बाद में आवश्यकता से अधिक खाना विकार नहीं तो क्या है? रसना का पोषण होगा तो संस्कृति का रक्षण कैसे होगा?

आज अधिकतर लोग खाने का संयम नहीं रख पा रहे हैं। खाना किसके लिए? जीवन-निर्वहन के लिए नहीं, किन्तु रसना की तृप्ति के लिए खाना संस्कृति का ह्रास है। रसना की तृप्ति के लिए खाने वाले खाने की शुद्धता है या नहीं उसे देखने की फुर्सत किसे है? रसना के वशीभूत मिलावटी खाना धड़ल्ले से खाया जा रहा है फिर बीमारी या कमजोरी की बात करना कहाँ तक ठीक है? आप कुछ वर्षों पूर्व की स्थिति जानने का प्रयास करें तो पाएँगे घर में वृद्ध दादी है, नानी है तो भी वे हाथ से पीसा आटा उपयोग में लेती थीं। हाथ का पीसा आटा शक्ति देता था, इसीलिए सत्तर-अस्सी वर्ष की उम्र में बुढ़िया पाँच-सात किलोमीटर चल सकती थी। आज घर-घर में माताओं-बहिनों की क्या हालत है? सेठ साहब क्यों नहीं चल पाते? प्रवचन-सभा में ये जो कुर्सियाँ लगी है, किस बात का संकेत है। बात यह है कि आज क्या बच्चे, क्या जवान और क्या बूढ़े, सभी शुद्ध खाने के बजाय चटोकरे हो गए हैं, ऐसा कहूँ तो क्या गलत होगा?

आज की कुछ बहिनें तो ऐसी हैं जो शरीर को सजाने-सँवारने में इतनी व्यस्त हो जाती हैं कि उनसे खाना तक नहीं बनता। पति को ऑफिस

जाना था, खाना बना नहीं तो पति यह कहकर चल देता है कि मैं कहीं बाहर खाकर ऑफिस चला जाऊंगा। पत्नी कहती है- ठहरों, मैं पाँच मिनट में आती हूँ। पाँच मिनट किसलिए? उसे खाना नहीं बनाना है, वह तैयारी करके आती है, कहती है- "चलो, मैं भी आपके साथ बाहर खा लूँगी।" वह बनाने के झंझट से मुक्त रहना चाहती है।

जब तक विकृत खाना नहीं छूटेगा तब तक शरीर की निरोगता नहीं रह पाएगी। शरीर की व्याधि घटने के बजाय बढ़ती जाएगी। मैं कल कह गया- मिठास भोजन में नहीं, भूख में है। कड़ाके की भूख में खाखरे खाए जा सकते हैं, चने चबाने में भी मुश्किल नहीं आती है। दिन भर मेहनत के बाद सूखा सोगरा, प्याज की पत्ति में लपेट कर खाने वाले आपने देखे होंगे। ताकत खाने में नहीं, पचाने में हैं। मैं कुछ कठोर शब्द कह रहा हूँ। आज सामान्य-सा काम है, परन्तु लोग थोड़ी दूर पैदल नहीं किन्तु स्कूटर पर जाना चाहते हैं। पैदल चलने की शायद ही किसी को मन में आती है। बैठने के लिए कुर्सी चाहिए, कहीं जाना हो तो स्कूटर-मोटर चाहिए। मानव, जानबूझ कर शरीर को लंगड़ा बना रहा है, कमजोर कर रहा है। इसी का नतीजा है- मोटापा। मोटापा दुःख का कारण है। उसका बैठना, उठना, चलना, फिरना, सब सहारे से होता है।

पहले तो आदमी से तपस्या होती ही नहीं। कभी हम कहते हैं तो तपस्या का नाम सुनते ही कइयों को बुखार आ जाता है। कुछ तो ऐसे भी हैं जो संवत्सरी के उपवास के लिए पाँच-सात दिन पहले से विचार में पड़ जाते हैं। आपका शरीर आपके वश में नहीं, इसलिए तपस्या करना भारी लगता है। आप तप करें। कर्म काटने की अचूक रामबाण औषधि तप है। तप करें, आडम्बर नहीं। तप न इस लोक की कामना से करें, न परलोक की भावना से। तप निष्कामभाव से करें। निष्काम भावना से किया गया तप शरीर को स्वस्थ तो रखेगा ही, कर्म काटने में भी सहायक होगा। मैं तप के साथ

व्यसन-त्याग की बात कह रहा हूँ। कल "विपरीत असनं व्यसनं" की बात बताई थी, आज 'विशेषं अन्नं व्यसनं" की बात कहने की भावना है। जो खाना प्रकृति के अनुकूल नहीं, शरीर में विकार बढ़ाता है, जिस खाने से स्वास्थ्य बिगड़ता है, असमाधि का अनुभव होता है, जीभ की लोलुपता बढ़ती है वह खाना त्याज्य है। एक व्यक्ति को शूगर है, मीठा खाना उसके लिए जहर है किन्तु वह कहता है कि फीकी चाय नहीं भाती, कुछ शक्कर तो डालो। डॉक्टर शक्कर की मनाही करता है, मीठा नहीं खाने को कहता है पर स्वाद के वशीभूत मीठा नहीं छूटता, मीठे के प्रति आसक्ति है तो वह तप नहीं कर सकता।

हम बंगारपेट गए थे। वहाँ एक बहिन ने आकर कहा- बाबजी! मुझे उपवास के प्रत्याख्यान करवा दो। घर वाले पीछे खड़े थे, मुँह से कुछ बोले नहीं, इशारे से उपवास पच्चक्खाने की मनाही कर रहे थे। पूछा- क्यों? क्या बात है? घरवालों का उत्तर था- "बाबजी! इससे उपवास नहीं होगा। यह दिन में पन्द्रह-बीस पान खाती है। पान ही नहीं, हर समय कुछ-न-कुछ खाना इसका मानो स्वभाव है। कभी घर पर खाना न बना हो तो होटल से मंगाकर खाती है। यह उपवास कर ही नहीं सकती। करेगी तो खोटा होगा।"

बहिन बोली- महाराज! ये ठीक कह रहे हैं। मेरी स्थिति ऐसी ही है पर मैं अपनी विकृत आदत छोड़ना चाहती हूँ इसके लिए आप तो मुझे उपवास करा दें। मैंने बहिन की बात पर भरोसा करके उपवास के प्रत्याख्यान करवा दिए। बहिन ने उपवास किया, दूसरे दिन बेला किया और तीसरे दिन तेला। उस बहिन ने एक-एक दिन तप करते हुए तैतीस की तपश्चर्या की। न घर वाले अनुमान कर सकते थे, न वह खुद अनुमान कर सकी पर जब पाप से ग्लानि होती है तो आदमी क्या कुछ नहीं कर सकता?

तप की भावना कब बनती है, इसका पहले पता नहीं चलता। कब

किसके मन में तपश्चर्या के भाव आ जाय, कहा नहीं जा सकता। पाप के प्रति घृणा कभी भी हो सकती है। आप अनशन कर सकें अथवा न भी कर सकें पर इतना जरूर करें कि विकार पैदा करने वाला भोजन तो नहीं करेंगे। प्रकृति के अनुकूल भोजन की मना नहीं, परन्तु प्रतिकूल भोजन का त्याग करें। आप यदि ऐसा करेंगे तो मैं समझूंगा तप के प्रति आपका आदर है।

कल रात्रि भोजन त्याग की बात चली थी। आपने मेरी बात सुनी। मुझे लगा कि आप शायद सब रात्रि भोजन त्यागी हैं इसलिए आप खड़े नहीं हुए। पहले इसी जोधपुर में जिस किसी घर में चले जाओ वहाँ कोई-न-कोई चौविहार करने वाला मिलता ही था। यह इस शहर का गौरव था। आज क्या स्थिति है? मुसाहिब पहले भी थे, आज भी हैं। नौकरी-पेशा वाले जैसे पहले थे, आज भी हैं फिर घर-घर में चौविहार करने वाले कम क्यों हो गए? अच्छे-अच्छे खानदानों में, कुलों में, पीढ़ियों से जो अच्छे संस्कार चले आ रहे थे, उन संस्कारों में विकृति कैसे आ गई?

तप करने वालों के प्रति अनुमोदना स्वरूप आप धन्यवाद कहते हैं, धन्यवाद देते हैं। आप तपस्वियों की तरह तप न भी कर सकें तो कम-से-कम व्यसन त्याग का नियम तो जरूर लें। शराब-माँस का आप उपयोग नहीं करते, इसकी जानकारी दूसरों को है। मैं "विपरीतं असनं व्यसनं" की बात कह रहा हूँ। आप विपरीत खाना छोड़ेंगे तो मैं समझूँगा कि आपके मन में तपस्या के प्रति बहुमान का भाव है।

आज विकृति छोड़ने वाले कल तप भी करेंगे। आप सहजता में उपवास करें तो उसमें कोई तकलीफ आने वाली नहीं है। आठ-नौ-दस साल के बच्चों ने तेले की तपस्या कर ली। आप में से कुछ ऐसे भी हो सकते हैं जो सोचते है "करे जिका दूजा, म्हारी होवेला पूजा।" "मैं क्यूं करां- हाल तो घर में अन्न है।" घर में अन्न आपके पास नहीं, सबके पास है, फिर भी संग का

रंग देखिये- नहीं करने वाले कर रहे हैं।

पानी में केसरियाँ रंग डालोगे तो कपड़े पर केसरिया रंग छाएगा, दूसरी तरह का रंग मिलाओगे तो दूसरा रंग आएगा। काली कम्बल है उस पर कोई रंग नहीं चढ़ता। कपड़ा स्वच्छ है, श्वेत है उस पर रंग चढ़ता है, ठीक ऐसे ही जो सरल हैं वे तप-साधना में सहजता से आगे बढ़ सकते हैं।

मैंने तप और दान के संदर्भ में संक्षेप में अपनी बात रखी। तत्त्वचिन्तक श्री प्रमोदमुनि जी से आपने तप में प्रदर्शन-आडम्बर न हो इसके बारे में सुना। तप करने वालों को रिश्तेदार कुछ देना चाहते हैं। आप हाथ जोड़कर निवेदन करें कि आपको यदि देना ही है तो अनुकम्पा के साथ जरूरतमंद लोगों को दीजिए। आप खाना नहीं छोड़ सकते तो इतना संकल्प जरूर करें कि हम विपरीत आहार नहीं करेंगे, जरूरत से ज्यादा नहीं खाएँगे। मनुहार करने वाले बहुत मिल जाएँगे पर आपको अपना पेट देखकर खाना है। भूख से कुछ कम खाना भी ऊनोदरी तप है। भगवान् महावीर ने ऊनोदरी को तप में शुमार किया है। कम खाने वाला बीमार नहीं होता। आप स्वस्थ रहना चाहते हैं तो ऊनोदरी तप सहज में किया जा सकता है। आप चातुर्मास में प्रयास करके देखिये। शायद जिनकी दवाएँ चल रही हैं, ऊनोदरी तप से दवा छूटेगी यह तो नहीं कहता, लेकिन दवा कम हो जाएगी। आप तप-साधकों की तरह तप नहीं कर सके तो प्रकृति के विपरीत और विकार-वर्द्धक आहार छोड़ने की आदत बनाएँ। आपकी इस आदत से भी तप करने की रूचि व भावना बन सकेगी।

जोधपुर
07 अगस्त, 2011

शांति और समाधि चाहिए तो पूर्वाग्रह छोड़िए

अव्याबाध सुख में लीन सिद्ध भगवन्त, अनन्त सुख के स्वामी अरिहन्त भगवन्त, वीतराग आज्ञा का पालन करने वाले संत भगवन्तों के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन।

बन्धुओं!

तीर्थंकर भगवान् महावीर की आदेय-अनमोल वाणी में देवता के पश्चात्ताप की बात कही जा रही है। देवता पश्चात्ताप करते हैं, खेद करते हैं, दुःखानुभूति करते हैं। देवता पछतावा क्यों करते हैं? कारण क्या है? क्या उन्हें देवता का अवसर खोने का पश्चात्ताप होता है? पश्चात्ताप आपको होता है, ऐसे ही देवताओं को भी होता है। पर जो समय का सदुपयोग करे, पाए गये साधनों का सार निकाले, अपने पुरुषार्थ में माया का वर्तन करने के बजाय पूर्ण उत्साह से निर्जरा के लिए काम करे तो उसे पश्चात्ताप करने की जरूरत नहीं होती।

पश्चात्ताप मिटाने के लिए ही इस अनन्त ज्ञानी को ज्ञान दिया जा रहा है। यह बात आपको आश्चर्यजनक लग सकती है कि अनन्त ज्ञानी को ज्ञान कैसे दिया जाये? ज्ञानी है और उसी को ज्ञान दिया जा रहा है। सुनने में यह बात अटपटी लग सकती है, किन्तु वैसा है नहीं। क्यों? आत्मा की सत्ता में अनन्त ज्ञान-अनन्त दर्शन होते हुए भी वर्तमान में कर्मों की उलझन भरी स्थिति के कारण ज्ञान की बात कही जा रही है। आचार्य भगवन्त पूज्य गुरुदेव

श्री हस्तीमल जी महाराज के शब्दों में कहूँ-

शांति सिंधु निज पास है, तरसे बिन्दु काज।
क्या कारण हम बिलखते, पा न सके सुख साज।।

जिस घर में शांति का सेतु लहलहा रहा है, जिस घट में इतनी ज्ञान-रश्मियाँ हैं, वह क्या अपने-आपको कष्ट की अनुभूति से हैरानी-परेशानी उठा सकता है? आज बहुत से लोग विपरीत आचरण और विपरीत वातावरण में आ गये हैं, इसीलिए पुरुषार्थ करना चाहते हुए भी सम्यक् पुरुषार्थ नहीं कर पा रहे हैं।

आप जानते हैं- उल्टे घड़े में पानी नहीं भरता। आपका अनुभव कहता है कि खाली घड़े में पानी भरना हो तो उसे सुलटा कर दें। कहने में यह बात सरल सी दिखती है कि घड़ा खाली है पर वास्तव में घड़ा खाली नहीं है। घड़ें में हवा है। घड़ा उल्टा पड़ा है इस कारण उसमें पानी नहीं समा सकता। घड़ें में हवा है। जहाँ भी रिक्त स्थान है वहाँ हवा है। आप घड़े को तिरछा करके उसमें पानी डाल करके देख लीजिए। घड़े में जितना पानी जाएगा, उतनी हवा उसमें से निकलेगी। जब घड़ें को पानी में डुबोते हैं तो हवा निकलती है और आवाज आती है। घड़े की बात जाने दीजिए, आपके शरीर में भी हवा है। कोई डॉक्टर ग्लुकोज चढ़ाए अथवा इंजेक्शन लगाए तो आपको अनुभव में आएगा कि ग्लुकोज जितना शरीर के भीतर जाएगा, भीतर की वायु बाहर निकलेगी।

हमारे भीतर अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शन है। अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शन होते हुए भी हम अपने-आपको क्यों नहीं जान रहे हैं? हमारे भीतर हवा की तरह विकार भरे हैं। कुछ लोग हैं जो कहते हैं- हम याद तो करते हैं पर याद नहीं रहता, भूल जाते हैं। कई तो ऐसे लोग भी हैं जो कहते हैं- महाराज! हमको तो ज्ञान चढ़ता ही नहीं। याद नहीं होता अथवा ज्ञान नहीं चढ़ता इसका मतलब है कि उसके मस्तिष्क में न जाने कितने फितूर

पहले से जमा हैं। किन-किन बातों को लेकर न जाने कितने-कितने पूर्वाग्रह भरे हुए हैं। माथे में बहुत सारी बातें जमा है, इसलिए नया ज्ञान याद नहीं रहता।

आपका मस्तिष्क काम नहीं कर रहा है, ऐसी बात नहीं है। एक जमाना था जब 64 पैसे का रुपया होता था, आज 100 पैसे का रुपया है यह समझ में आता है या नहीं? आपको किलो समझ में आ गया, लीटर समझ में आ गया, सैंटीमीटर समझ में आ गया। आगे कहूँ? मारवाड़ी जानने वाले और बोलने वाले तमिल, तैलगू, कन्नड़ जैसी भाषाएँ कैसे सीख गए? आपने कठिन भाषाएँ सीख ली इससे साफ हो जाता है कि आपमें दिमाग है। आप चाहें तो याद कर सकते हैं। आपको संस्कृत-प्राकृत समझ में आ सकती है। आपके पास दिमाग है। अगर दिमाग नहीं होता तो दस-बारह साल पहले किसने क्या कहा, वह आज तक कैसे याद है? आपकी याददाश्त कमजोर नहीं है, पर नया ज्ञान याद नहीं रहता इसमें कारण है रूचि का अभाव।

आप शांति चाहते हैं, समाधि चाहते हैं, आत्मज्ञान चाहते हैं तो पूर्वाग्रह को छोड़ दीजिए। आज भाद्रपद कृष्णा सप्तमी है, शांतिनाथ भगवान का च्यवन कल्याणक है। भगवान् आज ही के दिन सर्वार्थसिद्ध विमान से च्यवन करके माता अचरा जी के उदर में गर्भ रूप में पधारे और उनके आते ही माता के अलौकिक शान्ति मिली। हर जीव शांति, समाधि और विकास चाहता है। विकास कब होगा? जब तक विरोधी वातावरण दूर नहीं होगा तब तक विकास नहीं हो सकता। शांति के लिए कवि ने ठीक ही कहा है-

शांति नहीं हो अगर गगन में,
उड़ सकते क्या वायुयान।
शांति नहीं हो गर सागर में,
प्रवहण नहीं छोड़ते स्थान।

शांति नहीं हो गर नगर में,
रूक जाता है यातायात।
शांति नहीं हो गर ज्योतिर्गण में,
तब होता है उल्कापात।
शांति नहीं हो सरिता में,
बाढ़-ग्रस्त हो जाता स्थान।
शांति नहीं हो गर वायु में,
तभी उठा करते तूफान।
शांति नहीं गर चित्त में,
हो जाता है जीवन दूभर।
शांति नहीं होने से चित्त में,
जानबूझ कर मर जाता नर।

ये कुछ दृष्टान्त हैं। ऐसे कई उदाहरण कहे जा सकते हैं, दिए जा सकते हैं। आप देखते हैं- आकाश में बिजलियाँ चमक रही हैं, बादलों की घड़घड़ाहट हो रही है, तेज वर्षा का दौर चल रहा है, मौसम की ऐसी प्रतिकूलता में क्या हवाई जहाज अपना स्थान छोड़ सकता है? आप जानते हैं कोहरे में हवाई जहाज नहीं उड़ते। कोहरे में ट्रेनें हो या सड़क पर चलने वाले वाहन, वे अपनी सामान्य गति के बजाय धीरे-धीरे चलते हैं। वाहन चाहे सड़क पर चलने वाला हो, रेल पर दौड़ने वाला हो अथवा आकाश में उड़ने वाला हो या समुद्र पर गति करने वाला हो, सभी जगह शांति है तो गति है। हवाईजहाज हो या मालवाहक जहाज उसके चालक को सूचना मिल जाय कि तूफान आने वाला है तो हवाईजहाज न तो उड़ान भरेगा और न ही मालवाहक जहाज लंगर छोड़ेगा।

एक नगर है। वहाँ भीड़ जमा हो रही है, नारे लगाए जा रहे हैं, पुलिस मुस्तैद है, नगर में अशांति है, ऐसे समय क्या आप घर छोड़ेंगे? घर छोड़ना तो दूर, बाहर जाने तक का मन नहीं होगा। आप खिड़की या दरवाजे

से बाहर का नजारा यह जानने को देखते हैं कि बाहर जाने का अवसर है या नहीं? चाहे नगर हो, सागर हो, गगन हो, सरिता हो वहाँ यदि वातावरण शांत है तो ही आप स्थान छोड़ने का मन बनाते हैं। अशान्त वातावरण में घर छोड़ने का प्रयास नहीं किया जाता। ये बाहर में दिखाई देने वाली अशांति के कुछ उदाहरण हैं।

ठीक इसी तरह जहाँ कषायवृत्ति बढ़ रही है, मन में मलीनता का भाव है, एक-दूसरा एक-दूसरे के प्रति आग्रह की भावना से ग्रसित है, सामने वाले के प्रति दृष्टि मलीन है, वातावरण में या मन में शांति नहीं, वहाँ भले ही हाथ में पुस्तक ही क्यों न हो, न स्वाध्याय में मन लगता है और न ही गाथा याद होती है। अनुभवियों का स्पष्ट कथन है- जब चित्त में समाधि और मन में स्थिरता है तभी ज्ञान प्राप्त हो सकता है। पढ़ने के लिए स्थान शांत चाहिए और एकान्त भी चाहिए। ज्ञान प्राप्त करना हो या ध्यान लगाने वाला हो अथवा साधना करने वाला हो, उसे मन की शांति चाहिए, स्थान की शांति चाहिए और वातावरण की भी शांति चाहिए। ज्ञान लेना, ध्यान करना, साधना करना, सामायिक-स्वाध्याय करना अच्छा है, पर इसके लिए शांति चाहिए। आपको पौषध करना है तब भी मन में शांति चाहिए। जबरदस्ती करने वाले कभी-कभी यह तक कह देते हैं कि "मैं तो पौषध करूँगा, मासखमण करूँगा, आप चाहे सहयोग करो या नहीं। थे म्हारी चिंता छोड़ों, म्हारी मैं निपट लूँगा। मुझे तप करना है तो करूँगा ही।" मन की ऐसी अशान्त स्थिति में न सम्यक् पौषध होगा और न ही तप।

मन की शांति के लिए वातावरण में समाधि बनी रहे, उसके लिए कुछ ऐसे भी लोग होते हैं जो तपश्चर्या करने वालों को और, साधना-आराधना करने वालों को आगे आकर सहयोग करते हैं। कुछ बन्धु ऐसे भी हैं जो हमको आकर कहते हैं- "बाबजी! घर में एकान्तर चल रहा है, धर्मपत्नी

पिछले कई वर्षों से एकान्तर तप कर रही है, मुझसे तपस्या नहीं होती, किन्तु मैं पिछले कई वर्षों से ब्रह्मचर्य का पालन कर रहा हूँ। मैं तप में सहभागिता नहीं बना सका पर ब्रह्मचर्य का पालन करके सहयोग तो कर सकता हूँ।" घर-परिवार का कोई सदस्य जिसे विरक्ति हो गई है, भले ही वह बेटा ही क्यों न हो, कई ऐसे लोग भी हैं जो उस विरक्त की दीक्षा में रुकावट नहीं डालते।

मैं आपको एक दृष्टान्त दूँ। जोधपुर के इन्दरचन्द जी गाँधी। उनका एकाएक लड़का था। उसे आठ-नौ साल की अवस्था में ही वैराग्य आ गया। उनके चार-चार लड़कियाँ थीं फिर भी उन्होंने आज्ञा दे दी कि मेरा पुत्र दीक्षित होना चाहता है तो मेरी आज्ञा है। एक तरफ ऐसा उदाहरण है तो दूसरी तरफ ऐसे लोग भी हैं जिनके चार लड़के हैं, उनमें आपस में प्रकृति का मेल नहीं खाता, बनती नहीं, एक-दूसरा एक-दूसरे को काटता है, लड़ाई-झगड़े तक की नौबत आ जाती है परन्तु उस घर या परिवार में कभी किसी की दीक्षा की बात सामने आ जाय तो घर का मुखिया निःसंकोच कह देता है कि- "दीक्षा री बात करी तो गोली मार दूँगा। थने तो मारूलां ही, थारा गुरुजी ने भी गोली सूँ उड़ाय दूलां।" जैन दिवाकर चौथमल जी महाराज जब दीक्षा की आज्ञा लेने गए थे तो पिताजी ने कह दिया था- "मैंने कभी आज्ञा दी नहीं और दूँगा भी नहीं।"

कभी-कभी प्रश्न में भी उत्तर होता है। एक वाक्य प्रायः आप में से कई लोग बोलते हैं- हम 'भीतर' गये। अब आप 'भी' और 'तर' को अलग करके पढ़ें- हम 'भी तर' गये। तुम भीतर जाओ तो तुम भी तर जाओगे। भीतर में 'भी' को अलग कर दिया तो उत्तर मिल गया। प्रश्न में छिपा उत्तर से अभिप्राय है कि जो भीतर गया, वह तर गया अर्थात् पार हो गया। तुम भीतर जाओ, तुम भी तर जाओगे। मतलब, भीतर जाने वाला पार होता है,

तिरता है। आप भी भीतर में जायें और अपने दुराग्रह को बाहर निकल दें।

जब तक मन में शांति नहीं होगी हर क्रिया के साथ दुराग्रह या हटाग्रह जुड़ जायेगा। कभी किसी परिवार में शादी-विवाह का प्रसंग हो और कार्ड में किसी का नाम भूल से लिखने में नहीं आया तो जिसका नाम नहीं आया वह तुरन्त प्रतिक्रिया देगा- "देखो! भाई ने मेरा नाम हटाया है। मेरा नाम ही नहीं हटाया, उसने तो समाज में मेरी नाक ही काट दी। अब तो ऐसी शादी में मुझे सम्मिलित होना ही नहीं है।" भाई आकर कहता है- भैय्या! आपका नाम भूल से रह गया, क्षमा करो। बार-बार कहने पर और माफी माँगने पर भी वह वैमनस्य का भाव नहीं भूलता है।

आपने अभी सुना है कि 70 साल का आदमी तलाक दे रहा है, क्यों? हाँ, कोई 30-40 साल का है और वह यदि तलाक दे तो समझ में आता है कि आपस में मनमुटाव है, बनती नहीं, सामंजस्य नहीं बैठ पाया, लेकिन सत्तर साल का तलाक दे तो.....? यह अशांति का कारण है, उसके मन में कोई पूर्वाग्रह है, हट है। अमुक ऐसा ही है। उससे मेरी कभी बनी नहीं, बनेगी भी नहीं, यह क्या है? क्या हत्यारा सदा हत्यारा ही रहेगा? अर्जुन माली क्या सदा हत्यारा अर्जुन ही रहेगा? क्या प्रभव चोर सदा चोर ही रहेगा? आपने सभी दृष्टान्त सुन रखे हैं। आपको हर घटना की कम या ज्यादा जानकारी है। मुझे कहना है- आपको शांति चाहिए तो पूर्वाग्रह छोड़ दीजिए। समाधि चाहिए तो दुराग्रह छोड़ दीजिए। आज आपने अपने बच्चों से क्या-क्या सुना? वह याद नहीं है पर दूसरों ने आपके बारे में कब-क्या कहा? वह आज तक याद है।

मैंने सुना कि नई बहू जो कुछ दिन पहले घर पर आई, सायंकाल वह दीपक जलाने लगी। असावधानी से बहू के हाथ से तेल की कुछ बूंदे जमीन पर गिर गई। ससुरजी पीछे से आए, उन्होंने नीचे गिरी तेल की बूंदों

को जूते पर रगड़ दिया। नई बहू अमीर घर से आई थी। उसने मन ही मन सोचा कि मैं किस घर में आ गई? यहाँ मेरा निभाव कैसे होगा? ससुरजी को तेल की बूंदें गिरना सहन नहीं हुआ तो फिर मेरे खर्चे उन्हें कैसे बर्दाश्त होंगे? मेरे मौज-शौक के, खाने-पीने के, पहनने-ओढ़ने के, साज शृंगार के बहुत खर्चे हैं, ससुरजी मेरे खर्चे सहन नहीं कर सकते।''

बहू को ससुरजी के प्रति मन में पूर्वाग्रह से भ्रांति हो गई। लेकिन वह चतुर थी। उसने ससुर जी को परखने के लिये पेट दुःखने का बहाना बनाया। वह जानबूझ कर तड़फ रही थी, मानो पेट का दर्द असह्य हो रहा था। ससुरजी ने पूछा- ''बेटा! क्या हो गया? क्या पहले भी कभी ऐसा दर्द हुआ था?''

बहू ने कहा- ''हाँ, ऐसा दर्द पहले भी कई बार हुआ है।''

ससुरजी- ''उस समय क्या किया?''

बहू बोली- ''माँ ने मुट्ठी भर मोती पीसे, चूर्ण बनाया और मुझे खिला दिया। दर्द ठीक हो गया।''

ससुरजी ने सोचा- मेरे घर में मोतियों की कमी नहीं है। उन्होंने थाली भर कर मोती पिसवाने की तैयारी की। यह देखकर बहू बोली- ''ठहरिये! मेरा पेट दर्द कुछ ठीक-सा हो रहा है। अभी मैंने जो दवा बताई, आप वह नहीं बनाएँ।''

बहू ने सोचा कि- ''एक तरफ तो ससुर जी इतने कंजूस कि तेल के गिरने पर गिरे हुए तेल की बूँदों को जूती पर लगा लेते हैं, परन्तु दूसरी ओर मेरे पेट दर्द के लिए थाली भर मोतियों को पिसवाने की उदारता भी रखते हैं।'' बहू के मन में बड़ी उथल-पुथल मच गई और उसने आखिर ससूर जी से पूछ ही लिया- ''मैं सोच रही थी कि मुझसे दीपक जलाने के समय तेल की कुछ बूँदें गिर गई, वे आपको सहन नहीं हुई और आपने तुरन्त उन्हें पौंछ

कर अपनी जूती पर लगा ली। मैंने सोचा आप इतनी कंजूसी करेंगे तो मेरा इस घर में निभाव कैसे होगा? परन्तु मेरे पेट दर्द को ठीक करने के लिये आप थाली भर मोती पिसवाने को भी तैयार हो गये, यह विरोधाभास देखकर मैं चकित हूँ। पेट दर्द तो केवल मेरा नाटक था।''

ससुरजी ने कहा- ''बेटी! तेल की गिरी बूंदों को यदि साफ नहीं किया जाता तो उस पर कीड़ियाँ आती, व्यर्थ में जीव-हिंसा होती इसलिए मैंने गिरी हुई तेल की बूंदों को जूते पर लगाना ठीक समझा। यह विवेक की बात थी।'' बहू का भय दूर हो गया और पूर्वाग्रह भी।

मेरी बात आप सुनकर ही नहीं रहें बल्कि अपने पूर्वाग्रह में परिवर्तन करके व्यक्ति की कद्र करना सीख जायें तो आपका घर स्वर्ग बन सकता है। आप शांति चाहते हैं तो वस्तु के साथ व्यक्ति विशेष के प्रति जो भी पूर्वाग्रह मन में बैठ गया तो उसे निकाल बाहर करें। पूर्वाग्रह से मुक्त होंगे तो घर-परिवार ही नहीं, संघ-समाज में शांति स्थापित हो सकेगी।

जोधपुर
21 अगस्त, 2011

वासुदेव श्रीकृष्ण के गुणानुरागी बनें

अकारण करुणाकर सिद्ध भगवन्त, अनन्त-अनन्त उपकारी अरिहन्त भगवन्त और साधक का जीवन स्वीकार कर क्रिया के माध्यम से प्रेरणा करने वाले संत भगवन्तों के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन!

बन्धुओं!

तीर्थंकर भगवान् महावीर की आदेय-अनमोल वाणी का आठवाँ अंग अन्तगड़दसांग, जिसमें वासुदेव श्रीकृष्ण की पुण्यशीलता की चर्चा है, जिनके पग-पग पर निधान हैं, जन्म से लेकर जीवन-पर्यन्त का विवेचन है, आप श्रवण कर रहे हैं। सब दिन एक समान नहीं होते। पुण्यवानी प्रबल होती है तो जंगल में मंगल होता है और पुण्यहीनता की स्थिति में व्यक्ति के द्वारा अर्जन किया गया खजाना तो दूर की बात है, पहनने के कपड़े तक वैरी हो जाते हैं। संसार में जितनी भी साहिबी है, समृद्धि है, प्रतिष्ठा का रूप जो हम और आप देख रहे हैं, अनुभव कर रहे हैं उसके पीछे किसका खेल है? इसकमे पीछे व्यक्ति के पापकर्म या पुण्यकर्म हैं। अचम्भा इस बात का है कि हम पाप करते हुए डरते नहीं, परन्तु पुण्य करते हुए हमारे हाथ काँपते हैं। चाहते हैं सुख, और रास्ता पकड़ रहे हैं दुःख का। सही मायने में अपने जीवन का विकास करना है तो इस पुण्य के अवसर को पाकर जितना पुरुषार्थ करना चाहिए वह नहीं करते हैं। हमें वासुदेव श्रीकृष्ण के वृत्तान्त से सीख लेकर पुरुषार्थ करने का प्रयास करना चाहिए।

आप सुनते हैं, समझते हैं, और कुछ हैं जो चिन्तन भी करते हैं पर यहाँ तक करके इतिश्री न समझ लें। सुनकर, समझकर, विचार और चिन्तन करके अपने चरण पुण्यशीलता के मार्ग पर बढ़ाने की जरूरत है। वासुदेव श्री कृष्ण जेल में जन्मे। आज कई लोग हैं जो कारागृह को कृष्णमंदिर कहते हैं। एक पुण्यवान पुरुष के कारागृह में जन्म लेने मात्र से कारागृह को कृष्णमंदिर कहा जा रहा है। वासुदेव श्रीकृष्ण का जन्म जेल में हुआ, तीन खण्ड के नायक का बचपन गाँव में बीता। वे गोकुल में रहे। आचार्य भगवन्त (पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमल जी महाराज) के शब्दों में कहूँ- "साधना की जितनी अनुकूलताएँ गाँवों में हैं, उतनी नगरों और महानगरों में नहीं। वह अनुकूलता चाहे ईर्या की अपेक्षा से हो अथवा एषणा की अपेक्षा से, परिस्थापना की जितनी सुविधा गाँव में है वह शहरों में और बड़े नगरों में नहीं मिलती।"

आज लोगों का गाँवों से शहरों की तरफ पलायन हो रहा है। शहरों में आजीविका के साधन अधिक सुलभ हैं और चिकित्सा, शिक्षा, व्यापार-व्यवसाय और सुख-सुविधा भी गाँवों की अपेक्षा नगरों व महानगरों में अधिक है। सुख- सुविधा शहरों में है इसका यह मतलब कतई नहीं कि गाँवों में रहने वाले भूखे मरते हैं या माँग कर खाते हैं। पेट भराई गाँवों में भी होती है, जबकि शहरों में पेट भराई के साथ पेटी भराई की चिंता भी रहती है।

गाँव श्रीकृष्ण ने भी छोड़ा था। क्यों छोड़ा? आपको जानकारी है तो फिर जवाब क्यों नहीं देते? महापुरुषों का कथन है- "जननी और जन्मभूमि" दोनों का बड़ा उपकार है। वासुदेव श्रीकृष्ण जननी-जन्मभूमि के उपकारों को जानते थे, मानते थे, कहते भी थे, फिर भी सुरक्षा के कारण को लेकर उन्होंने जन्मभूमि छोड़ दी।[1] आज गाँव छोड़ने वालों का लक्ष्य सुरक्षा नहीं किन्तु सुख-सुविधापूर्वक कमाई के उद्देश्य से गाँव से शहर को पलायन

होता है।

अनार्य देश वाले, आर्य देश में पहले से आते रहे हैं। आर्य देश में जीवन-निर्वाह की और जीवन-निर्माण की अधिक सहूलियतें हैं। जैन समाज के लोग कहाँ-कहाँ जाकर नहीं रहते? दुबई, हांगकांग, अमरीका, जापान आदि दुनियाँ के छोटे-बड़े सभी देशों में हमारे बन्धु चले गए और जा रहे हैं। क्यों? यह आर्य देश है, अनार्य देश में जाने का उनका न चिन्तन है न लक्ष्य परन्तु अर्थोपार्जन की दृष्टि से अधिक अच्छी जगह कौनसी है वहाँ जाने और रहने में कोई हिचक नहीं है। ऐसे-ऐसे शहर हैं, देश हैं जहाँ संत-मुनिराज या महासतियाँ जी महाराज के दर्शन दुर्लभ है, वहाँ जाकर बसने में भी संकोच नहीं होता। प्राचीन समय में अनार्य देशों के लोग साधना-आराधना के लिए आर्य देशों में आते थे। ठीक इसके विपरीत आज आर्य क्षेत्र के लोग आजीविका के लिए अनार्य क्षेत्र में जाते हैं।

उदारता का गुण आज ही है, ऐसा नहीं है। आपके पूर्वज अधिक उदार थे। वे स्वयं जाते और साथ में आजीविका का प्रसंग हो या साधना-आराधना का, वे दूसरों को साथ लेकर भी जाते। पीपाड़ में चातुर्मास के अन्त में पूज्य आचार्य भगवन्त ने मुझे दीक्षित किया फिर पहला चातुर्मास भोपालगढ़ था। भोपालगढ़ में जैन समाज के भाई-बहिन तपाराधन करते थे, परन्तु अजैन, जिनमें हरिजन बहनें भी थी, उन्होंने भी अठाइयाँ की। तप-साधना में वे बहिनें कैसे बढ़ी? समाज के लोगों ने प्रेरणा का तो काम किया ही, उन्होंने तपस्विनी बहिनों की सार-संभाल और सुविधा का भी पूरा ध्यान रखा। आपके बुजुर्ग अपना ही नहीं, दूसरों का भी ध्यान रखते थे, आज क्या स्थिति हैं? आप स्वयं चिन्तन करें।

मैं उदारता के कुछ और प्रसंग बतला सकता हूँ। चेन्नई में जैन समाज के साथ अजैन भी धार्मिक शाला में सीखने आते थे। वे अजैन भाई

पढ़ते और पाठ याद करते। उन भाइयों में मुस्लिम भाई भी थे। अजैन को देखकर समाज के लोगों में उनके प्रति सद्भावना रहती थी। वे यह नहीं कहते कि ये तो खाने के लिए आ जाते हैं। मुस्लिम बच्चों ने नमस्कार मंत्र, तिक्खुत्तो, और कइयों ने सामायिक के पाठ तो सीखे ही, संस्कार शाला में आकर मांस-भक्षण नहीं करने के नियम भी लिये।

जैन कैसे आगे बढ़े? किस भावना से बढ़े? वे उदारता के कारण अजैनों को व्रत-नियम और त्याग-तप से जोड़ने में सफल रहे। मुस्लिम मतावलम्बियों ने मांस-भक्षण नहीं करने का संकल्प लिया तो कुछ लोगों ने प्रतिक्रिया करते हुए कहा कि जैनों ने मुसलमानों का धर्म परिवर्तन करवाया है। संस्कार देने वालों ने कहा- हम किसी का धर्म नहीं बदलवाते। जीव चाहे छोटा हो या बड़ा, हर जीव, जीना चाहता है। जीव हिंसा न हो इसका हमने स्वरूप समझाया है। मांसाहार के बजाय शाकाहार सस्ता है, स्वास्थ्यवर्द्धक है। जो लोग विवाद के लिए आए, उन्होंने भी बात समझी और मांस का परिवार सहित त्याग कर दिया। मुस्लिम बच्चों की दृढ़ता का असर पूरे परिवार पर हुआ। ऐसा कब होता है? यह सब उदारता से होता है।

वासुदेव श्रीकृष्ण ने सभी के साथ सहयोग किया। उस महापुरुष ने जीवन पर्यन्त कैसा आदर्श बनाए रखा? वासुदेव श्री कृष्ण तीन खंड के स्वामी थे पर उन्होंने किसी को छोटा नहीं समझा। गाँव का मुखिया, नगर का प्रधान, प्रदेश का मुख्यमंत्री, देश का प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति पद पर आसीन जो लोग हैं उनमें वासुदेव श्रीकृष्ण जैसी उदारता आज देखने में नहीं आती।

काम कोई छोटा नहीं होता और व्यक्ति कोई बड़ा नहीं होता। जिनके पास साधन है वह बड़ा और साधनहीन छोटा, ऐसी बात नहीं है। बड़े की जगह बड़ा काम आता है तो छोटे की जगह छोटा काम आता है। तलवार के स्थान पर सूई काम नहीं आती। वासुदेव श्रीकृष्ण के जीवन के अनेक

दृष्टान्त हैं, कई घटनाएँ कही जा सकती हैं। उनके विनय की क्या कहूँ? माता के प्रति उनका कितना आदर था, श्रद्धा थी, अहोभाव था। वासुदेव श्रीकृष्ण के हजारों माताएँ थीं, वे भावनापूर्वक प्रणाम करते थे। आज आपके एक माता है फिर भी रोज प्रणाम करके आशीर्वाद लेने वाले कितने हैं?

वासुदेव श्रीकृष्ण ने एक बार माता की उदासी देखी तो सारे काम छोड़ दिए और तीन दिन तक साधना करके उदासी मिटाने का काम किया। आज घंटे भर माँ की सेवा करनी भारी लगती है। माता की इच्छापूर्ति में तीन दिन साधना करना श्रद्धाभक्ति का अनुपम उदाहरण कहें तो उसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। माँ ने कहा- मेरे छः छः लाल हुए पर मैंने एक को भी नहीं खिलाया। माताश्री की इच्छापूर्ति के लिए वासुदेव श्रीकृष्ण ने तेले की साधना की।[2]

गो-रक्षा की क्या बात कहूँ। आप सब गाय की महत्ता से परिचित हैं पर गो-रक्षा की आज क्या स्थिति है? आज जन-जन के मन में स्वार्थ की भावना इतनी गहरी हो गई कि जिसे हम गोमाता कहते हैं, उसे कसाई के हाथ बेचने में भी संकोच नहीं होता। लोभ के कारण गायें कत्लखाने पहुँच रही हैं। गाय को माता कहने वाले गो-रक्षा के नारे लगा देते हैं, लेकिन नारों के अनुरूप व्यवहार नहीं करते, इसीलिए आज सैकड़ों टन गोमांस का निर्यात हो रहा है। गोमांस का धड़ल्ले से निर्यात कब बंद होगा? क्या यह नारों से संभव है?

आचार्य भगवन्त (पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमल जी महाराज) प्रायः कहा करते थे कि सिक्ख चाहे पंजाब में रहता हो या अन्य किसी क्षेत्र में, वह गुरुद्वारा और गोशाला इन दो बातों को याद रखता है। घर बनाने के साथ गाय का बाड़ा बनाने का लक्ष्य रहता है। अकेला परिवार गाय का पालन नहीं कर सकता तो मिलकर गोशाला चलाने का लक्ष्य रहता है। आज गाँव-गाँव

ही नहीं, घर-घर में गो-रक्षा का नारा लगाया जाता है। नारा लगाने वाले एक-एक पशु का रक्षण करे तो शायद जोधपुर में लाखों पशुओं का रक्षण हो सकता है। आज जोधाणा, जोधपुर ही नहीं रहा, महानगर बनता जा रहा है। हर व्यक्ति जो गाय को गोमाता कहता है, एक-एक गाय पाले तो गाय पालने में खर्चा नहीं, बचत ही बचत है। गोपालन महँगा नहीं है। गाय दूध देती है साथ-ही-साथ गाय का मूत्र तक दवा के उपयोग में लिया जाता है। गाय के गोबर की खाद बनती है। गाय से दूध, दही, मक्खन, घी मिलता है। गो-रक्षा की बात करने वाले, गो-रक्षा के नारे लगाने वाले, गो-पालन में सजग नहीं हैं, इसलिए घर-घर गाय रखने का स्थान नहीं मिलता। मोटर-कार और स्कूटर रखने की घर में जगह है, गाय रखने की नहीं।

वासुदेव श्रीकृष्ण गोभक्त थे इसके अतिरिक्त मित्रता निभाना भी उनके जीवन से सीखा जा सकता है। आज आप सबके कोई-न-कोई मित्र हैं, पर मित्रता रहती कैसे है? मित्रता का निर्वहन किस प्रकार किया जाता है, यह बात वासुदेव श्रीकृष्ण के जीवन से सीखनी चाहिए। आपके दोस्त हैं। आपका दोस्त यदि बड़ा अधिकारी बन गया, कोई कलेक्टर हो गया तो यह कहने वाले बड़े गर्व से कहते हैं कि मेरे कलेक्टर साहब दोस्त रहे हैं, हम साथ-साथ पढ़े हैं। बड़े अधिकारियों को मित्र बताने वाले और कहने वाले बहुत हैं। उनके बारे में वे स्वयं परिचय निकालते हैं पर कोई सामान्य स्थिति का मित्र है तो.....? सामान्य व्यक्ति के साथ दोस्ती निभाना कठिन होता है पर श्रीकृष्ण ने सुदामा के साथ दोस्ती निभाई वह आपको ध्यान में है, मुझे कहने की जरूरत नहीं।

मुझे एक दृष्टान्त याद आ रहा है। गाँव के एक साधारण व्यक्ति ने अपने बेटे को पढ़ाया-लिखाया और योग्य बनाया। बच्चा वकील बन गया। शहर में रहकर वकालात करने लगा। शहर में उसने मकान बनवा लिया।

गाँव के लोग कोर्ट-कचहरी के काम से शहर आते तो वकील साहब को कोर्ट में जिरह करते देखते। गाँव में वकील साहब का बड़ा नाम था। वकील साहब खाते-कमाते और अपने बच्चों को पढ़ाते, किन्तु माता-पिता को खर्चे के लिए कुछ भेजने का नाम तक नहीं लेते। पिताजी की हालत दिन-ब-दिन कमजोर होती जा रही थी। एक दिन पिता को मन में विचार आया कि बेटा शायद काम में व्यस्त है इसलिए गाँव आने का समय नहीं मिल रहा होगा। मैं ही चलकर उससे मिल आता हूँ। पिता शहर पहुँचा। पूछते-पूछते घर तक पहुँच गया तो ज्ञात हुआ कि बेटा तो कोर्ट गया हुआ है। कोर्ट तक पहुंच गया। कोर्ट में बहस चल रही थी। वह कोर्ट में पहुँच कर बार-बार अन्दर की ओर झांक रहा है। वकील साहब जिरह कर रहे थे। जज साहब ने देखा दरवाजे पर खड़ा व्यक्ति बार-बार अन्दर की ओर झांकता है। अनुभवी जज साहब ने अनुमान लगाया कि शायद यह व्यक्ति वकील साहब से मिलना चाहता है। जज साहब ने वकील की ओर संकेत कर कहा- आपका बाहर कोई इंतजार कर रहा है, जाकर मिल लीजिए। जज साहब की आज्ञा मानने के अलावा अन्य कोई विकल्प नहीं था। वकील साहब बाहर आए, देखा और तुरन्त चेम्बर में उपस्थित होकर जज साहब से कहा- "वह आदमी मेरे गाँव का है।" गाँव का आदमी इतनी देर तक तो शांत रहा पर अपने बेटे से यह सुनकर कि "वह गाँव का आदमी है", उससे रहा नहीं गया। वह ग्रामीण जरूर था पर स्वाभिमानी था। वह बोला- "जज साहब! मैं इसके गाँव का नहीं, इसकी माँ का आदमी हूँ।"

दोस्त कैसा होता है इस संदर्भ में मैं अपनी बात कह रहा था। वासुदेव श्रीकृष्ण मित्र-धर्म के पालक रहे हैं। मित्र की मित्रता कैसी रखी जाती है? आज तो कई ऐसे भी है जो बाप को बाप कहने में शर्म का अनुभव करते हैं वे मित्रता की बात कैसे निभा सकते हैं? सुदामा श्रीकृष्ण से मिलने

गए। खूब प्रेम से मिले। नहलाया, वस्त्राभूषण पहनाए, अपने बराबर स्थान पर बैठाया, खूब स्वागत-सत्कार किया। वासुदेव श्रीकृष्ण ने सुदामा को जाते समय भले ही कुछ नहीं दिया, किन्तु उसकी अनुपस्थिति में सुदामा की झौंपड़ी राजमहल जैसी बना दी।

वासुदेव श्रीकृष्ण के अनेकानेक गुण हैं, सारे गुणों का वर्णन संभव नहीं है। पर वे महापुरुष थे जिन्होंने शासन की सेवा की। सेवा में न जाति देखी, न अपना-पराया देखा जाता। ऊँच-नीच का भेद किए बिना नगर में घोषणा करवा दी कि "जो कोई भगवान् के चरणों में दीक्षा लेगा, मैं उस परिवार की सभी तरह से संभाल करूँगा। छोटा-बड़ा जो भी दीक्षित होगा, मैं उस परिवार का पालन करूँगा।" शासन-सेवा के उच्च आदर्श के कारण वासुदेव श्रीकृष्ण ने तीर्थंकर नाम-कर्म का उपार्जन कर लिया।[3]

आप भी सेवा करते हैं। सेवा कैसे करते हैं? किस उद्देश्य से सेवा होती है? आप जानते ही हैं, मुझे कहने की जरूरत नहीं। एक स्वार्थभाव से सेवा करता है, एक निःस्वार्थ भाव से। आप तालाब या कुए पर स्नान करते हैं, कपड़े पहन रहे हैं इस बीच तालाब के किनारे कोई बच्चा पैर फिसलने के कारण तालाब में गिर जाये और वह डूबने लगे और आप देखते हैं कि बच्चा छटपटा रहा है तो उस समय आप न बच्चे की जाति पूछते हैं, न ही यह जानने का प्रयास करते हैं कि बच्चा किनका है। आप डूबते बच्चे को बचाते हैं। कपड़े पहनना छोड़कर पानी में कूद जाते हैं। बच्चे को निकालते हैं। आप उस समय यह नहीं देखते कि वह बच्चा दुश्मन का है या मित्र का है। ऐसी निःस्वार्थ भाव से की गई सेवा, सेवा है।

आचार्य भगवन्त (पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमल जी महाराज) फरमाते थे कि आप गृहस्थों के घर पर मेहमान आते हैं, कभी संत आते हैं तो कभी याचक भी आते हैं। आप क्या करते हैं? क्या आप घर के दरवाजे बंद करके

बैठते हैं? मेहमान आएगा तो बंद दरवाजा खुलवाएगा। माँगने वाला आएगा तो आवाज देकर याचना करेगा। संत दरवाजा बंद देखकर न आवाज लगाएगा और न ही कुछ प्रतिक्रिया करेगा। संत दरवाजा नहीं खुलवाता है और लौट जाता है, आप निर्जरा के लाभ से वंचित रह जाते हैं। आप गृहस्थ हैं। आपने पाया है तो दें। देने में संकोच करने की जरूरत नहीं है। एक दाना हजार दाने लेकर आता है। काश्तकार खेत में अनाज के दाने बोता है। एक-एक दाना कई-कई गुना बढ़ता है। दिया हुआ कभी निष्फल नहीं जाता। वासुदेव श्रीकृष्ण ने दिया, मुक्त हस्त से दिया। आप भी आर्य क्षेत्र और उत्तम कुल में जन्मे हैं, पुण्यवानी से बहुत कुछ पाया है तो आप देकर लाभ लें। भावना से दिया गया दान फलदायी होता है। वासुदेव श्रीकृष्ण के अनेकानेक गुणों में से कोई एक भी गुण-ग्रहण करने का प्रयास करेंगे तो आपका यह प्रवचन सुनना सार्थक होगा, इसी मंगल भावना के साथ.....

जोधपुर

22 अगस्त, 2011

संदर्भ

1. कंस की पत्नी जीवयशा ने जब सुना कि उसके प्रति को कृष्ण ने मार डाला है तो वह आपे से बाहर हो गई। उसने दाँत पीसते हुए कहा- "मैं यादव कुल का नाश कर दूँगी। मेरे पति की हत्या की गई है।" वह वहाँ से भाग कर अपने पिता प्रतिवासुदेव जरासंध के पास पहुँची और उसे अपनी करुण कहानी सुनाई। जरासंध ने कहा- "अब तू चिन्ता मत कर, मैं तेरे शत्रु का विनाश कर दूँगा।" जरासंध ने सोमक राजा को बुलाया और उसके द्वारा समुद्रविजय को कहलवाया कि वे बलराम और श्रीकृष्ण को उसे सौंप दे, नहीं तो उसे जरासंध का कोपभाजन बनना पड़ेगा। सोमक ने समुद्रविजय को जरासंध का संदेश दिया। समुद्रविजय ने उन्हें कहा कि- "कंस ने बलराम और श्रीकृष्ण के निरपराध भाईयों की हत्या की थी, अतः भाईयों के अपराधी कंस को यदि मारा है तो इसमें मारने वाले बलराम

और श्रीकृष्ण का क्या अपराध है? ये दोनों निर्दोष हैं।''

समुद्रविजय ने क्रोष्टुकी निमितज्ञ को बुलाकर पूछा कि जरासंध के साथ जो विग्रह प्रारम्भ हुआ है उसका परिणाम क्या आयेगा? निमितज्ञ ने कहा कि आप सभी का यहाँ रहना हितावह नहीं है, अतः आप पश्चिम दिशा के समुद्र की ओर जाओ। वहाँ जाते ही आपके शत्रुओं का नाश होगा। वहीं पर एक नगरी बसाकर रहना जहाँ आपका कोई बाल भी बांका नहीं कर सकेगा। निमितज्ञ के कहने से समुद्रविजय कृष्ण और बलराम के साथ विन्ध्याचल की ओर चले गये।

समाचार पाकर जरासंध क्रोध से तिलमिला उठा। उसने अपने पुत्र कालकुमार को विराट् सेना के साथ रवाना किया। कालकुमार ने प्रतिज्ञा की कि यादव भले ही कहीं पर छिपे हो या अग्नि में प्रवेश कर गये हों तो भी वह उन्हें पकड़ कर मार देगा। वह सेना लेकर विन्ध्याचल की ओर चल पड़ा। रास्तें में कुछ चिताएँ जल रही थीं। कालकुमार के पूछने पर एक वृद्धा ने आंसू बहाते हुए उससे कहा कि बलराम और श्रीकृष्ण इन चिताओं में जलकर मर गये हैं। कालकुमार उन्हें निकाल कर मारने के लिए अग्नि में कूद पड़ा। कालकुमार अग्नि में जल गया। सेनापति के अभाव में सेना भी लौट गई। यादव दल ने जब यह सुना तो वे बहुत प्रसन्न हुए। उसी वक्त वहाँ एक अतिमुक्त नामक चारण मुनि आये।

समुद्रविजय ने मुनि से पूछा- ''भगवन्! इस विपत्ति में हमारा क्या होगा?'' मुनि ने कहा- ''राजन! तुम्हें भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे पुत्र अरिष्टनेमि बाइसवें तीर्थंकर होंगे। बलराम और श्रीकृष्ण क्रमशः बलदेव और वासुदेव हैं। वे द्वारिका नगरी बसायेंगे और जरासंध जो प्रतिवासुदेव है उसका वध कर तीन खण्ड के अधिपति होंगे।

2. वासुदेव श्री कृष्ण की माँ देवकी एक बार दो मुनियों को देखकर फूली नहीं समाई। केशरिया मोदकों से भक्तिपूर्वक उन्हें प्रतिलाभित किया। मुनि चले गये। देवकी बैठ भी नहीं पाई थी कि दो मुनि और पारणे हेतु आए। देवकी ने देखा कि ये दो मुनि बिल्कुल वैसे ही हैं, जैसे पहले दो मुनि थे। संशय होने पर भी देवकी ने इन दोनों मुनियों को भक्तिपूर्वक मोदकों से प्रतिलाभित किया। थोड़ी ही देर में दो और वैसे के वैसे मुनि आये। देवकी ने उन्हें भी मोदकों से प्रतिलाभित किया, लेकिन अपने संशय का निवारण करने हेतु पूछ ही लिया कि- ''आप पुनः पुनः यहाँ भिक्षा हेतु आ रहे हैं, क्या इतनी बड़ी द्वारिका नगरी में अन्यत्र आपको शुद्ध भोजन नहीं मिला?'' मुनियों ने शान्त स्वर में उत्तर दिया- ''हम छह भाई है, बिल्कुल एक से।

आज हम दो-दो के संघाड़े में छट्ठ तप के पारणे हेतु निकले थे। सम्भवतः हमसे पहले वे लोग आये हों।" देवकी की शंका का समाधान हो गया।

देवकी की एक शंका मिटी तो दूसरी ने आ घेरा। उसे अतिमुक्तक मुनि की भविष्यवाणी की स्मृति हो आई जब उन्होंने कहा था- "देवकी तेरे आठ पुत्र होंगे और सभी जीवित रहेंगे।" छह पुत्रों को तो कंस ने मार दिया और सातवाँ पुत्र कृष्ण जीवित है। देवकी ने सोचा कि "इन छह मुनियों पर मेरा वात्सल्य क्यों उमड़ रहा है। इनसे मेरा क्या सम्बन्ध है?" इसका समाधान पाने देवकी भगवान् अरिष्टनेमी के समवसरण में पहुँच गई। भगवान् ने देवकी को उसकी शंका के बारे में बताया। देवकी ने कहा- "हाँ प्रभु! मैं यही पूछने आई हूँ कि मुनि अतिमुक्तक की वाणी मिथ्या कैसे हो गई?" प्रभु ने कहा- "मुनि के वचन मिथ्या नहीं हुए हैं। अब तक तुम्हारे सात पुत्र जीवित है।

भगवान् ने इसका रहस्योद्घाटन करते हुए कहा- "भद्दिलपुर में नाग गाथापति रहता है, उसकी स्वी का नाम सुलसा है। सुलसा गाथापत्नी को पहले किसी निमितज्ञ ने कहा था कि वह मृत बालकों को जन्म देने वाली होगी। तत्पश्चात् सुलसा हरिणगमैषी देव की भक्त बन गई। इससे देव प्रसन्न हुआ। देव ने सुलसा पर अनुकम्पा करके सुलसा को और तुम्हें समकाल में ऋतुमती करता। तुम दोनों समकाल में गर्भधारण करती और समकाल में ही बालक को जन्म देती। सुलसा मरे हुए बालक को जन्म देती। हरिणगमैषी देव सुलसा पर अनुकम्पा करके मृत बालक को तुम्हारे पास लाता और तुम्हारे बालक को सुलसा के पास जाकर रख देता। अतः हे देवकी! सुलसा के जो पुत्र मुनि बनकर तुम्हारे पास आये वे वस्तुतः तुम्हारें ही पुत्र है।" देवकी का संशय मिट गया।

देवकी ने छहों मुनि पुत्रों की वंदना की। उन अनगारों को देखकर पुत्र प्रेम के कारण उसके स्तनों से दूध झरने लगा। तत्पश्चात् वहाँ से निकलकर देवकी का चिन्तन चला- "मैंने समान आकृति वाले सात पुत्रों को जन्म दिया, पर एक की भी बाल्यक्रीड़ा का आनन्द अनुभव नहीं किया। कृष्ण वासुदेव भी छह-छह मास के अनन्तर चरण-वन्दन के लिए मेरे पास आता है, अतः मैं मानती हूँ कि वे माताएँ धन्य हैं जो अपने पुत्रों को स्तनपान कराती है, गोद में बिठाती है और उनसे बात करती है। मैं अधन्य और पुण्यहीन हूँ कि मैंने एक भी पुत्र की बालक्रीड़ा नहीं देखी।" इस तरह देवकी आर्त्तध्यान करने लगी।

इसके बाद कृष्ण चरण-वन्दन को आये और माता को उदास देखकर उससे

उसका कारण पूछा। देवकी ने सारा वृतान्त कृष्ण को सुनाया। माता की बात सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा- "माते! आप उदास न हो। मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा कि मेरे एक सहोदर छोटा भाई हो। माता को इस तरह आश्वस्त करने के बाद श्रीकृष्ण पौषधशाला में गये। अष्टम् भक्त तप (तेला) किया और हरिणगमैषी देव की आराधना की। देव श्रीकृष्ण के पास पहुँचा और पूछा- "तुम्हारा क्या इष्ट कार्य करूँ?" कृष्ण ने कहा- "हे देवानुप्रिय! मेरे एक सहोदर लघु भ्राता का जन्म हो, यह मेरी इच्छा है।" देव ने कहा- "देवलोक का एक देव आयुष्य पूर्ण कर तुम्हारें छोटे भाई के रूप में जन्म लेगा।" कृष्ण ने ये समाचार अपनी माता को सुनाये तो वह अति प्रसन्न हुई। नवमास के गर्भ काल के पश्चात् देवकी ने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम गजसुकुमार रखा गया। गजसुकुमार बड़े होने पर भगवान् से दीक्षित हो गये।

3. कृष्ण ने भगवान् अरिष्टनेमि से पृच्छा की- "भगवन् इस द्वारिका नगरी का विनाश किस कारण से होगा?" भगवान् ने कहा- "द्वारिका नगरी का विनाश मदिरा, अग्नि और द्वैपायन ऋषि के कोप के कारण होगा।" यह सुनकर कृष्ण के मन में आया कि वे जालि, मयालि आदि सभी धन्य हैं जो भगवान् के पास दीक्षित हो गये हैं। मैं पुण्यहीन हूँ कि दीक्षित होने में असमर्थ हूँ। कृष्ण आर्त्तध्यान में डूब गये। तब भगवान् ने उनको कहा- "हे कृष्ण! वासुदेव कभी दीक्षा लेते नहीं है और भविष्य में भी लेंगे नहीं, क्योंकि पूर्व भव में वे निदानकृत होते हैं।" तब उन्होंने अपने बारे में भगवान् से भविष्य जाना कि आने वाली उत्सर्पिणी काल में वे बारहवें तीर्थंकर 'अमम' बनेंगे। फिर उन्होंने राजसेवकों से घोषणा करवा दी कि इस द्वारिका नगरी का सुरा, अग्नि एवं द्वैपायन के कोप से विनाश होगा, अतः जिसकी इच्छा हो, चाहे राजा हो या अन्य वे अगर भगवान् अरिष्टनेमि के चरणों में दीक्षित होना चाहें तो उनके आश्रित सभी कुटुम्बीजनों को श्रीकृष्ण यथायोग्य व्यवस्था करेगे और बड़े ही सत्कार के साथ उनका दीक्षा महोत्सव सम्पन्न करेंगे। श्रीकृष्ण की इस उदार घोषणा से उत्साहित होकर अनेक राजाओं, रानियों एवं नागरिकों ने भगवान् के पास मुनिधर्म स्वीकार किया।

सार्वकालिक है पर्वाधिराज पर्युषण पर्व

स्व-स्वरूप में रमण करने वाले सिद्ध भगवन्त, ज्ञान-गुण को साकार करने वाले अरिहन्त भगवन्त और ज्ञान की साधना को प्रधानता देकर संयम की आराधना करने वाले संत भगवन्तों के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन!

बन्धुओं!

तीर्थंकर भगवान् महावीर की आदेय-अनमोल वाणी में 'पर्व' शब्द का अर्थ करते हुए शास्त्रकारों ने कहा है- पूरणात् पर्वः। अर्थात् जो आत्मा को सद्ज्ञान से परिपूर्ण करे, उसे पर्व कहते हैं। लोकभाषा में जब कभी पर्व का वर्णन चलता है तो लोग खाने-पीने, सजने-संवरने, मेले-खेले, आमोद-प्रमोद, मिलने-जुलने को पर्व कहते हैं। सांसारिक लोग पर्व का सांसारिक अर्थ करते हैं जबकि वीतराग भगवन्तों ने पर्व का आध्यात्मिक अर्थ किया है। पर्व का अर्थ आत्मा को पवित्र करना है। सांसारिक लोग शरीर की शोभा की बात कहेंगे तो आध्यात्मिक लोग आत्मा की शोभा को प्रधानता देंगे।

आज का पर्व, स्थान विशेष को लेकर नहीं है। आज के पर्व का संबंध न पावापुरी से है, न गया से। काशी, मथुरा व शत्रुंजय से भी आज के पर्व का संबंध नहीं है। व्यक्ति विशेष को लेकर भी आज के पर्व का संबंध नहीं है। न महावीर से, न राम से, न कृष्ण से ही पर्युषण पर्व का कोई संबंध है। माताजी, भैरवजी, पितरजी या अन्य नामों से भी आज का पर्व संबंधित

नहीं है। इस पर्व का किसी घटना विशेष से भी संबंध नहीं है। दीपावली, कृष्ण जन्माष्टमी, रामनवमी, रक्षाबंधन, महावीर जन्म कल्याणक के साथ भी पर्युषण पर्व संबंधित नहीं है। यह पर्व स्थान, व्यक्ति, घटना को लेकर नहीं है और न ही किसी भय से मनाने से संबंधित है। शीतलामाता या काली की बात कहिये, उनके पर्व मनाने की भावना नहीं है, पर भय से मनाते हैं। नाग पंचमी, गोगा नवमी जैसे पर्व भय से मनाए जाते हैं। कुछ पर्व प्रलोभन से मनाए जाते हैं। लक्ष्मी पूजा, गणगौर, माताजी के नौरते (नवरात्रि) मनाने के पीछे प्रलोभन हेतु हो सकता है। आप नोट कर लीजिए- व्यक्तिपरक, स्थान परक या घटना विशेष को लेकर जितने पर्व हैं वे सार्वजनिक, सार्वभौमिक और सार्वकालिक पर्व नहीं होते।

एक पर्व को आप मनाते हैं तो दूसरी बिरादरी के लोग उस पर्व को नहीं मानते। हिन्दुओं के पर्व अलग हैं तो मुस्लिमों के अलग। ईसाई-पारसी अपने-अपने पर्व मनाते हैं, दूसरों के नहीं। एक घटना सबके लिए मान्य नहीं होती। राम को मानने वाले महावीर को मानेंगे ही, यह आवश्यक नहीं है। कृष्ण को मानने वाले जरूरी नहीं कि वे बौद्ध को मानें। कदाचित् आर्य और हिन्दू किसी धर्म को मान लें तो मुसलमान उस धर्म को नहीं मानेंगे। तीर्थ भी सबके लिए एक हैं, ऐसी बात नहीं है।

पर्वाधिराज पर्युषण पर्व एक ऐसा पर्व है जो सभी लोगों के लिए है। चाहे हिन्दू हों, मुसलमान हों, सिक्ख हों, ईसाई हों, जैन हों, बौद्ध हों, चाहे जिस किसी धर्म को मानने वाले क्यों न हों वे सब मानते हैं कि ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप की साधना-आराधना-उपासना करने वाले मुक्ति में जा सकते हैं, जाते हैं और जाएँगे। क्षेत्र चाहे जो हो, साधना करने वाला सिद्धि प्राप्त कर सकता है। गाँव-नगर या महानगर हो, इस प्रदेश का हो या उस प्रदेश का, इस देश का हो या उस देश का, पर्वत-नदी-समुद्र-जंगल हर क्षेत्र से

मुक्ति हो सकती है। साधना-आराधना करने वाला हर क्षेत्र से मुक्त हो सकता है। यह सार्वभौमिक है।

पर्वाधिराज पर्युषण पर्व सार्वकालिक है। कोई भी व्यक्ति क्यों न हो, हर जाति और कुल से, हर पंथ और मत से मुक्ति हो सकती है, बशर्ते कि वह साधना-आराधना करे।

नाणं च दसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
एस मग्गुत्ति पण्णत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं।।

-उत्तराध्ययन सूत्र 28/2

तीर्थंकर भगवन्तों ने ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप को मोक्षमार्ग कहा है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप इन चारों को मिलाकर साधना करना मोक्षमार्ग की साधना है। दान, शील, तप और भावना को भी मोक्षमार्ग कहा है। अहिंसा-सत्य-शील से भी मुक्ति हो सकती है।

आज पर्वाधिराज पर्युषण पर्व का शुभारम्भ है। पर्व क्या है? परि उपशम, एक अर्थ है अर्थात् नजदीक बैठना। उपशमना या उपासना नजदीक बैठने के अर्थ में प्रयुक्त है। जिसकी, जिसके ऊपर श्रद्धा है, वह उनके पास बैठता है। "अप्पा सो परमप्पा" आत्मा परमात्मा है। उपासना करें, पर किनकी? नजदीक बैठें, किनके? अपने आत्मज्ञान को जाने कैसे? आप नाम लेते हैं, राम, कृष्ण, महावीर, ब्रह्मा, विष्णु, महेश का। दुनियाँ में अनेकानेक नाम प्रचलित हैं, पंथ प्रचलित हैं, धर्म प्रचलित हैं। परन्तु आपकी जिस पर श्रद्धा है उसके समीप बैठें, पास बैठें, नजदीक रहें। नजदीक बैठें या रहें का मतलब है स्वयं के भीतर बैठने की कोशिश। आप देखते हैं- यह हाथ है, यह पैर है, यह सिर है, यह अंगुली है, यह नाखून है। शरीर का एक-एक अंग दिखाई दे रहा है पर आत्मा कहाँ है, वह क्यों नहीं दिखाई देती? आत्मा दिखाई देती है तो बताओ? हाथ-पैर-आँख-नाक की तरह आत्मा बताई नहीं जा सकती, परन्तु आत्मा है। आत्मा क्या है? तो कहा- "उपयोगो लक्षणं

जीवः'' उपयोग या ज्ञान आत्मा का लक्षण है। पत्तों के हिलने से आपको अनुभव होता है कि हवा चल रही है। एक छोटे से छिद्र में से होकर सूर्य का प्रकाश आ रहा है, तो बारीक-बारीक तंतुओं से जान सकते हैं कि रोशनी है। हवा है, रोशनी है, मीठा है, खारा है, आप जानते हैं, अनुभव करते हैं। इसी प्रकार आत्मा भी है। जो जानने वाला है, अनुभव करने वाला है, वह आत्मा ही तो है। जहाँ आत्मा नहीं, वहाँ ज्ञान नहीं।

आत्मा है तो आत्मा का लक्षण क्या है? आत्मा का लक्षण है- चेतना। उपयोग लक्षण है। ज्ञान, चेतना या उपयोग आत्मा में पाए जाते हैं। जिस शरीर में आत्मा नहीं, वह शरीर मृत है, उपयोगशून्य है। मृत शरीर को काटो, जलाओ, चाहे जो करो वह महसूस नहीं करता। क्योंकि वह कलेवर है, आत्मदेव नहीं। उपयोग क्या? ज्ञान से जो ज्ञात होता है उस पर अमल करना उपयोग है। ज्ञान कहाँ है? जहाँ ज्ञानी है। आप यहाँ कितने आत्मवान बैठे हैं, सब ज्ञानी हैं। ज्ञान होता है- कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य को, धर्म-अधर्म को, हेय-उपादेय को जानना, मानना और समझना। जो हेय को छोड़कर उपादेय ग्रहण करे, समझो वह ज्ञानी है। अधर्म को छोड़कर धर्म को ग्रहण करना ज्ञान है। अकर्त्तव्य को छोड़ कर्त्तव्य पथ पर चलना ज्ञान है।

आचार्य भगवन्त (पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमल जी महाराज) विचरते-विचरते पीपाड़-भोपालगढ़ के बीच रतकूड़िया गाँव पधारे। रतकूड़िया गाँव में पढ़े-लिखे लोगों की संख्या अन्य ग्रामों के मुकाबले अधिक है। पढ़े हुए तो राम भी थे और रावण भी था। कृष्ण और कंस दोनों पढ़े-लिखे थे। गाँधी और गोड़से कहो या जवाहर या जिन्ना कहो सब पढ़े हुए थे। आप पढ़ा-लिखा किसे मानते हैं? आपकी नजर में ज्ञानी कौन? जो हेय छोड़ता है, अधर्म से बचता है, कर्त्तव्य का पालन करता है वह ज्ञानी है। जो बात, पाप से विरति कराने में सहायक बने समझ लो वह ज्ञान है। शास्त्र कह रहा है-

"नाणस्स फलं विरतिः" अर्थात् ज्ञान का फल है विरक्ति।

कुमार्ग छोड़ सुमार्ग को ग्रहण करे, वह ज्ञानी है। अधर्म छोड़ धर्म ग्रहण करे, वह ज्ञानी है। पढ़ा-लिखा होना मात्र ज्ञानी का लक्षण नहीं है। ऐसे-ऐसे लोग भी मिल जाएँगे जो पुस्तकें पढ़ते ही नहीं, चाटते हैं। आप जिन्हें किताब का कीड़ा कह सकते हैं। जब भी देखो हाथ में पोथी मिलेगी। दिन भर पढ़ते हैं, सुनाते हैं, भाषण करते हैं। हर वक्त पुस्तक हाथ में रहती है। रात-दिन पढ़ते हैं पर सब्जी में नमक ज्यादा आ जाय तो उबल पड़ते हैं। उस समय क्या वह शांत और सहज रहता है या दो-चार बात सुनाता है? शांत रहे तो ठीक, अन्यथा क्रोध करके आवेश में कहना-सुनाना-ताड़ना-प्रताड़ना करना ज्ञान और ज्ञानी का लक्षण नहीं है। उसका भगवती सूत्र के थोकड़े कंठस्थ करना भी क्या अर्थ रखता है? मनमाफिक चीज खाने में नहीं आई तो आचारांग का आचार बनाते देरी नहीं लगती। आचारांग में आया है- "जे एगं जाणति से सव्वं जाणति, जे सव्वं जाणति से एगं जाणति।" (आ.सू.1/3/4/2) अर्थात् जो एक को जानता है वह सबको जानता है और जो सबको जानता है वह एक को जानता है। एक को जानने का अर्थ है स्वयं की आत्मा को जानना और दूसरों को जानना यानी दूसरों की आत्मा को जानना भी स्वयं को जानना है, क्योंकि स्वरूप दृष्टि से सभी आत्माएँ एक जैसी है। इसे यों भी कह सकते हैं कि जो ज्ञानी एक द्रव्य तथा उसकी समस्त पर्यायों को पूर्ण रूप से जान जाता है, वह समस्त द्रव्यों और उनकी पर्यायों को भी जान लेता है, क्योंकि समस्त वस्तुओं के ज्ञान के बिना अतीत-अनागत पर्यायों सहित एक द्रव्य का पूर्ण ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिए जो ज्ञानी है वह हेय को भी जानता है और उपादेय को भी जानता है और तदनुरूप उसे जीवन में उतारता है।

जैसाकि मैंने पहले कहा कि ज्ञानी वह है जो हेय को छोड़ता है और

उपादेय को अपनाता है। केवल पुस्तक का ज्ञान, ज्ञान नहीं है जब तक कि वह जीवन में नहीं उतरे। क्रोध हेय है इसलिए जब किसी ज्ञानी को क्रोध के वशीभूत देखें तो उसके ज्ञान पर आपको शंका नहीं होगी क्या? पढ़ने-लिखने के बाद भी कोई भक्ष्य-अभक्ष्य का उपयोग न रखे तो वह पढ़ा-लिखा कैसा? नक्शे की नदी व असली नदी में जो फर्क है वह केवल पढ़े-लिखे में और ज्ञानी में फर्क है। इसलिए ज्ञानी कहलाने वाला यदि क्रोध करे, अहं करे, मान और माया में मस्त रहे तो कहना होगा वह न तो ज्ञानी है और न ही उसमें ज्ञान है। मैं पूछता हूँ- "आप कहाँ रहते हैं?" आप कहेंगे- "घर में।" क्या नक्शे के घर में या ईंट-पत्थर के घर में। पढ़े-लिखे का ज्ञान जो हेय और उपादेय का फर्क नहीं करता वह तो मानो नक्शे के घर में ही रहता है, जहाँ न शौचालय है, न स्नानघर और न ही रसोई या सोने का कक्ष। जैसे कागज का शेर डराता नहीं, इसी तरह अज्ञानी का ज्ञान भी तिराता नहीं है।

गज से दुकान पर कपड़ा लगातार नापा जाता है। हजारों गज कपड़ा नापने के बाद भी वह गज नंगा ही रहता है। तराजू से अनाज तोला जाता है लेकिन तराजू के पास अनाज का एक दाना भी नहीं रहता। इसी तरह चम्मच से कई तरह के व्यंजन खाते हैं पर क्या चम्मच को कोई स्वाद आया? बस, यही स्थिति उस व्यक्ति की है जिसने शास्त्र तो पढ़ लिये, उन्हें कंठस्थ भी कर लिया लेकिन उन्हें जीवन में नहीं उतारा।

"खामेमि सव्वे जीवा" आप यह वाक्य बोलते हैं। वाक्य में अक्षरों का ज्ञान है, पर वह क्षमायाचना का ज्ञान तब तक तारने वाला नहीं होता जब तक कि उस क्षमा के ज्ञान को आचरण में नहीं उतारा जाये। शास्त्र में रहा ज्ञान, सन्दूक में रहे कपड़े, रसोई में रहे खाद्य पदार्थ के बर्तन, किस काम के? शास्त्र में रहा ज्ञान दुर्गति नहीं टाल सकता। सन्दूक में रहे वस्त्रों से सर्दी दूर नहीं होती। रसोई के बर्तनों से भूख शान्त नहीं होती। कई हैं जिन्हें पाँच-दस

शास्त्र याद हैं, कुछ तो ऐसे भी है जिन्होंने बत्तीस शास्त्रों का पारायण कर लिया है। शास्त्र पढ़ लेना, कण्ठस्थ कर लेना तभी सार्थक है जबकि ज्ञान को आचरण में ढाला जाय। ज्ञान आचरण में नहीं तो वह तारने वाला नहीं है।

ज्ञान आचरण में आए तो ज्ञान है। समिति-गुप्ति का ज्ञान, ज्ञान के लिए नहीं आचरण के लिए है। आचरण वाला भले ही कम ज्ञानी है तो भी वह मुक्ति में जा सकता है। अन्यथा चौदह पूर्व का ज्ञान यदि आचरण में नहीं आया तो वह नरक में भी जा सकता है।

आज एक पाठ लें- हम ज्ञानी बनेंगे। जो कुछ सीखा है उसे जीवन में उतारेंगे। आपने केवल मात्र इतना सीख लिया तो बेड़ा पार हो सकता है। तीन अक्षर का ज्ञान चौदह पूर्व की रचना करने में सहायक हो सकता है और चौदह पूर्व का ज्ञान आचरण में नहीं आया तो वह तिराने के बजाय डुबाने का काम कर सकता है।

ज्ञान, ज्ञान में अन्तर है। एक ज्ञान आचरण में उतरता है, एक ज्ञान माथे का बोझ बनता है। जो ज्ञान, जीवन-व्यवहार में काम आता है वह सही ज्ञान है अन्यथा शब्दों का ज्ञान सिर का बोझ है। आप-हम सब छद्मस्थ अवस्था में हैं इसलिए कहना होगा- हम अभी विद्यार्थी है, ज्ञानार्थी हैं। ज्ञान चाहे अवधिज्ञान अथवा मनःपर्यव ज्ञान हो, जब तक आचरण में नहीं उतरता तब तक वह सम्यग्ज्ञान की कसौटी पर खरा नहीं है। अज्ञानी खाते-खाते कहता है- इसमें मिर्ची ज्यादा है, इसमें नमक है ही नहीं, यह रोटी जली हुई है, यह कच्ची है। कोई-न-कोई कमी निकालना जिसके स्वभाव में है, उसे ज्ञानी कैसे कहना? सम्यक्त्व की भूमिका है- सम, संवेग, निर्वेग, अनुकम्पा और आस्था। हर स्थिति में समता रख सकें, तो समझना चाहिए कि समता रखने वाला सम्यग्दर्शन के नजदीक है। यदि बात-बात में उखड़ रहे हैं, बात सुनने के साथ सिर पर सल पड़ रहे हैं, दूसरों की सुनना नहीं चाहते हैं तो

समझो ज्ञान के क्षेत्र से वह बहुत दूर है।

आप ज्ञानी बनना चाहते हैं तो अलग-अलग भाषाएँ, ज्ञान-विज्ञान और बोल-थोकड़े जानने-सीखने के साथ उन्हें जीवन में उतारें। कैसे बोलें, कैसे बैठें, कैसा व्यवहार करें, मात्र इतना-सा ज्ञान जीवन-व्यवहार में चरितार्थ हो जाय तो वह मुक्ति के नजदीक पहुँच सकता है। आत्मज्ञान होना आवश्यक है। आत्मज्ञान करें, आत्मज्ञान का आदर करें। आपने पर्वाधिराज पर्युषण पर्व के प्रथम दिन जो ज्ञान-दिवस है उस पर संक्षेप में कुछ बातें सुनी हैं। आप ज्ञान की बातें मात्र सुनकर न रहें, उन आदर्श वाक्यों को आचरण में उतारें। आचरण का ज्ञान, सच्चा ज्ञान है और आत्म-विकास में ज्ञान के साथ क्रिया आवश्यक हैं आप आत्म-विकास में उन्नति करें, आगे बढ़े, यही मंगल मनीषा है।

जोधपुर
25 अगस्त, 2011

चारित्र में चरण बढ़ाना हो तो व्रत-नियम लीजिए

सूर्य की तरह प्राणीमात्र के परम उपकारी सिद्ध भगवन्त, यथाख्यात चारित्र को धारण करने वाले अरिहन्त भगवन्त और चारित्र में चरण बढ़ाने वाले संत-भगवन्तों के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन!

बन्धुओं!

तीर्थंकर भगवान् महावीर की अनमोल-अनूठी वाणी अन्तगड़ सूत्र के माध्यम से कृत-कृत्य बनने वाले महापुरुषों का वर्णन किया जा रहा है। उस मार्ग का प्रथम चरण ज्ञान है। ज्ञान के बिना क्रिया नहीं होगी। अज्ञानी जीव को 'भोला' कहा जाता है। शास्त्र कहता है-

नाणेण जाणइ भावे, दंसणेण य सद्दहे।
चरित्तेण निगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झइ।।

-उत्तरा. 28/35

अर्थात् ज्ञान से जीव भावों (पदार्थों या तत्त्वों) को जानता है, दर्शन से उन पर श्रद्धा करता है, चारित्र से आस्रवों का निरोध करता है और तप से आत्मा की विशुद्धि करता है।

कहते हैं- कहीं खंखार पड़ी हो और उस पर मक्खी बैठ जाए तो मक्खी की भूख मिटे या नहीं मिटे, स्वाद आए या नहीं, किन्तु श्लेष्म में यदि पंख लिपट गए तो मक्खी फँस जाएगी, उसका जीवन खतरे में पड़ जाएगा। जैसे मक्खी श्लेष्म में फँसती है, इसी तरह सुख की आशा और अपेक्षा से भोला या अज्ञानी जीव जब परिग्रह रूप श्लेष्म पर बैठता है तो उसे आनन्द

आए अथवा नहीं, परिग्रह रूपी श्लेष्म में बैठने वाला फँस सकता है, प्राण भी गंवा सकता है। इसलिए पहली आवश्यकता ज्ञान करने की कही गई है ताकि उसे पता चले कि वस्तु तत्त्व क्या है।

ज्ञान के पश्चात् श्रद्धा की बात कही गई है। ज्ञान मिलने के बाद जब तक श्रद्धा नहीं जगती, विश्वास नहीं होता तब तक चारित्र में चरण नहीं बढ़ सकते। ज्ञान का महत्त्व है, ऐसे ही श्रद्धा का भी महत्त्व है। ज्ञान होने के पश्चात् श्रद्धान् होगा तो ही चारित्र में चरण बढ़ सकेंगे। यह क्रम है। पानी से आप परिचित हैं। पानी कहीं डाल दें, वह अपना रास्ता स्वयं निकाल लेगा। पानी को रास्ता बताने की जरूरत नहीं, जिधर ढलान होगी, पानी उधर बह जायेगा। कमल सूर्य उगने के साथ खिल उठता है, घनघोर बादल हैं तब भी सूरजमुखी का का फूल सूरज की ओर स्वतः मुड़ जाता है। सुबह हो, दोपहर हो अथवा सांझ हो, सूरजमुखी या कमल सूर्य की तरफ दिखाई देगा। बादलों की वजह से सूर्य भले न दीखे, किन्तु सूरजमुखी को देखकर अंदाज हो जाएगा कि सूरज उगने के बाद वह कहाँ तक पहुँचा है? चन्द्रमा की ओर कुमुद होगा ही। शास्त्र कह रहा- सम्यग्दर्शनी कहीं भी रहे उसका ध्यान आत्मा में ही रहेगा। आत्मा, महात्मा, परमात्मा तीन शब्द हैं लेकिन तीनों के मूल स्वरूप में अन्तर नहीं है। क्रिया चाहे जो हो, हर क्रिया की निष्पत्ति में सम्यग्दर्शनी का एक रूप होगा कि कर्म से कैसे बचना?

हम अभी पर्युषण के विषय में चिन्तन कर रहे हैं। आचार्य भगवन्त (पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमल जी महाराज) ने पर्युषण की परिभाषा करते कहा- "विनश्यते पर दूषणं इति पर्युषणं।" दूषण कहते हैं दोषों को। आत्मा से जड़ पदार्थों के दूषण को दूर करें, नष्ट करें वह है पर्युषण। पर्व का एक और अर्थ है- चारों तरफ से आत्मा की रक्षा हो। दो भाई थे। वे माला जप रहे थे। एक माला का मणका इधर तो दूसरा उधर ले जा रहा था। हिन्दू माला जपते हैं

तो मुस्लिम भी माला फेरते हैं। हिन्दू मणका आगे सरकाता है, मुस्लिम पीछे फेरते हैं। हिन्दू और मुसलमान की क्रिया में फर्क है। एक-दूसरा एक-दूसरे से उल्टा करता है। पूछने वाले ने हिन्दू से पूछा तो मुसलमान से भी प्रश्न किया। हिन्दू बोला- मैं मणका आगे खिसकाता हूँ उसका कारण है मैं पंच परमेष्ठी के गुणों को जीवन में उतारता हूँ। मुस्लिम ने कहा- मैं मणके को पीछे ले जाता हूँ इसका मतलब है मेरे भीतर जितने भी दोष हैं, मैं उनको निकालता जाता हूँ।

श्रद्धावान् का लक्ष्य होता है अपनी आस्था पर दृढ रहना और आत्मगुणों का चिन्तन करना। माँ का चिन्तन बेटे के लिए उन्नति का और रोगी का चिन्तन निरोगता के लिए होता है। मतलब क्या? जिसकी जो चाहना है, उसे पाने का प्रयास होता है। मोक्ष-मार्ग में ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप की बात कही जा रही है। मोक्ष-मार्ग के इन सूत्रों पर हमारा विश्वास है और पाने का लक्ष्य है तो हमारा कहना और आपका सुनना ठीक है।

दर्शन के अनेक अर्थ हैं। दर्शन का अर्थ है- देखना। दर्शन का एक अर्थ है- सामान्य ज्ञान। दर्शन का दूसरा अर्थ है- तत्त्वबोध। दर्शन का तीसरा अर्थ है- सिद्धान्त जैसे जैन दर्शन, बौद्ध दर्शन, वैदिक दर्शन, सनातन दर्शन। इस तरह बहुत से सिद्धान्त हैं उनको दर्शन शब्द से अभिव्यक्त किया जा सकता है। कल दृष्टि पर बल दिया गया था। जब तक दृष्टि नहीं बदलती, सृष्टि बदलने वाली नहीं है। आप कई बार सुन चुके हैं। सौ बार नहीं, हजार बार सुन लीजिये उससे क्या होना है, जब तक वह जीवन में नहीं उतरे।

आचार्य भगवन्त (पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमल जी महाराज) कहा करते थे कि स्कूल में पढ़ने वाला विद्यार्थी छोटा है, छोटा ही रहे तो यह कैसे हो सकता है? बच्चा है तो वह समय के साथ बड़ा होता जाएगा, छोटा ही नहीं रहेगा। बच्चा स्कूल में पढ़ता है। कब तक? वह पढ़ाई पूरी होने तक और अर्जन करने की स्थिति में पहुँचने तक पढ़ता है। पिताजी पढ़ने के लिए

स्कूल में भेजते हैं, पढ़ाई का खर्चा करते हैं और यह मानकर चलते हैं कि पढ़-लिख जाने के बाद बेटा कमाएगा जरूर। बच्चा कमाने की बात सोचने के बजाय पढ़ते ही पढ़ते रहना चाहे तो कैसा रहेगा? जिन्दगी भर विद्यार्थी रहे तो कैसा रहेगा? पूज्य गुरुदेव ने जोधुपर में कहा- "बच्चा, बच्चा ही रहना चाहे, आप उसे गोद से नीचे उतारना ही नहीं चाहो तो वह क्या अच्छा लगेगा?" हाँ, बच्चा चार-छः माह का है तो गोद में ठीक है। साल भर का बच्च है तब भी गोद में उठाया जा सकता है पर वही बच्चा तीन-चार साल का हो गया तब उसे गोदी में नहीं रख सकते। पाँच, सात, आठ अथवा पन्द्रह वर्ष का हो गया तब भी क्या उसे गोदी में लोगे? सैनिक सेना में भर्ती हो जाय और जब युद्ध का ऐलान हो तो कहे- मुझे यहाँ नहीं रहना तो यह कैसे हो सकता है? आप मेरे उदाहरणों को समझ रहे हैं ना?

मुझे कहना है कि मोक्ष-मार्ग का राही केवल सुनना ही चाहे तो क्या होगा? आप कहोगे- महाराज! आप व्याख्यान सुनाओ, भजन-गीत सुनाओ, कहानी सुनाओ, शास्त्रवाणी सुनाओ। सब कुछ सुनाते ही सुनाते रहो तो क्या मात्र सुनते रहने से जीव का कल्याण हो जाएगा? आपने न जाने कितनी बार सुना, सुनने की इच्छा पहले थी और आज भी है, यह तो ठीक है पर करने की इच्छा कब जगेगी?

आज का दिन जानने और मानने तक का नहीं, आचरण करने का दिन है। मात्र ज्ञान से कुछ नहीं होने वाला है। ज्ञान के साथ क्रिया जरूरी है। लड्डू दुकान पर खूब पड़े हैं, थाल सजे हुए हैं, घर पर भी लड्डू हैं। आप लड्डू देखते रहो, क्या देखने भर से भूख मिट जाएगी? देखने से तृप्ति होगी? जैसे लड्डू देखने से तृप्ति नहीं होती, ऐसे ही ज्ञान की बातें केवल सुनने से कुछ होना-जाना नहीं है। सुनी हुई बात को जीवन में उतारना जरूरी है।

जिनेन्द्र भगवान् की यह अनमोल वाणी है, जिसकी दूसरी कोई

मिसाल नहीं। इस वाणी का एक-एक शब्द सुनकर वीतरागता के पथ पर चलने वाले लोग हुए हैं। वीतराग वाणी का एक-एक शब्द वैरागी बनाने वाला है। एक-एक श्लोक से ताले टूट सकते हैं, टूटे हैं। आपने सुना होगा- आचार्य श्री मानतुंग जी ने भक्तामर स्तोत्र की रचना की। एक-एक श्लोक की रचना करते-करते सब ताले खुल गए। एक शब्द सुना- "मैं अनाथ" था। राजा श्रेणिक ने एक मुनि से सुना तो लगा कि ऐसा वर्ण, रूप और कान्ति वाला अनाथ कैसे हो सकता है? जब मुनिवर से इस शब्द का रहस्य पता चला तो उसके ज्ञान चक्षु खुल गये। (उ.सू. 20 अ.-महानिर्ग्रन्थीय)

आपने कई बार सुना है। आप जानते हैं कि राजा परदेशी की मान्यता थी कि जीव अलग और शरीर अलग नहीं है। राजा परदेशी ने एक-के-बाद-एक अनेक प्रयोग करके देखा कि आत्मा है तो कहाँ है? शरीर और आत्मा अलग हो ही नहीं सकती। परदेशी को आत्म-तत्त्व का ज्ञान काफी समय पश्चात् हुआ। पहले ज्ञान नहीं था, दर्शन नहीं था इसलिए उसके चारित्र में चरण बढ़ ही नहीं सके।

जिसे रास्ते का ज्ञान नहीं हो तो व्यक्ति वह रास्ता किसी से पूछता है। बताने वाले पर विश्वास करके चलने वाला मंजिल पर पहुँचता है। कभी कोई नया ड्राइवर हो, उसे जोधपुर से जयपुर जाना हो तो पूछता है- जयपुर कौनसा रास्ता जायेगा। वह चौराहे पर खड़ा है। एक रास्ता जयपुर की ओर जाता है, एक नागौर की ओर, एक पाली की ओर व एक बाड़मेर की ओर। पूछने पर वह बताए रास्ते पर आगे बढ़ता है। मान लीजिए रास्ता बताने वाला बच्चा है तो आपके मन में शंका हो सकती है कि उसने गलत बता दिया तो कहीं चक्कर काटना तो नहीं पड़ेगा? जब तक विश्वास नहीं होता तब तक रास्ते पर बढ़ने का मन नहीं होता। आज जो विश्वास और आस्था शरीर पर है, धन पर है, परिवार पर है, सत्ता-सम्पत्ति पर है वैसी आस्था

और विश्वास अगर धर्म पर हो जाय तो क्या कहना।

भगवान् महावीर के पास गौतम ज्ञान लेने को नहीं किन्तु उन्हें पराजित करने के लिए आया था। भगवान् को वह इन्द्रजालिया कह कर सम्बोधित करता था। उसने कहा कि "मैं उस इन्द्रजालिया के पास जाता हूँ और उसे पराजित करता हूँ।" वह पराजित करने के लिए भगवान् के पास पहुँचा। भगवान् सर्वज्ञ-सर्वदर्शी थे। गौतम के मन की बात जानते थे इसलिए भगवान् ने गौतम के अन्तर्मन की बातें खोल कर उसे कह दी। भगवान् के वचनों पर श्रद्धा हुई, विश्वास जगा तो उनके श्रीचरणों में समर्पित हो गया।

आप अन्तगड़ के माध्यम से चारित्र वालों के दृष्टान्त सुन रहे हैं। कितने-कितने दृष्टान्त सुन लिए? कौन-कौन जीव मुक्ति में जाने वाले हैं? दृष्टान्त भी अलग-अलग तरह के हैं? अतिमुक्त कुमार ने खेलते-खेलते सड़क से गुजर रहे एक संत गौतम स्वामी को देखा और थोड़ी देर के सान्निध्य से उसे विरक्ति हो गई।1 आप संतों को देखते हैं, रोज देखते हैं किन्तु वैराग्य नहीं आ रहा है। क्यों? भाई, यह चारित्र किसी बाजार में नहीं मिलता। भीतर में श्रद्धा जगेगी उस दिन आप दृढ़ बन जाएँगे। फिर देवता भी चलायमान करना चाहे तो चलायमान नहीं कर सकते। परन्तु जब तक श्रद्धा नहीं जगती तब तक चाहे जितनी बार संतों को देख लो, संतों की वाणी सुन लो उसे ग्रहण किए बिना कुछ होने वाला नहीं है।

जिनशासन की दृष्टि अनूठी है, बेमिसाल है, बेजोड़ है। अज्ञानी से अज्ञानी व्यक्ति भी एक-एक वचन से जग सकता है। सुनने से वैराग्य आता है तो किन्हीं-किन्हीं को अपने-आप वैराग्य जगता है। पेट में रहते हुए जीव भी वैरागी हो सकते हैं। सती मदालसा ने अपने पुत्रों को कैसे वैरागी बनाया? आप सुन चुके होंगे कि आर्य वज्र स्वामी जन्म से वैरागी थे। जन्मते बच्चे को देखकर उनके घर-परिवार वाले ही नहीं, आस-पास के लोग भी खुशियाँ

मना रहे थे। जो भी आता, उसके मुँह से निकलता- "क्या आकृति है, कैसा सुन्दर रूप है, कितना अच्छा वर्ण है, कैसी निरोगता है, आज अगर इसके पिता यहाँ होते तो खुशियाँ कई गुना अधिक बढ़ जाती। पर क्या करें इसके पिता ने तो दीक्षा ले ली नहीं तो आज का आनन्द कुछ और ही होता।" बच्चा हर आने वाले की बात सुनता। सुनने के साथ उसका चिन्तन भी चलने लगा। बच्चा सुन-सुनकर विचार करता है- "अहो! मेरे पिता बड़े पुण्यशाली हैं कि उन्होंने श्रमणत्व स्वीकार कर लिया। मुझे भी कालान्तर में यथाशीघ्र संयम ग्रहण करना है, क्योंकि इसी से मेरा उद्धार हो सकता है।" स्तनपान के समय से ही उन्होंने साध्वियों के मुखसे सुन-सुन कर एकादश अंग प्रायः कण्ठस्थ कर लिए थे। आठ वर्ष के होते ही उनके गुरु आर्य सिंहगिरि ने उन्हें दीक्षा प्रदान की। आगे चलकर वे दशपूर्वधर हुए। यह मैं तीर्थंकरों के लिए नहीं कह रहा हूँ। तीर्थंकर भगवन्त स्वयं बुद्ध होते हैं। आप जानते हैं- एक होता है स्वयंबुद्ध, एक प्रत्येकबुद्ध और एक बुद्धबोधित। कई स्वयं बुद्ध हुए। उनको स्वतः वैराग्य हो गया। प्रत्येक बुद्ध किसी एक निमित्त को लेकर वैरागी बने हैं।

आचार्य भगवन्त (पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमल जी महाराज) की बात कहूँ वे जन्मते ही वैरागी थे। माँ रूपा के संस्कार ही कुछ ऐसे थे। गजसुकुमाल की बात कहूँ या एवन्ता की कहूँ, वे छोटी उम्र में दीक्षित हुए। आप कितने वर्षों के हैं? क्या आपको वैराग्य आया? इस परम्परा (रत्नसंघ) में जितने आचार्य हुए है वे सब बाल-ब्रह्मचारी हुए। नौ, दस, ग्यारह, बारह, चौदह वर्ष में दीक्षा लेने वाले हुए हैं। निमित्त से वैरागी बने हैं। बाल्यकाल में ही बारह वर्ष तक विद्याध्ययन के बाद राजमहल में प्रवेश करने वाले कुलभूषण-देशभूषण जिनका रामायण में वर्णन मिलता है, उनकी महल के झरोखे पर नजर पड़ी और वहाँ एक सुन्दर कन्या को देखा और सोचा- शायद पिताजी

ने हमारे लिए शादी का प्रबंध कर रखा है। महल में आकर माँ-बाप को नमन किया। माँ ने परिचय दिया- यह तुम्हारे जाने के बाद जन्मी है, तुम्हारी बहिन है। उनका संकल्प था कि जिस दिन भाई को बहिन के लिए मन में गलत विचार आ जायेंगे वे दीक्षा ले लेंगे और वे पिता की आज्ञा मानकर दीक्षित हो गये। बाद में उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हुई।

आज क्या स्थिति है? क्या आज भाई और बहिन का वह पवित्र रिश्ता कायम है? आज कईयों के गर्लफ्रेण्ड हैं, कईयों के धर्मभाई। शब्द कितने अच्छे हैं पर वे क्या करते हैं, मुझे कहने की जरूरत नहीं, आप चिन्तन करना।

कई देखने के साथ वैरागी हुए। मैं जोधपुर की बात कह रहा हूँ। एक मुसलमान भाई शादी करने जा रहा था। मुसलमानों में दुल्हे का मुँह मालाओं से ढका रहता है। वह शादी करने गया। बीच रास्ते में संत मिले, सोचा चलो नमस्कार करके चलते हैं। संत ने दूल्हे के वेश में भाई को देखा, देखते ही कहा-

रज्जब तूने गजब किया, सिर पर बांधा मोड़।
आया था हरि भजन को, करे नरक में ठोड़।।

संत की बात सुनते ही रज्जब जग गया। वह हलुकर्मी था। आप कैसे हैं? मैं किन-किन की बातें रखूँ? संत आए, दुकान के पास खड़े हो गए। दुकान पर बैठे भाई ने सोचा- महाराज कब से यहाँ खड़े हैं। बात हुई तो कहा- मैं तुमको लेने आया हूँ। तू क्यों संसार की मोह-माया में उलझ गया? सुनते ही उस भाई ने दुकान छोड़ी और महाराज के साथ चल दिया।

आज चारित्र-दिवस है। मैं कितने चारित्र वालों का विवेचन करूँ। अन्तगड़ सूत्र में आप जिन चारित्रात्माओं के वर्णन सुन रहे हैं वे सब मोक्ष जाने वाले हैं। मैं चारित्र दिवस पर आपके चारित्र की बात कह रहा हूँ। शादी हो रही है। सिन्दूर भरने के लिए पति पत्नी के पास जाता है। माँग

भरने के लिए सिन्दूर हाथ में लिया कि आवाज आई- अरे भवदेव! बाहर आ। बाहर देखा कि भाई महाराज आए हैं। सिन्दूर हाथ का हाथ में है। संत को बहराया और बाहर तक पहुँचाने के लिए साथ चल पड़ा। घर पर कोई मेहमान आए तो आप उसे घर के बाहर तक छोड़ते हैं। कोई नजदीक का मेहमान आ रहा है तो उसे लेने एरोड्रॉम तक पहुँच जाते हैं। वह भाई भी संत को पहुँचाने के लिए निकला। भाई महाराज कुछ बोले नहीं, चलते ही रहे। चलते-चलते गाँव की हद पार हो गई। साथ चलने वाला भाई महाराज से कहता है बाबजी! यह अपना खेत है, वह पड़ोसी की जमीन है। महाराज सुनते हैं लेकिन महाराज यह नहीं कहते कि अब दया पालो। महाराज नहीं कहे तब तक लौटना नहीं। संत के साथ भाई बराबर चल रहा था, संत चलते-चलते गुरु महाराज के चरणों में पहुँच गए।

गुरु ने संत से पूछ लिया- "क्या वैरागी साथ लाए हो?" भाई, जो संत को घर के बाहर पहुँचाने आया, उसने 'दया पालो' नहीं सुना इसलिए चलते-चलते गुरु के स्थान तक आ गया। जब उसने संत के गुरु के मुँह से सुना कि "क्या वैरागी साथ लाए हो? गुरु ने मुझे वैरागी कह दिया तो अब वापस लौटने का मतलब होगा- गुरु के वचन को झुठलाना?" वह भाई दीक्षित हो गया। वही भाई अगले जन्म में जम्बू बनता है। कोई उपदेश नहीं, वीतराग वाणी नहीं, घटना नहीं, दुःख नहीं वह तो केवल मात्र बहराने गया। गुरु ने इतना पूछ लिया कि क्या वैरागी लाए हो?2

पहले संतों की या महापुरुषों की बात हवा में नहीं उड़ाई जाती थी। गुरु ने कह दिया तो उनकी बात मान्य कर ली जाती। ऐसे कई उदाहरण हैं। एक बार एक व्यक्ति शादी करने गया। शादी करके लौट रहा था। रास्तें में पहाड़ी पर एक संत ध्यानस्थ थे। शादी करके आया तो स्वाभाविक था बारात साथ में थी। बारात में रक्षक भी थे। साला भी साथ में था। साला-बहनोई

दोनों संत के दर्शन करने के लिए पहाड़ी पर चले गये। संत का ध्यान पूरा हुआ। साले ने मजाक में कह दिया- "बाबजी! आपरे वास्ते चेलो लायो हूँ।" पत्नी नीचे थी, रक्षक भी नीचे ही थे। साले ने मजाक की। जीजा प्रकृति से सरल था। जब साले ने कहा, बाबजी के लिए चेला लाया हूँ तो जीजा ने दीक्षा ले ली। दीक्षा लेते ही साले को कंपकंपी छूट गई। अब, जाकर क्या कहूँगा? साला मजाक तो कर गया, किन्तु मजाक का ऐसा हश्र होगा, इसकी कल्पना नहीं कर सका। घर जाऊँगा तब जाऊँगा, नीचे बहिन है उसे जाकर क्या कहना? वह घबराया हुआ नीचे उतरने लगा तब फिर नवदीक्षित बहनोई से पूछा- "मैं नीचे जा रहा हूँ, बहिन को क्या कहूँगा? जीजा, जो दीक्षित हो गया था उसने कहा- "वह पतिव्रता है, उसकी चिन्ता करने की जरूरत नहीं है।" यह तो एक उदाहरण है। ऐसे कई उदाहरण हुए हैं। आचार्य भगवन्त की भाषा में कहूँ-

अरि करि हरि के कष्ट सहे,
वह शूरवीर कहलाता है।
मोह जीतने वाला साधक ही,
महावीर कहलाता है।।

ऐसे कई लोग हैं जो सांप को नचाते हैं। बैठने वाले शेर पर बैठ जाते हैं। शेर और खूँखार जानवरों से नहीं डरते। शेर के साथ खेलना हँसी-मजाक नहीं है। शेर के साथ खेलना सबके लिए संभव नहीं है। शेर को खुला देख ले तो पसीना पसीना हो जाय। दहाड़ सुनकर कइयों को कंपकंपी छूट जाती है। साँप जैसे विषधर के साथ खेलने वाले, शेर जैसे खूँखार जानवर को इशारे पर चलाने वाले, मोहराजा के आगे हाथ खड़े कर देते हैं। महावीर कौन बनता है? जो मोह को जीतता है, वही महावीर बन सकता है। दीक्षा लेने वालों को देखते तो कई हैं पर देखने वाले प्रव्रजित नहीं होते। आप घर में क्यों जमे हुए हो? चारित्र-दिवस पर दीक्षा न भी लें तब भी चारित्र में

चरण बढ़ाने का लक्ष्य रखेंगे तो संसार प्यारा नहीं, खारा लगेगा। आप कोई-न-कोई व्रत-नियम अंगीकार करके इस दिन को मनाएँ तो आनन्द प्राप्त कर सकेंगे।

जोधपुर
दिनांक 27 अगस्त, 2011

संदर्भ-

1. पोलासपुर नाम के नगर में धर्मनिष्ठ विजय नामक राजा राज्य करते थे। श्रीदेवी उनकी महारानी थी। उनके एक अत्यन्त सुन्दर, सुकुमार पुत्र था- अतिमुक्त कुमार। एक दिन भगवान् महावीर के मुख्य गणधर गौतम स्वामी पोलासपुर में भिक्षा के लिए पधारे। उस समय आठ वर्ष की वय का बालक अतिमुक्त कुमार घर के बाहर दूसरें बालकों के साथ खेल रहा था। गौतम स्वामी जब क्रीड़ा स्थल के पास से निकले तो बालक अतिमुक्त कुमार ने उन्हें देखा और दौड़कर उनके पास गया। गौतम स्वामी से उसने पूछा- "हे भगवन्! आप कौन है और इस तरह झोली लेकर क्यों घूम रहे हैं?" गौतम स्वामी ने उत्तर दिया- "हे बालक! हम निर्ग्रन्थ श्रमण हैं और भोजन-पानी की भिक्षा के लिए घूम रहे हैं।"

   तब अतिमुक्त कुमार ने कहा- "हे भगवन्! आप मेरे साथ चलिए, मैं आपको भिक्षा दिलवाता हूँ।" इतना कहकर उसने गौतम स्वामी की अंगुली पकड़ ली और उसे राजभवन में ले गया। महारानी श्री देवी गौतमस्वामी को देखकर सुपात्र दान देने की कल्पना से पुलकित हो उठी। उसने गौतम स्वामी को वन्दन किया और बेटे से बोली कि आज हमारा बड़ा सौभाग्य है कि तुम इस धर्म जहाज को अपने घर लेकर आ गया। गौतम स्वामी को निर्दोष आहार बहराया। गौतम स्वामी आहार लेकर वापिस जाने लगे तब अतिमुक्त कुमार ने उनसे पूछा- "हे भगवन्! आपका निवास कहाँ है?" गौतम स्वामी ने कहा- "मेरे धर्मगुरु-धर्माचार्य भगवान् महावीर पोलासपुर के बाहर श्रीवन उद्यान में विराज रहे हैं, मैं वहीं उनकी सेवा में जा रहा हूँ।"

   अतिमुक्त कुमार बोला- "क्या मैं भी भगवान् के दर्शन करने चल सकता हूँ?" गौतम स्वामी ने कहा- "जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो।" अतिमुक्त गौतम स्वामी के साथ भगवान् के चरणों में पहुँचा। शीश झुकाकर उन्हें वन्दन किया और उनका उपदेश सुना। सुनकर प्रभु के शब्द उसकी रग-रग में बस गये। उसने प्रभु से कहा- "भगवन्! मैं

माता-पिता की आज्ञा लेकर दीक्षा लेना चाहता हूँ।" भगवान् ने कहा- "जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो, परन्तु शुभ कार्य में विलम्ब मत करो।"

अतिमुक्त माता-पिता के पास पहुँचा और उनसे कहा- "मैंने आज प्रभु महावीर के दर्शन कर उनका उपदेश सुना, जिससे मैं संसार से विरक्त हो गया, अतः आपकी आज्ञा प्राप्त कर उनके चरणों में दीक्षित होना चाहता हूँ। माता-पिता ने उससे कहा- "वत्स! तुम इस बालवय में धर्म का मर्म क्या समझो?" इस पर अतिमुक्त बोला- "जिसको मैं जानता हूँ, उसको मैं नहीं जानता और जिसे मैं नहीं जानता हूँ उसको मैं जानता हूँ। इससे बढ़कर और तत्त्व का मर्म अभी मेरे लिए क्या है?" माता-पिता बोले- "पुत्र! पहेलियाँ मत बुझाओ। हमें इसका रहस्य बताओ!" तब कुमार ने कहा- " हे माता-पिता! मैं जानता हूँ कि जो जन्मा है, वह मरेगा ही, परन्तु मैं यह नहीं जानता कि किस समय, कहाँ और कैसे मरेगा? मैं यह नहीं जानता कि किन कर्मों के द्वारा जीव विभिन्न गतियों में जन्म धारण करते हैं, परन्तु इतना अवश्य जानता हूँ कि जैसे जिसके कर्म होते हैं, उसी के अनुसार वे नरकादि गतियों में जाते हैं। अतः मैं स्पष्ट रूप से नहीं बता सकता कि क्या जानता हूँ और क्या नहीं जानता हूँ? इसे जानने के लिए ही मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ।"

अन्त में दीक्षा की स्वीकृति हुई और वह भगवान् के पास दीक्षित हो गया। स्थविर मुनियों ने बालमुनि की क्रीड़ा देखकर भगवान् से इसकी शिकायत की। तब भगवान् ने उनसे कहा- "मेरा अंतेवासी अतिमुक्त इसी भव से सिद्ध होगा, अतः उसकी हीलना, निन्दा मत करो। अनेक वर्षों तक चारित्र का पालन कर अतिमुक्त मुनि केवलज्ञान प्राप्त कर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुए।

तप को जीवन-व्यवहार का अंग बनाएँ

साधना के सुमेरू सिद्ध भगवन्त, समता के एकाकार स्वरूप अरिहन्त भगवन्त और 'तवेशूरा अणगाराः' तप में शूर संत भगवंतों के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन!

बन्धुओ!

तीर्थंकर भगवान् महावीर की अन्तिम-अनमोल वाणी उत्तराध्ययन सूत्र के अट्ठाईसवें अध्ययन मोक्ष-मार्ग में कहा है-

नाणेण जाणइ भावे, दंसणेण य सद्दहे।
चरित्तेण णिगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झइ।।

-उत्त.सू. 28/35

मोक्ष-मार्ग का स्वरूप बताते हुए चरम लक्ष्य को प्राप्त करने वालों का आपके समक्ष वर्णन चल रहा है। पर्वाधिराज पर्युषण पर्व के प्रथम दिवस पर ज्ञान प्राप्त करने वाला व्यक्ति हेय को छोड़कर उपादेय को ग्रहण करता है। दूसरे दिन अटल श्रद्धा-विश्वास कायम करता है। कल यानी तीसरे दिन चारित्र से आस्रवद्वारों को रोकता है, प्रतिसंलीनता करता है, पाप का निग्रह करता है और धर्म की पाठशाला में प्रवेश करता है। बहुत सरल शब्दों में कहूँ- पाठशाला में प्रवेश करने वाले दो तरह के होते हैं। एक सबसे पहले आता है और सबके बाद जाता है। दूसरा आता तो बाद में है, जाता है पहले। पाठशाला का चपरासी सबसे पहले आता है और सबके बाद जाता हैं। वह स्कूल खोलता है, कक्षाओं की साफ-सफाई करता है, डेस्कों को

ठीक-ठाक करता है। जब से नौकरी पर लगा, वह सबसे पहले स्कूल आता है, सबके बाद जाता है। चपरासी स्कूल में वहीं का वहीं रहता है। पढ़ाने वाला अध्यापक चपरासी के आने के बाद आता है, चपरासी के जाने के पहले जाता है। इसी तरह विद्यार्थी भी पाठशाला में प्रवेश करता है और पढ़ता है। पढ़ते-पढ़ते कुछ वर्षों बाद वह स्नातक बन जाता है। इस तरह स्कूल में प्रवेश करने वाला विद्यार्थी आगे बढ़ जाता है।

आप में से कई बन्धु ऐसे हैं जो पहले आते हैं, प्रवचन सभा में आगे बैठते हैं। आपको सुनने में सुविधा रहे यह तो ठीक है पर रोज पहले आने वाले अगर जहाँ के तहाँ ही हैं, फिर तो विकास नहीं हुआ। पहले आने वाले नीचे बैठने के बजाय पाट पर बैठ जाते तब आगे बढ़े हैं, विकास हुआ है, ऊपर उठे हैं ऐसा कहा जा सकता है, पर आप वहीं के वहीं हैं तो क्या कहेंगे? यहाँ अर्थात् प्रवचन-सभा में आकर प्रमाद करके सुने नहीं, समझे नहीं, चिन्तन और मनन नहीं करें तो रोज सुनने वाले वहीं के वहीं रह जाते हैं, आगे नहीं बढ़ पाते हैं। आपका बच्चा मान लो पाँचवीं कक्षा में पढ़ता है, पाँचवीं में ही पढ़ता रहे, छठी कक्षा में नहीं आए तो आप स्कूल के कक्षाध्यापक से ही नहीं, प्रधानाध्यापक से कारण पूछते हैं और बच्चे का विकास हो उसका उपाय करते हैं। आप यहाँ प्रवचन-सभा में आते हैं, सामायिक करते हैं, व्याख्यान सुनते हैं किन्तु धारण कुछ भी नहीं करते तो आपको क्या कहना चाहिए?

पढ़ने वाला बच्चा फेल हो जाय तो जिस क्लास में था, उसी में रहता है। कदाचित् बार-बार फेल होने की स्थिति में स्कूल से बाहर किया जा सकता है। यहाँ धर्म की पाठशाला में आकर संवर, सामायिक और धर्म-साधना को छोड़कर आस्रवद्वार में जाता है तो वह नरक में जा सकता है। जहाँ है वहीं रहने की बात धर्म की पाठशाला में भी लागू नहीं होती।

कोई साधु है, मान लीजिये साधुत्व का पालन नहीं होने से वह साधुपना छोड़ दे तो वह नरक में जा सकता है। श्रावक, श्रावकपने में रहे, मर्यादा का पालन करता रहे तो वह देवलोक तक जा सकता है। वही श्रावक अगर मर्यादा छोड़ दे तो नीच गति में जा सकता है। आप अपना चिन्तन करना, मैं अपना चिन्तन करूँ।

मुझे एक बात बताओ। घर में थांरो छोरो भूखो बैठो है, आखियाँ सूँ आँसू आवे, उण टेमरा थाँने कोई मिठाई री मनुहार करे तो काँई मिठाई भावे? यह मेरा प्रश्न है, आप सोचकर जवाब देना। लड़का भूखा है उस समय आप मिठाई नहीं खा सकते। खाओ तो क्या कहलाओगे? मान लीजिये एक लड़के के पिताजी हैं, उनका एक्सीडेंट हो गया। वे दर्द से कराह रहे है। ऐसे समय उस लड़के को कोई मित्र आकर कहे- चलो, बगीचे में घूमते हैं। लड़का क्या करेंगा? वह पिताजी की सेवा में रहेगा, बगीचे में घूमने का मित्र का निमन्त्रण ठुकरा देंगा। मान लीजिये- आखातीज का भरपूर सीजन चल रहा है। ग्राहकों की लाइन लगी हुई है, उस समय आपको कोई मिलने वाला कहे- चलो, कुछ देर बातें करते हैं तो क्या आप दुकान छोड़ते हैं?

यहाँ दो-चार, पाँच-दस नहीं दर्जनों लोग अट्ठाई कर रहे हैं, कुछ मासखमण कर रहे हैं, तेलों के तो सैकड़ों प्रत्याख्यान हो रहे हैं। आप देखते हैं, तो क्या आपके मन में तप करने की भावना जगी? मैं ये बातें चिन्तन करने के लिए कह रहा हूँ। एक सात साल का बच्चा उपवास करने में दृढ़ता दिखाता है, उसके पिताजी को गुटखा छोड़ने का कहे तो गुटखा खाना नहीं छूटता। एक तरफ ऐसे लोग हैं तो दूसरी तरफ ऐसे लोग भी मिल जाएँगे जो घर से खा-पीकर आए हैं उनको किसी ने मनुहार कर दी तो क्या करेंगे? खाकर आए हैं तो भी खाने की मनुहार टालने का उनका मन नहीं होता।

आज बच्चे आए। कहने लगे- "बाबजी! आज हमारे धर्मगोठ है।"

युवकों का आज सामूहिक दया का कार्यक्रम है। पर्वाधिराज पर्युषण के दिन चल रहे हैं इसका मतलब है अभी त्याग-तप का सीजन चल रहा है। मौसम भी अनुकूल है और आप मोक्ष जाने वाली आत्माओं का वर्णन सुन रहे हैं। कदाचित् मोक्ष जाने का पुरुषार्थ आप नहीं कर सकते तो कम-से-कम दुर्गति में जाने के दरवाजें तो बंद कर ही सकते हैं। जिनेन्द्र भगवान् की यह वाणी अनूठी है। इस वाणी का एक-एक शब्द, पद, चरण, मोक्षमार्ग में गति करने की प्रेरणा करता है। श्रद्धावान को वीतराग वाणी जगाएगी, उसको तो क्या कहना? पर जो विपरीत वृत्ति वाले हैं, मच्छीमार हैं वे भी जग जाते हैं। आपने सुना होगा कि एक मच्छीमार जाल लेकर जा रहा है। रास्तें में उसने संत-मुनिराज को देखा। मन में आई- संत भगवन्त मिल गए हैं। उसने जाल रखा, जूते उतारे और संत को नमस्कार किया। महाराज बोले- भाई! तुम भी कुछ दो। वह भाई बोला- बाबजी! अभी तो मैं घर से निकला हूँ। मुझे कुछ मिला ही नहीं तो क्या दूँ? उस भाई ने सोचा- शायद महाराज पैसे माँग रहे हैं। संत ने कहा- भाई! हम रुपया-पैसा न लेते हैं और न रखते हैं। हम तो चाहते हैं तुम कुछ नियम कर सकते हो तो करो। नियम करने के प्रसंग से हमने कुछ देने को कहा है। वह भाई बोला- बाबजी ! मुझे क्या करना है?

महाराज ने कहा- भाई ! तुम मच्छीमार हो, मछलियाँ पकड़ते हो। इतना नियम कर लो कि तुम्हारे जाल में आने वाली पहली मछली को तुम मारोगे नहीं, छोड़ दोगे। उस भाई ने महाराज से नियम ले लिया। इस एक नियम का पूरी तरह पालन करते हुए वह एकाभवतारी बन गया। आपको सोचना है कि जब मच्छीमार का धंधा करने वाला एक नियम से पार हो सकता है तो आप जो कई व्रत-नियम पालते हैं तो आपके जीवन में मच्छीमार जैसा चमत्कार क्यों नहीं होता?

आपने सुना है- कानड़ कठियारा ने एक छोटा सा नियम किया कि

मैं हरा झाड़ नहीं काटूँगा। पूनम के दिन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करूँगा। नियम छोटा था परन्तु नियम की पालना पूरी दृढ़ता से की गई तो उसका बेड़ा पार हो गया।

चारित्र में चरण बढ़ाने से मुक्ति मिलती है। इसके लिए हेय को छोड़कर उपादेय को ग्रहण करने की भावना रखना और व्रत-प्रत्याख्यानों का भावनापूर्वक पालन करना चारित्र में चरण बढ़ाने का लक्षण है। नियम निभाना और नियम का विधिवत पालन करना आवश्यक होता है। एक आदमी ने आंवला सेवन करूँगा, ऐसा संकल्प किया। आंवला दवा है, दवा का काम करता है। नियम तो ले लिया, आंवला खाता भी है पर विधि का पूरी तरह पालन नहीं करता। आंवले के सेवन करते समय इमली खाना त्याज्य है, पर वह भाई आंवले के साथ इमली का उपयोग करता है तो आंवले से लाभ होने के बजाय शरीर में सूजन बढ़ गई।

पर्युषण पर्व का आज चौथा दिन है। ज्ञान, वस्तु तत्त्व के हेय और उपादेय का बोध कराता है। दर्शन दृढ़ता-मजबूती देता है, चारित्र में चरण बढ़ाने के लिए। तप-रूप पथ्य का पालन यदि किया जा रहा है, तो शरीर की स्वस्थता पाने में ही नहीं, कर्म काटने में भी देरी नहीं लगती। आज तप दिवस है।

तप मन का ताप मिटाकर शरीर का संताप घटाकर आत्मा का प्रताप बढ़ाने वाला है। तप कौन करता है? तप किससे नहीं होता? एक है जो खुशी-खुशी पर्वाधिराज पर्युषण पर्व में अपनी शक्ति व सामर्थ्य से तपाराधन करता है। कुछ व्यक्ति इस प्रकृति के भी हो सकते हैं जो कहने में कह जाते हैं- यह संवत्सरी क्यों आई? संवत्सरी पर छोटे-बड़े सभी उपवास करते हैं पर जिन्हें उपवास करना भारी होता है वे तो चाहते हैं कि संवत्सरी आए ही नहीं। तप का निरादर करने वाले यहाँ तक कह जाते हैं कि यह संवत्सरी कब

मरेगी?

आचार्य भगवन्त (पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमल जी महाराज) के चरणों में एक श्रावक ने प्रश्न किया- "बाबजी! संवत्सरी आती है तो डर लगता है।" भगवन्त का जवाब था- "भाई! तुमने शरीर की ममता नहीं छोड़ी, जिस दिन शरीर की ममता कम हो जाएगी, उपवास जैसा तप भारी नहीं लगेगा।" तप शरीर के लिए जरूरी है तो मन व आत्मा के लिए भी आवश्यक है। हमारे यहाँ ही नहीं, हर मत में, चाहे जो पंथ हो, परम्परा हो, हर धर्म में तप की जरूरत पर बल दिया गया है। बिना तप किए किसी को सिद्धि व प्रसिद्धि नहीं मिलती। जितने भी महापुरुष हुए हैं उन्होंने तप-साधना की और दूसरों को तप करने की प्रेरणा दी। तप से ऋद्धि-सिद्धि और लब्धि ही नहीं, कर्म काटने पर सिद्धि प्राप्त होती है।

जीवन के हर आचरण में तप का समावेश किया जा सकता है। अनशन तप है इसका ज्ञान हो जाय, श्रद्धा हो जाय तो फिर तप के आचरण में मुश्किल नहीं आती। अनशन, तप है। अनशन में नवकारसी, पोरसी, एकासन, आयंबिल, उपवास, छःमासी आदि सभी तप आ जाते हैं। अनशन आदि तप मिथ्यात्वी भी करता है तो सम्यक्त्वी भी करता है। चौबीसों घंटें खाने वाला कोई नहीं। आप ही नहीं, जानवर भी रात-दिन चौबीसों घंटें खा नहीं सकता।

अनुभवियों ने कहा है- नियम से चलने वाला पुरुष दिन में एक बार खाता है। अर्थात् नेमि एक बार खावे। गृहस्थ के बंधन में बंधा हुआ आदमी दिन में दो बार खाता है। बच्चा है तो तीन बार खाने की उसे जरूरत होती है और जो दिन भर खाता है वह मानो गधा है। आपने देखा होगा- जानवर चाहे गाय हो, भैंस हो, बकरी हो और कोई भी जानवर क्यों न हो, दिनभर नहीं खाता। गाय-भैंस जैसे जानवर खाने के बाद जुगाली करते है। जुगाली

करने का मतलब है- पचाना। कुछ भाई हैं जो जानवर से गए गुजरे हैं। उनका मुंह जब देखो, चलता ही रहता है। गुटखा खाने वाले, जर्दा खाने वाले, सुपारी खाने वाले हर समय मुँह चलाते मिल जाएँगे। कई तो ऐसे माई के लाल हैं, जिनके मुँह में रात भर जर्दा दबा रहता है। जर्दा, गुटखा, सुपारी न स्वास्थ्य के लिए हितकर है, न धर्म-साधना के लिए ठीक है।

मैं कह रहा था- अनशन तप है। अनशन, ऊणोदरी जैसे तप, तप दिखते हैं, किन्तु नम्रता, सद्व्यवहार, आदर-भावना भी विनय रूप तप है। दूसरों की सेवा करना, किसी की पीड़ा दूर करना वैयावृत्य तप है। तप करने वाला आत्म-स्वरूप में रमण करता है। आत्म-स्वरूप में रमण करने वाला सिद्धि पाता है, सफलता मिलाता है। तप के लिए वय, लिंग, जाति बाधक नहीं है। छोटे-बड़े, अमीर-गरीब, स्त्री-पुरुष सब तपाराधन कर मुक्ति पा सकते हैं।

तप आवश्यक है, करणीय कार्य है। "तवेसु वा उत्तमं बंभचेरं।" (सूत्रकृतांग 1/6/23) तपों में सर्वश्रेष्ठ तप है- 'ब्रह्मचर्य'। अखण्ड बाल ब्रह्मचारी रहने वाले पूज्य हैं। ध्रुव, प्रह्लाद, अरणक ब्रह्मचारी हुए। धन्नगिरी को वैराग्य हो गया। माता-पिता से आज्ञा चाही तो उन्होंने कहा- "पहले शादी करो फिर आज्ञा देंगे।" धन्नगिरी ने जिसके साथ सम्बन्ध होने वाला था उससे साफ कह दिया- "मैं घर में रहने वाला नहीं हूँ। तुम्हारा जीवन दुःखी न हो इसलिए पहले से ध्यान दिला रहा हूँ।" पत्नी ने कहा- "आपके साथ मुझे जितने दिन का अवसर मिलेगा, मैं अपना सौभाग्य मानूँगी।" धन्नगिरी रोज पूछता है कि मैं दीक्षा ले लूँ। पर पत्नी कोई जवाब नहीं देती है। उसे ज्यों ही मालूम हुआ कि पत्नी गर्भवती है, वह दीक्षा के लिए तैयार हो गया। घर-रक्षण के लिए जीवन में एक बार भोग कर लिया, शेष जीवन ब्रह्मचर्य-व्रत की साधना में समर्पित कर दिया।

आचार्य शय्यंभव का दृष्टान्त आपने सुना होगा। वह दीक्षा के लिए तत्पर होता है। वह पत्नी से बार-बार पूछता है- "तुम्हारे पेट में कुछ है?" जवाब मिला- "हाँ, थोड़ा अनुभव तो हो रहा है।" बस, इतना सुना और शय्यंभव दीक्षित हो गए। उनकी दीक्षा के बाद मणक पैदा होता है।[1] न जाने ऐसे कितने उदाहरण हैं?

ब्रह्मचर्य सर्वश्रेष्ठ तप है। शादी के पहले, शादी करते, माँग भरते संसार छोड़ने वाले हुए हैं। महाराष्ट्र में समर्थ गुरु रामदास शादी के लिए मंडप में बैठे हैं। पंडित ने कहा- सावधान! दुल्हा-दुल्हन एक-दूसरे के साथ संबंधित हो रहे हैं। पति-पत्नी का जीवन भर का संबंध जुड़ रहा है, इसलिए संबंध जुड़ने के पहले एक शब्द बोला जाता है- 'सावधान।' रामदास ने 'सावधान' शब्द सुना, सुनते ही वे चँवरी से उठकर भाग गए। 'सावधान' शब्द ने समर्थ गुरु को जगा दिया। क्या आपने कभी 'सावधान' शब्द नहीं सुना? आपने ही क्या, यह शब्द सबने कई बार सुना, किन्तु लगा नहीं। जिनके बेटे ही नहीं, बेटे के बेटे हो गए, उन्हें ब्रह्मचर्य व्रत की प्रेरणा की जाती है तो जवाब मिलता है- "बाबजी! सोचकर कहूँगा।" भगवान् जाने वे कब सोचेंगे?

ब्रह्मचर्य तप की साधना में गाँव वाले और शहर वाले लोगों में फर्क है। हम विचरते-विचरते एक गाँव में पहुँचे। गाँव के भाई से बात के प्रसंग से पूछा- "आप अवस्था सम्पन्न हैं, क्या आपने ब्रह्मचर्य का नियम कर लिया है?" वह भाई बोला- "महाराज! आप म्हाने कांई पूछो। म्हारे तो बेटा रे बेटो हो जावे तो म्हे म्हारी खाट, पोल रे बारे ले लां।" यह है गाँव की संस्कृति की झाँकी। और कहूँ- राजपूतों के घरों में ठकुराणी के सोने की जगह को कोटड़ी कहते हैं। जब घर का मुखिया दादा या नाना बन जाता है तो उसका कोटड़ी में जाना बंद हो जाता है।

आप जिनको जाट कहते हैं उनकी बात कहूँ। आचार्य भगवन्त धनारी पधारे। दो दिन वहाँ विराजे तो गाँव में शीलव्रत के खंद होने लगे। गाँव वालो ने कुछ दिन विराजने की विनती की। आचार्य भगवन्त ने फरमा दिया- "जब तक दो खंद रोज होते रहेंगे, विहार की बात नहीं सोचूँगा।" गुरुदेव प्रेरणा कर रहे थे इस बीच एक जाट खड़ा हुआ और बोला- "बाबजी! म्हारे बेटा रे बेटो हो जावे तो खाट पोल रे बारे लाग जावे। थें म्हाने मत केवो, थें तो थांरा ए महाजन भक्तां ने समझाओ।" व्याख्यान में एक जाट ने बहुत मार्के की बात कह दी, जिसका परिणाम हुआ कि बीस ओसवालों ने शीलव्रत के खंद ले लिये। क्यों हुए शीलव्रती? ओसवालों को लगा- जिनको हम पाछल बुद्धि जाट कहते हैं, वे भरे व्याख्यान में खड़े होकर कितनी गहरी बात बोल गए।

मैं आज तप-दिवस पर कुछ कह रहा हूँ। तप का विस्तृत क्षेत्र है, बहुत कुछ कहा जा सकता है। तप के कुछ स्वरूप आपके सामने रखे हैं। एक स्वरूप और है, वह है- 'इच्छानिरोहो तवोः' अर्थात् इच्छाओं का निरोध तप है। इच्छाओं का निरोध करने वाला तपस्वी है, समाधि में रहता है।

इच्छा और आवश्यकता में अन्तर है। आवश्यकता पूर्ति एकेन्द्रिय की भी होती है तो पंचेन्द्रिय की भी। वर्षा के लिए गाँव वाले कहते हैं- पेड़-पौधों के लिए वर्षा होती है। चिड़ी-कबूतर रात को दाना नहीं चुगते। शेर भूखा रह जाएगा परन्तु घास नहीं खाएगा। आज धरती पर जो कष्ट हैं, संकट हैं उसके पीछे मर्यादाहीनता भी एक कारण है।

जीवन के दो रूप हैं। एक है- आवश्यकता, एक है इच्छा। आवश्यकता हर प्राणी की पूरी होती है इसीलिए कहावत प्रचलित हुई- "कीड़ी को कण, हाथी को मण" मिल ही जाता है। अकाल हो या सुकाल पशु-पक्षियों को कोई-न-कोई देता ही है। प्राणिमात्र की आवश्यकता है,

रहेगी। भूख मिटाने के लिए अन्न चाहिए। अन्न चाहे गेहूँ हो, बाजरा हो, चावल हो, मक्की हो। अन्न से भूख मिटती है। खाना खाना आवश्यकता है। पर इच्छा है मुझे गर्म-गर्म मिले, नरम-नरम मिले। स्वादिष्ट चाहिए, ताजा चाहिए, मेवे-मिष्ठान्न युक्त चाहिए। ये इच्छाएँ हैं। इच्छाएँ किसी की पूरी हुई नहीं, होगी नहीं। ज्यों-ज्यों भौतिकता बढ़ती जा रही है, इच्छाएँ बढ़ रही है। जीवन पहले भी चलता था। पहले झोंपड़ी में रह लेते, आज मकान चाहिए। मकान ही नहीं महलनुमा बंगला चाहिए। इच्छाओं का कभी अन्त नहीं आता। पीने के लिए पानी चाहिए, यह आवश्यकता है। पर फ्रीज का पानी चाहिए, बिस्लेरी की बोतल का ही पानी चाहिए, ठण्डा चाहिए, मीठा चाहिए, शर्बत चाहिए, ये इच्छाएँ हैं। आप नोट कर लें- जितनी-जितनी इच्छाएँ बढ़ेगी, उतने-उतने पाप बढ़ेंगे। पहले के लोग आठ-दस कोस पैदल चले जाते। पैदल चलने से स्वास्थ्य ठीक रहता। आज? मैं कहूँ या आप स्वयं समझ गए?

पहले लोगों की आवश्यकताएँ सीमित थी। बहुत से लोग नंगे पांव चलते थे। हाँ, कभी शहर में चलने का काम पड़ता तो शर्माशर्मी पाँव में जूते पहन लेते और ज्यों ही शहर की सीमा पार करते, जूते हाथ में लेकर चल देते। परन्तु आज? आज तो जो बच्चा चलना तो दूर, खड़ा नहीं रह सकता उसे भी मौजे-जूते पहना दिए जाते हैं। घर में चप्पल अलग, रसोई घर की चप्पल अलग, लेट्रिन की अलग।

आज देखा-देखी इच्छाएँ बढ़ रही हैं। फिर, तर्क का जमाना होने से नासमझ यहाँ तक कह जाते हैं कि शराब और पानी में अन्तर क्या है? पहले गाँव का ठाकुर या उनके पास रहने वाले कभी शराब पी लेते, पर आज जैन-अजैन इच्छाओं के वशीभूत क्या-क्या अनर्थ नहीं करते? घर-गृहस्थी के लिए पत्नी चाहिए, पर वह सुन्दर हो, गौरी हो, नखरे वाली हो, गहने वाली हो, ये सब इच्छाएँ है। इच्छाएँ घटती नहीं, बढ़ती हैं। जिनकी इच्छाएँ घट गई,

वह तपस्वी हो गया। इच्छाएँ घटना ममता का घटना है। ममता कम होना या समाप्त हो जाना मोक्ष की ओर चरण बढ़ाना है।

आवश्यकता और इच्छाओं के संदर्भ में कई नजीरे हैं। भगवान् महावीर के श्रावक, जिनके पास हजारों गायें थीं, सैकड़ों हाली-बेली थे, सम्पदा की कमी नहीं थी, ऐसे आनन्द और कामदेव जैसे श्रावक क्या इच्छाओं के वशीभूत थे? धन-वैभव और सम्पदा होते हुए भी श्रावक इच्छाओं के दास नहीं थे। मात्र दो वस्त्र की जोड़ी रखी जाती थी। पशु-पालन, कृषि, व्यापार- व्यवसाय के पीछे स्वावलम्बी जीवन जीने का भाव उनके आचार-विचार- व्यवहार से, रहन-सहन से, जीवन जीने के ढंग से ज्ञात होता था। आज भले ही साधन कम हैं, परन्तु इच्छाएँ असीमित हैं। घर-घर में कपड़ों की पेटियाँ ही नहीं, आलमारियाँ भरी हैं, फिर भी जब भी कोई नया कपड़ा या डिजाइन देखी नहीं कि खरीद करते देर नहीं लगती। जोधपुर में आचार्य पदारोहण के अवसर पर रावटी वाले जंवरीलाल जी पारख ने कहा कि मेरी दोहिती के पास तेतीस तरह की ड्रेसे हैं, तेतीस प्रकार के चप्पल-जूते हैं। जिस रंग की साड़ी, उसी रंग का ब्लाउज, उसी कलर की जूतियाँ। यानी सब चीजें मेचिंग चाहिए।

जब तक आदमी इच्छाओं का दास रहेगा, उसका घर छूट नहीं सकता, चारित्र में चरण बढ़ नहीं सकता। आप प्रवचन श्रवण कर रहे हैं। आप से घर नहीं छूट रहा है, कोई बात नहीं, आप इतना संकल्प कर लें कि हमारे काम में आने वाले जो भी साधन हैं, उन्हें अब नहीं बढ़ायेंगे। आप यदि ऐसा संकल्प करेंग तो भी ममता पूरी तरह हटे या नहीं हटे, कम जरूर होगी।

आदमी का महत्व न कपड़ों से है और न ही साधनों से। भौतिक साधनों से इज्जत बढ़ती तो फिर वेश्या के पास भी धन की कमी नहीं है, पर वेश्या की इज्जत कौन करेगा? एक गाँव में एक राजपुरोहित रहता था। गाँव

वाले ही नहीं, राज दरबार में उसका सम्मान था। पुरोहित जी आते तब दरबार खुद खड़े होकर उनका स्वागत करते। भारतीय संस्कृति में राजगुरुओं का सम्मान होता आया है। महामंदिर के राजगुरु लाडूनाथ जी जब भी दरबार में आते जोधपुर महाराजा उनका स्वागत करते। दरबार साहब ने एक दिन राजपुरोहित से प्रश्न किया- "ज्ञान बड़ा है या आचरण?"

पुरोहित जी ने कहा- "मैं आपके प्रश्न का जवाब कल दूँगा।"

राजपुरोहित का जब राजा सम्मान करते थे तो दूसरे लोग उसे कुछ भी करते हुए कुछ कह दें, यह संभव ही नहीं था। राजपुरोहित राजकोष में प्रविष्ट हुआ, भण्डारी जी ने आते देखा पर कहा कुछ नहीं। पुरोहित जी को कहने की किसी की हिम्मत थी ही नहीं। पुरोहित जी ने भंडार से दो मोती उठाए और चल दिये। खजान्ची देखकर भी न कुछ बोला, न ही कुछ पूछा। पर यह बात दरबार और दरबारियों के पास पहुँच गई कि पुरोहित जी ने भंडार से दो मोती चुरा लिए है।

दूसरे दिन राजपुरोहित जी दरबार में आए। रोज की तरह पुरोहित जी का स्वागत सत्कार तो दूर, न राजा ने और न ही दरबारियों ने पुरोहित जी से बात करना तो दूर, देखना तक ठीक नहीं समझा। राजा ने मुँह फेर लिया। पुरोहित जी ने कहा- "राजन्! आपको अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया ना?"

राजा कुछ पूछे इसके पहले राजपुरोहित जी ने कह दिया- "राजन्! ज्ञान बड़ा नहीं होता, बड़ा होता है चारित्र, आचरण। मैंने दो मोती खजाने से उठाए, मेरे आचरण के कारण आपने ही नहीं बल्कि सभी दरबारियों ने मेरे को देखकर बोलना तो दूर, मुँह फेर लिया। आपके प्रश्न का उत्तर यही है कि ज्ञान के बजाय आचरण अधिक महत्व रखता है।" जिसका आचरण अच्छा है वह पूज्यता प्राप्त करता है। आप तप-दिवस पर आचरण को

जीवन-व्यवहार में चरितार्थ करें तो आनन्द ही आनन्द।

जोधपुर
28 अगस्त, 2011

संदर्भ

1. मणक भी आठ वर्ष का होने के बाद आर्य शय्यंभव से दीक्षित हो गया। दीक्ष्ज्ञा के बाद आर्य शय्यंभव ने उपयोग लगा कर देखा कि इस बालर्षि की आयु केवल 6 मास की ही बाकी रही है। इस कम अवधि में बालक मुनि सम्यक्रूपेण ज्ञान-क्रिया की आराधना कर सके, आर्य शय्यंभव ने विभिन्न पूर्वों से सार लेकर के दश अध्ययनों वाले एक सूत्र की रचना की, जिसका नाम 'दशवैकालिक सूत्र' रखा गया। इसके अध्ययन में बालक मुनि अल्प समय में ही सम्यक् आराधक बन गया। शय्यंभव स्वामी के इस कृपा प्रसाद के फलस्वरूप आज भी साधु-साध्वी दीक्षित होने के समय सर्वप्रथम इसी का अध्ययन करते हैं। विशेष जानकारी के लिए देखिए- जैन धर्म का मौलिक इतिहास (भाग-2)- 'श्रुतकेवली आचार्य शय्यंभव स्वामी''।

दान का माहात्म्य

अकारण करुणाकर सिद्ध भगवन्त, अनन्त-अनन्त उपकारी वीतराग भगवन्त, प्रतिपल अभयदान देने वाले संत भगवन्तों के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन।

बन्धुओं!

पर्वाधिराज पर्युषण पर्व में ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप के माध्यम से मोक्षमार्ग का कथन किया जा रहा है। ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप की आराधना करते हुए अनन्त प्राणी भव-बंधन को काटकर मुक्ति की ओर बढ़े हैं। सम्यक्त्व के 67 बोल में मोक्षमार्ग के जिन चार चरणों का उल्लेख है, वहाँ कहा है-

दानं सुपात्रं सुभगं च शीलं, तपो विचित्रं शुभ भावना च।
भवार्णवोत्तारण यान पात्रं, धर्मश्चतुर्धा मुनियो वदन्ति।।

यहाँ भी चार प्रकार के धर्म कहे हैं। संसार में समुद्र को पार करने के लिए जहाज या नौका काम आती है, उसी तरह संसार-सागर से पार होने में दान, शील, तप और भावना सहायक हैं। दान-शील-तप-भावना रूप धर्म जहाज भी तिराने में सहायक है, संसार-सागर से पार कराता है।

धर्म किसे कहते हैं? कहा है- "दुर्गतौ प्रपततोजीवान् रुणर्द्धि सुगतौतान धारयतीति धर्मः" अर्थात् दुर्गति में गिरने वाले प्राणियों को जो धारण करता है, उसे धर्म कहते हैं। इस धर्म के लिए दान, शील, तप और

भावना ये चार बातें कही हैं। एक-एक विषय का चिन्तन करें। दान देना या दान करना सरल काम है। शील पालना, तप करना और भावना भाने से दान करना सरल है। शील पालना सरल होता तो आज आपके सामने न जाने कितने-कितने झंझट हैं, उन्हें झेलना नहीं पड़ता। स्वामी जी श्री चौथमल जी महाराज तो कहते थे कि एक भगवान् की आज्ञा मान लेते तो रोज-रोज नारी की आज्ञा नहीं माननी पड़ती। शील पालना सरल नहीं है। यदि सरल होता तो अनेक शास्त्रों के ज्ञाता, वासना के दलदल में फँसकर नीचे आते नजर नहीं आते। शील पालना सरल नहीं है तो तप करना भी उतना सरल नहीं है। कल आपने सुना- हर एक से सुनना और सुनाना या लड़ना और लड़ाना सहज है पर अन्न से लड़ना बहुत मुश्किल है। भूख सबसे बड़ा परीषह है। भूख में दो अक्षर हैं। एक है 'भू' और एक है 'ख'। भू यानी पृथ्वी, ख अर्थात् आकाश। भूखे को रात में तो तारे दिखते ही हैं, दिन में भी तारे नजर आते हैं। आदमी रहता भले ही जमीन पर है, देखता आकाश की ओर है। शास्त्र कह रहा है- भूख न जाने आदमी से कैसे-कैसे पाप कराती है? इस भूख की ज्वाला ने हिंसा कराई, झूठ बोलने पर मजबूर किया। भूख ने किसी की गाँठ काटी तो कभी किसी का शील-सदाचार भी दाँव पर लगा दिया।

शील पालना सरल नहीं, तो तप करना भी सरल नहीं है। रही भावना की बात तो कहना होगा- भाव शुद्ध हो जाते तो भगवान् बनते देर नहीं लगती। शुभ भावना आना अति कठिन है, बहुत मुश्किल है। शुभ भावना आना सरल नहीं है। बाकी सारे काम किए जा सकते हैं, लेकिन भावों में पवित्रता-शुद्धता सहज नहीं आती। आप चाहे घर पर हों या दुकान पर, टी.वी. देख रहे हों या मैच, आप घर-परिवार के सारे काम करते हैं, आमोद-प्रमोद के कामों में थकते नहीं, पर क्या सारे काम करते हुए सामायिक की बात याद आती है? आप कभी माला जपने बैठ भी जायें तब एक, दो, नहीं कई काम याद आ जाते हैं। माला फेरते, संवर-सामायिक

करते, ज्ञान-ध्यान सीखते कई तरह के विचार आना सहज है। धर्म करते पाप-कार्यों पर ध्यान चला जाता है किन्तु पाप करते हुए पुण्य की बात याद आती है या नहीं? मेरा कथन केवल इतना ही है कि पाप करते पुण्य की बात याद नहीं आती इसलिए घर में रहते हुए शुभ भावना आना पानी में पत्थर तिराना है।

ज्ञानियों ने दान को सरल तो बताया ही, पर उसे पहले स्थान पर रख दिया। दान, शील, तप और भावना में दान का स्थान पहला है। कारण है, दान सबसे सरल है। हर व्यक्ति दान दे सकता है चाहे वह छोटा हो या बड़ा । अमीर-गरीब सब दान कर सकते हैं। इस पंचम आरक रूप कलियुग में सबसे कोई सरल धर्म है तो वह है दान। दान-शील-तप-भावना में दान सरल है, मेरे इस कथन के पीछे अपेक्षा रूप विचार रहे हैं। दान सरल है, सहज है, सीधा है, हर आदमी दान कर सकता है। शील पालना अवस्था के साथ होता है, तपश्चर्या समझदारी से होती है, भावना ज्ञान जगने से बनती है। दान सबके लिए है, सब कर सकते हैं। नीतिकारों ने कहा है-

ब्याजे स्याद् द्विगुणं वित्तं, व्यवसाये स्थान् चतुर्गुणं।
क्षेत्रे शतगुणं प्रोक्तं, दानेऽनंतगुणं तथा।।

आप व्यापारी हैं। जानते हैं ब्याज में लगाया धन दिन-रात कमाता है। ब्याज पर लगाया धन दो गुना हो सकता है। व्यवसाय में लगाया धन आदमी की किस्मत चमके तो चौगुना हो सकता है। खेत में डाला गया दाना सौ गुणा हो सकता है। दान दिया हुआ अनन्त गुणा हो सकता है। आप सब धन बढ़ाना चाहते हैं, इसके लिए अनुभवियों ने कहा- 'दे'। आचार्य भगवन्त पूज्य श्री हस्तीमल जी म.सा. ने अपने गुरुदेव आचार्य भगवन्त पूज्य श्री शोभाचन्द्र जी महाराज से दान के संदर्भ में सुना, वह है-

दीन को दीजिए होत दयावंत,
मित्र को दीजिए, प्रीति बढ़ावे।

सेवक को दीजिए, काम करे बहु,
सायर को दीजिए, आदर पावे।
शत्रु को दीजिए, वैर रहे नहीं,
याचक को दीजिए, कीर्ति गावे।
अभय-सुपात्र मोक्ष का कारण,
हाथ दियो मन वृथा न जावे।।

आप चाहे जिस दें, दिया हुआ कभी व्यर्थ नहीं जाता। अगर किसी दीन को देंगे तो वह जहाँ कहीं जायेगा, वहाँ कहेगा- अमुक सेठ बड़ा दयालु है। मित्र को देने पर मित्रता प्रगाढ़ होती चली जाएगी। नौकर को देने पर वह दौड़कर हर काम उत्साह के साथ करेगा। सेवक को दान करोगे तो वह धन्यवाद तो करेगा ही, पूरी मेहनत भी करेगा। वह समय-असमय की बात भुलाकर हर समय समर्पित बना रहेगा। जो सेवक है उसे दिया गया लाभ भले ही तत्कालीन न दिखाई दे, परन्तु संघ-समाज की सेवा करने वाला अधिक विश्वास से काम निष्पादित करेगा। याचक को देंगे तो वह जहाँ जायेगा, आपकी यशोगाथा कहेगा और दान सुपात्र को दिया जाय, अभय दान दिया जाय, उसका तो कहना ही क्या? सब दानों में श्रेष्ठ दान है- अभयदान। सुपात्रदान, स्वधर्मी दान और अभयदान से पुण्य का उपार्जन होता है, सद्गति प्राप्त होती है, स्थाई सुख मिलता है। दान दिया कभी निष्फल नहीं जाता।

दान कौन दे सकता है? शास्त्रकारों ने कहा है- "स्वर्गश्च्युतानां इहजीव लोके, चत्वारि चिन्हानि भवंति लोके।" स्वर्ग से आने वाले के चार चिह्न हैं। देना है, दीजिये। त्यागियों की सेवा करनी है, कीजिए। दुःखीजनों के दुःख दूर करने हैं, कीजिए। जिसके पास है, वह देगा। देने की भावना होगी तो ही दिया जा सकेगा। कंजूस के पास है, पर देना नहीं होता। कई ऐसे भी हैं जो कहते हैं- किन-किनको दें, इसी तरह देते रहेंगे तो यह जो भी धन

है, वह एक दिन समाप्त हो जाएगा।

बादल देते हैं। काले-कजरारे बादल गाँव, जंगल, पहाड़ सब जगह वर्षा करते हैं। देते-देते कालापन दूर होता है, बादल सफेद हो जाते हैं। वृक्ष देते हैं। देते-देते सूख सकते हैं। कुआँ पानी देता है। कुएँ में पानी निकालते-निकालते हो सकता है पानी कुएँ में रहे नहीं। जो बादल वर्षा करते-करते सफेद हो गए, वे समुद्र से पानी लेकर फिर बरसते हैं। पेड़ फल देता है। फल देते-देते सूख भी जाय तो फिर से हरा-भरा हो जाता है। पानी निकालते-निकालते कुआँ खाली हो गया, ऐसा दिखता है लेकिन रात में सीरें आएँगी तो खाली कुआँ पानी से लबालब हो सकता है। इसलिए एक कहावत प्रचारित हो गई-

चिड़ी चोंच भर ले गई, नदी न घटियो नीर।
दान दियां धन ना घटे, कह गए दास कबीर।।

देने से कमी आ जाएगी, ऐसा मत सोच लेना। ज्ञान है वह भी यदि दिया जाय तो बढ़ता है। यह तो सरस्वती के भण्डार की महिमा है-

सुरसती के भंडार की, बड़ी अपूरब बात ।
ज्यों खरचे त्यों-त्यों बढ़े, बिन खरचे घटि जात।।

ज्ञान दिया नहीं जाएगा तो विस्मृत हो जाएगा। ज्ञान-दान में कभी संकोच मत करना। ज्ञान दें। क्यों दें? आचार्य भगवन्त ने तीन दानों को अखण्ड निर्जरा वाले कहा है। वे तीन दान है- ज्ञान दान, सुपात्र दान और अभयदान। अगर मिथ्यादृष्टि को सम्यग्दृष्टि बनाना है, अधर्मी को धर्मी बनाना है, पापी को पुण्यात्मा बनाना हैं, तो दें। आचार्य श्री हरिभद्र जी की भाषा में कहूँ- "दान सकल जीवलोक में अमरता की घोषणा करता है।"

आप जहाँ है वहाँ संस्कारों का दान करें। आज घर-परिवार में और संघ-समाज में सबसे ज्यादा जरूरत संस्कारों की है। आज आप में से कई लोग हैं जो बातों में बैठ जायें तो घंटों पूरे कर देंगे। तेरी-मेरी में समय जाया

करने में विचार तक नहीं आता। राजनीति की क्या गुत्थियाँ हैं, उनको सुनने व सुनाने में कितना वक्त बर्बाद हो रहा है, इसकी किसी को परवाह नहीं, पर घर के बच्चों को संस्कार देने का न आपके पास समय है और न ही तैयारी। संघ और समाज में समस्याएँ होना नई बात नहीं, लेकिन समस्याओं के समाधान के लिए किसी का कोई चिन्तन नहीं। आप संघ या समाज में अधिकारी हैं, आप जिस दायित्व को लेकर चल रहे हैं, वहाँ कंजूसी नहीं हो।

अगर घर, परिवार और संघ और समाज में धर्म और नीति के संस्कार नहीं दिए और संस्कारों के अभाव में घर का या समाज का कोई सदस्य अधर्मी-अज्ञानी रह गया तो कितना नुकसानदेह होगा? यहाँ बैठे लोगों में से कई ऐसे हैं जो शास्त्र पढ़ते हैं, जानते हैं, बोल और थोकड़े उनको याद हैं परन्तु यदि वे अपने घर के बच्चों को संस्कार देने में सजग नहीं है, तो मान कर चलिये घर में अंधेरा है।

आज एक-एक व्यक्ति कई संस्थाओं से जुड़ा हुआ है। वह संस्थाओं के काम तो देखता है, परन्तु उसे अपने घर के बच्चों से बात करने की फुर्सत नहीं है। आप पिता है, पर जब तक परिवार के बच्चों को संस्कारित नहीं करते हैं तो कैसे पिता हैं? "पाताति पिताः।" संस्कारों का रक्षण करे वह पिता। सन्तानें पशुओं के भी होती हैं, गधों के, कुत्तों के संताने हैं, पर क्या वे पिता कहलाते हैं? मानव, पिता है। इसलिए उसका दायित्व है कि वह अपने बच्चों को संस्कार दे।

आप संघ-सेवी हैं तो स्वधर्मियों के बीच बैठकर धर्म की चर्चा करें, संघ सदस्यों की क्या समस्याएँ हैं, उन समस्याओं को सुनें, समझें और सम्यक् समाधान निकालें तो संघ-सेवी होना और कहलाना सार्थक होगा। घर में बच्चों को, परिवारजनों को और समाज में तथा संघ-सदस्यों को संस्कारों का दान करें। अगर ऐसा करते हैं तो आप इन्द्रनाथ जी मोदी की तरह याद

किए जाएँगे। आपमें से किसी ने न्यायमूर्ति इन्द्रनाथ जी मोदी को देखा है? वे कैसे मधुर संभाषण करते थे। वे छोटे से भी बात करते तो आदर के साथ बोलते और मधुरता के साथ समस्या का समाधान, जो सबको जंचे और रुचे, उसके अनुसार देते। आज आप घर पर बच्चों को कहीं तूकारे-रेकारे से तो संबोधित नहीं करते हैं? किसी बच्चे को बुलाना हो तो कहते हैं- "अठी आइजे।" एक बार, दो बार कहने पर भी बच्चा नहीं आए तो कई हैं जो बोल जाते हैं- "कठे बलियो, बोलो है काँई, सुणिजे कोनी।"[1] आज घर-घर की स्थिति विचित्र है। बड़ों का मान कम हो रहा है, छोटों का मन नहीं रखा जा रहा है तो कहना होगा "महलां बैठी कहे, उकरड़ी बैठ सुणे।"[2] कुएँ में जैसी आवाज दी जाएगी, लौटकर वैसी आवाज आएगी। आपकी भाषा मधुर होगी, ऊँची होगी, अच्छी होगी तो बच्चों में वैसे संस्कार बनेंगे। आप स्वयं बोलने में विवेक न रखो और चाहो कि बच्चे मधुर बोलें, धीरे बोलें, अच्छा बोलें तो यह नहीं हो सकता। बच्चे बड़ों की नकल करते हैं। आपमें से कुछ ऐसे भी मिलते हैं, जिन्हें कहा जाता है ज्यादा ऊँची आवाज में नहीं बोलना। उनका जवाब होता है- "बाबजी! म्हारी तो आवाज ही बुलन्द है, धीरे तो बोलीजे कोनी।" क्यों? आपका अपनी आवाज को बुलन्द कहना ठीक नहीं है। कारण है कि आप अपने खास लोगों के साथ समय-समय पर कानाफूसी भी करते हैं। बहुत धीरे बातें भी करते हैं। आप जैसा मौका देखते हैं, वैसा आपको बोलना आता है। बुलन्द आवाज कहना तो बहाना है। दुकान पर कोई सेल्स टैक्स या इन्कम टैक्स का इन्सपेक्टर आ जाय तो उसके साथ कैसे बात करते हैं? मुझे कहना इतना ही है कि आप बच्चों को अच्छे संस्कार दें। जरूरत है आप अपना आचार-व्यवहार सबके साथ मधुर रखें। जिस घर में संस्कारों की अमर बेल होगी, वह घर स्वर्ग-सा होगा।

मैंने जज साहब जसराज जी चौपड़ा को देखा है। उनके माताजी-पिताजी जब थे, उस समय का तो मुझे ध्यान नहीं, पर कोर्ट जाते

समय वे बड़े भाई साहब को नमस्कार करके जाते। आपके किन-किन घरों में यह रिवाज है। जलगाँव के सुरेश दादा सोने से पहले माँ के पैर दबाकर सोते। महाराष्ट्र शासन में मंत्री रहे, मिल के मालिक और नगर के अध्यक्ष जैसे पदों पर रहे, किन्तु माँ के पैर दबाए बिना नहीं सोते। जिस घर में ऐसा वातावरण हो तो आने वाली नई बहू को कहने की जरूरत नहीं पड़ती, वह स्वतः ही ऐसा आचरण करेगी।

मुझे कहना है- ज्ञानदान एकान्त निर्जरा का कारण है। सुपात्रदान और अभयदान भी एकान्त निर्जरा का कारण है। आपने दान के विषय में बहुत सुन रखा है। एक चोर को फाँसी की सजा हो गई। जिस राजा ने फाँसी की सजा का हुकम दिया, उसके चार रानियाँ थी। चारों रानियों को लगा- राजा साहब ने फाँसी की सजा दी, यह ज्यादा है। एक रानी ने कहा- महाराज! गुनाह सबसे होता है, चोर ने गुनाह किया, उसे माफ कर देना चाहिए। अभयदान सबसे बड़ा दान है। जीव-रक्षा, जीव-दया, जीव पर अनुकम्पा सबसे श्रेष्ठ दान है। अभयदान को सर्वश्रेष्ठ दान कहा गया है।

दूसरों की दया श्रेष्ठ है, पर दूसरों की दया के साथ अपनी दया भी करें। अपने-आपको अभयदान देना, पाप से निवृत्ति करना है। मैंने तीन करण - तीन योग से हिंसा का त्याग कर लिया। जीव चाहे सूक्ष्म हो, बादर हो अथवा त्रस हो या स्थावर हो, सब जीवों की हिंसा का त्याग कर दिया, अभयदान दे दिया, फिर आगार की जरूरत नहीं।

एक है- सुपात्र दान। संसार का प्रत्येक जीव शांति चाहता है। हर जीव सुख चाहता है, समाधि चाहता है। भगवती सूत्र स्पष्ट करता है कि तथारूप श्रमण-निर्ग्रन्थ को दान देने वाला एकान्त समाधि प्राप्त करता है। जो दूसरों को साता पहुँचाए, सुख समाधि पहुँचाए तो निश्चित मानकर चलिये समाधि देने वाला स्वयं समाधि पायेगा। सुपात्रदान सरल है। अनुभवियों की भाषा में कहूँ- सुपात्रदान समकित दिलाने वाला है। सुपात्रदान शालिभद्र

बनाने वाला है। सुपात्रदान तीर्थंकर नामकर्म गोत्र का उपार्जन कराने वाला है। सुपात्रदान सिद्ध बनाने वाला है। आपने पाया है तो दें। भावना से दें। मुट्ठी बन्द रखने के बजाय खुले हाथ से दें। किसी दीन-दुःखी को, गरीब को, भूखे को देखकर उसका तिरस्कार न करें, बल्कि आपके पास जो है उसमें से कुछ दें।

यह दान-धर्म आज से है, ऐसा नहीं है। यह तो अनादि धर्म है। धर्म-तीर्थ की स्थापना नहीं हुई तब भी दान-धर्म था। अज्ञानी-मूढ़ तक भी बिना माँगे कुछ-न-कुछ देते थे। उन्हें कोई बताने, सिखाने, पढ़ाने नहीं आया। चींटी को आटा डालते हैं, चीलों को बड़े लुटवाते हैं, पक्षियों को दाना-चुग्गा देने की परम्परा वर्षों पहले की है। कहना होगा- जब से मानव है, तभी से दान धर्म है। नीतिकारों ने कहा- सूरदास चलते-चलते गड्ढे में गिरने लगा, पास में बैठा एक व्यक्ति देखता रहा पर उसे आगाह नहीं किया तब दूर बैठा तीसरा बोल उठता है- "उस बेचारे की तो आँखें नहीं है, तुम्हारी आँखें कहाँ गई?" तुम्हारा कर्त्तव्य क्या है?

आपको तैरना आता है। आप तालाब के किनारे खड़े हैं। आपके देखते-देखते कोई बच्चा डूब रहा हो तो उस समय आपका क्या कर्त्तव्य है? आप न जात देखेंगे, न पाँत, छोटा-बड़ा, गरीब-निर्धन देखे बिना डूबते बच्चे को बचायेंगे, पानी से बाहर निकालेंगे। कोई भूखा है, आपके पास टिफिन भरा हुआ है, उस समय क्या करना चाहिये? क्या उसे देने से मना कर देना चाहिए?

आपके पास है तो घर के दरवाजे खुले रखिये। दान से बढ़कर कोई धर्म नहीं है, यह तिरने का रास्ता है। आप सुख चाहते हैं तो दान करें। दान चाहे ज्ञान का हो, संस्कारों का हो, अभयदान या सुपात्रदान हो, अगर है तो दें। जिसने दिया है, उसने पाया है। देने वाले को मिलता है। कोई भीखमंगा है

वह आपके घर माँगने ही आया है, एकान्त ऐसा नहीं कहा जा सकता। वह यह कहने आया है कि मैंने कभी दिया नहीं, इसलिए आज मैं भीखमंगा हूँ, आपके द्वार पर हाथ फैला रहा हूँ। आपने पाया है तो दे दें, नहीं तो आपको भी एक दिन माँगना पड़ेगा। आप यदि खुशहाल रहना चाहते हैं तो दें।

आज दान-दिवस है। सुपात्र दान में केवल संत ही नहीं आते। सुपात्र दान में साधु, श्रावक और सम्यग्दर्शनी तीनों आते हैं। साधु को आप देते हैं, देना चाहिए पर स्वधर्मी बन्धु भी आपसे अपेक्षा रखते हैं। आप शादी-विवाह में पार्टियों में सौ-डेढ सौ आयटम बनाकर, बारात को हवाईजहाज से बुलाकर न जाने क्या-क्या करते हैं, पर स्वधर्मी बन्धु जो धर्म से डिगायमान हो रहा है उसके लिए क्या करते है? इस पर भी कुछ चिन्तन करें। आपने वासुदेव श्री कृष्ण का जीवन सुना है। उन्होंने घोषणा करवा दी- "जो भी संयम लेना चाहें वे ले लें, मैं उनके परिवार की देख-रेख करूँगा।" धर्मी, धर्म में कठिनाई महसूस कर रहा है, ऐसे समय में आपका दान, उसे धर्म में स्थिर कर सकता है। दान से आप मोक्ष-मार्ग में आगे बढ़ सकते हैं । जो देगा, पाएगा। आप ज्ञान दान दीजिये, सुपात्रदान दीजिए, अभयदान दीजिए। दान देने वाला सुख, शांति और आनन्द प्राप्त करेगा।

जोधपुर
29 अगस्त, 2011

संदर्भ

1. कहाँ मर गया, बहरा है क्या, सुनता नहीं।
2. महलों में बैठा जो दूसरों को छेड़ता है, वह कचरें के ढेर पर बैठे हुए से बुरा भला सुनता है। जो दूसरों को अपशब्द कहता है, उसे बदले में बुरा-भला सुनना पड़ता है, चाहे वह कितना ही बड़ा क्यों न हो।

संयम है शिव सुखदाता

संयम-साधना से आठों कर्मों को तोड़कर अविचल पद प्राप्त करने वाले सिद्ध भगवन्त, बाहर-भीतर यथाख्यात चारित्र वाले जैसा कहते वैसा आचरण करने वाले अनन्त ज्ञानी अरिहन्त भगवन्त, संयम की साधना में अपने-आपको लगाने वाले संत भगवन्तों के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन!

बन्धुओं!

तीर्थंकर भगवान् महावीर की आदेय-अनमोल वाणी में पच्चीस सौ वर्ष बीत जाने पर भी जीवन-निर्माण के जो सूत्र बताये गये हैं वे कभी पुराने नहीं होते। हजारों वर्ष बीतने पर भी जिनवाणी के वे सूत्र, आज भी उतने ही उपकारी हैं जितने उस समय थे। घी में चिकनाहट होती है। नमक में खारापन होता है, मिर्च तीखी होती है, शक्कर मीठी होती है, जैसे ये सत्य हैं, इनमें कोई अनुभव की विचित्रता या भिन्नता नहीं है इसी तरह संयम में समाधि है, संयम में शांति है, संयम में सुख है यह भी उतना ही सत्य है। खाने से भूख मिटती है, पीने से प्यास बुझती है, चलने से मंजिल प्राप्त होती है, जैसे ये सही है इसी तरह संयम शोभा है, संयम जीवन है, संयम सुख वाला है, यह बात भी उतनी ही सत्य है।

'यम' धातु से संयम शब्द बना है। यम का अर्थ है कन्ट्रोल करना, नियमन करना, काबू करना। दुराचरण पर नियन्त्रण कर सद्प्रवृत्ति में अच्छी तरह से नियमन करना संयम है। कन्ट्रोल या काबू करना अनेक तरह का

होता है। बुराई पर भी कन्ट्रोल होता है और अच्छाई पर भी। अति सब जगह खराब होती है। "अधिको भलो न बोलनो, अधिकी भली न चुप।" ज्यादा बोलना खराब है, तो ज्यादा चुप रहना भी खराब है। अधिक बरसना खराब है, तो अधिक अकाल भी खराब है। "अति सर्वत्र वर्जयेत्।" हर स्थिति को काबू करें। कोई काम इतना न करो जिससे तुम असमाधि में चले जाओ। किसी को ऐसा मत कहो जिससे वह धर्म को छोड़कर आर्त्त-ध्यान में चला जाय। तप क्या है? आहार का संयम भी तो तप है जो अनशन-ऊनोदरी आदि के रूप में कहा गया है। ऐसा तप प्रतिदिन करो। कितना करो? उतना करो जिससे तुम्हारी साधना, दिनचर्या और रोजमर्रा का काम बाधित न हो। यदि कोई साधु है तो वह ज्ञानाराधना कर सके, सेवा के लिए चलना पड़े तो चल सके, गवेषणा के लिए बोलना पड़े तो बोल सके, परिष्ठापन की क्रिया समाधिपूर्वक हो सके, स्वाध्याय में अंतराय नहीं आवे तब तक तप करे। हाय-हाय करते, आर्त्तध्यान आ जाय, ऐसी तपस्या नहीं करनी चाहिए। वैसी तपस्या को अति कहा गया है। यह एक तथ्य है कि तप एकान्त निर्जरा का कारण है तथा समस्त रोगों का इलाज भी उपवास है। 'लंघनं परमौषधम्" अर्थात् रोग होने पर उपवास करना सर्वोत्तम औषधि है।[1]

विकृति चाहे शरीर की हो या मन की, तप दोनों विकारों का नाश करता है। आचार्य भगवन्त की अनुभवपूर्ण वाणी में कभी सुना था- पति के परदेश जाने पर घर की बहू ने श्वसुर से कहा- "हमारे घर का यह बूढ़ा नौकर ठीक से काम नहीं करता। इसे बदलकर जवान नौकर रखना चाहिये।" श्वसुर ने सोचा- "शायद पति के परदेश जाने के कारण और कई महीनों से लौटकर नहीं आने के कारण बहू के मन में विकार बढ़ रहे हैं, इसलिये यह इस तरह की बात कह रही है।" श्वसुर ने कहा- "मैं कोई न कोई इन्तजाम करता हूँ।" श्वसुर ने इन्तजाम की बात बहू से कह दी, लेकिन बहू के यह पूछने पर कि भोजन में क्या बनाऊँ तो श्वसुर ने कह दिया-

"आज मेरे उपवास करने के भाव हैं, मेरे लिए कुछ मत बनाना।" घर में दो ही आदमी हैं, श्वसुरजी ने खाना बनाने का मना कर दिया तो मेरे अकेले के लिए बनाकर क्या करूँगी, ऐसा विचार कर बहू ने भी उपवास कर लिया। दूसरे दिन पारणे का पूछा तो कह दिया- "आज बेला है।" बहू ने भी बेला कर लिया। फिर पारणे का पूछा तो श्वसुर ने कह दिया- "मैंने तेला कर लिया है।" बहू ने भी तेला कर लिया। फिर श्वसुर जी ने कहा- "मैंने आज नया आदमी बुलाया है।" बहूजी का तपस्या करने से विकार समाप्त हो गया था। वह बोली- "घर में अपन दो ही सदस्य हैं, दो का कितना-सा काम है, मैं ही संभाल लूँगी। नए आदमी की जरूरत नहीं।" तात्पर्य यह है कि तप ने तन के साथ मन के विकार को भी समाप्त कर दिया। अतः तप, शरीर के विकारों को ही कम नहीं करता, मन के विकारों को भी हटाता है। संयम ऐसी औषधि है जो आदमी को कहीं भी किसी भी स्थिति में असमाधि में नहीं डालती। सौ बार नहीं कहने वाली बातें भी कोई कह दे तो आप हँसते-हँसते सुन सकते हैं। तीर्थंकर भगवान् महावीर ने संयम को समाधि का सूत्र कहा है। आचार्य भगवन्त (पूज्य श्री हस्तीमल जी महाराज) की भाषा में कहूँ-

अन्य नहीं है शिव सुख दाता, शिव सुख दाता संयम है।
जन्म-मरण की महाव्याधि का, मूल मिटाता संयम है।।
जग के सारे रिश्ते झूठे, सच्चा नाता संयम है।
स्नेही, सुहृद्, भाई अरु भगिनी, माता-पिता सब संयम है।।
मानो या मत मानो कोई, भाग्य-विधाता संयम है।
विषय-विकारों की बूँदों से, रक्षक छाता संयम है।।
आत्मा का परमात्मा से, यह मेल मिलाता संयम है।
स्वर्ग-मोक्ष के जितने भी सुख, सब दिलवाता संयम है।।

शास्त्र तो यहाँ तक कह रहा है- तुम घर में समाधि लाना चाहो, परिवार में शांति से जीना चाहो, समाज में सुख से रहना चाहो, संघ में स्नेह

बढ़ाना चाहो तो संयम करना सीख-लो। सुख-शांति के लिए सौ औषधियाँ नहीं बताई जा रही है, हजार वैद्यों की बात नहीं कही जा रही है एक संयम ही सब तरह की समाधि कर सकता है। एक पोस्टर देखने का अवसर आया। लिखा था- "सौ तालों की एक चाबी, सैकड़ों रोगों का एक इलाज।" वह चाबी कौनसी है? वह चाबी है संयम की। वह इलाज कौनसा है? वह इलाज है-संयम।

आपका जिससे मन दुःख पाता है, तेवर चढ़ते हैं तो ऐसा सुनना या बोलना दूसरों के लिए बंद कर दीजिये। अगर गाली सुनना आपको पसन्द नहीं है तो दूसरों को भी गाली मत सुनाओ। यह नोट करके चलना- शायद कैमरे की रील खराब हो सकती है, मोबाइल खराब हो सकता है, लेपटोप खराब हो सकता है, पर कर्म की यह रील कभी खराब हुई नहीं, खराब होगी नहीं। कुएँ में जैसी बोली बोलेंगे वैसी ही प्रतिध्वनि आयेगी। आप घर में गाली बोलो और चाहो कि बेटा गाली नहीं बोले तो यह होने वाला नहीं है। आप गाली देना बंद कर देंगे तो बेटे की गालियाँ बन्द हो जायेंगी। आप ऐसा करके देख सकते हैं। आपके मन की शांति, प्रसन्नता, हँसता चेहरा सामने वाले पर भी असर डालेगा ही।

मैं कोई लम्बा-चौड़ा सूत्र नहीं कह रहा हूँ। अगर कोई आपके सामने आप में कमी की बात कहे, कड़वी बात बोले, आपको नागवार लगे वैसी बात कहे तो आपको अच्छी नहीं लगती। वह चाहे एकान्त में भी क्यों न कहे, आपको ऐसी बात अच्छी नहीं लगती। कहने वाला शूगर कोटेड टोंट मारते हुए भी कहे तो भी अच्छी नहीं लगती। लेकिन बात को यदि प्रेम से कहे, आत्मीयता से रखे तो उस बात का असर हुए बिना नहीं रहता। मान लो आपने किसी को ऐसी जगह देखा जो योग्य नहीं है, व्यसन का स्थान है, चाहे जुआघर हो या शराबघर अथवा कोई अश्लील घर, लेकिन वहाँ देख

कर भी उसे सीधा कहना ठीक नहीं। उसे आप इस तरह कहें कि आप जैसे धार्मिक आदमी को मैंने अमुक जगह देखा, क्या आप वहाँ खड़े थे या मेरा यह वहम है। आप यदि इस रूप में कहें कि "हो सकता है मुझे वहम हो गया हो, वास्तविकता क्या है बताना चाहें तो बतायें।"

आप घर में रहते हैं। परिवार में कोई बुराई है, उस बुराई को मिटाने के लिए भी कहना पड़ता है, बिना कहे काम चलने वाला नहीं है, पर कहना कैसे? तीखे शब्दों में कहें तो हो सकता है परिवार के सदस्य सुनें, न भी सुनें और यह भी हो सकता है कि वे वापस सुनाने को तैयार हो जायें। आप कहिये, पर युक्तिसंगत कहिये। कुछ लोग कह सकते हैं कि बुराई मिटाने के लिए इतनी मिठास में क्यों कहें? किन्तु आप अपने को दृष्टिगत रखकर सोचें कि आपको जब कोई कड़वी कहे तब वह आपको इष्ट नहीं लगती तो दूसरों को कड़वी बात कहना कहाँ तक ठीक है? आपने भी सुना होगा- "दुर्जन की सक्रियता उतना नुकसान नहीं करती जितनी सज्जन की निष्क्रियता नुकसान करती है।" इसलिए जहाँ आवश्यक हो तो वहाँ कहना तो पड़ेगा ही, पर युक्ति से।

वर्धमान महावीर ने दीक्षा ले ली। दीक्षा लेने के बाद साढ़े बारह वर्ष तक दुःख देने वाले, कष्ट-पीड़ा पहुँचाने वाले, परीषह देने वाले, निरन्तर अनेक प्रसंग आये, लेकिन संयम-समता के कारण बीस-बीस परीषह देने वाले संगम को भी हाथ जोड़कर जाना पड़ा।

आप वर्षा में छतरी लेकर निकलते हैं। इसी तरह संयम को साथ लेकर चलिये, फिर आप चाहे घर में रहें, चाहे परिवार में या संघ-समाज में रहें, प्रेम-आत्मीयता से उत्थान की बात कहते जाइये, आपको सब जगह आदर मिलेगा।

घी है तो चिकनाहट रहेगी। आप उसमें पचास चीजें मिला दें,

चिकनाहट कम नहीं होगी। नमक में सौ चीजें मिलाएँ तो क्या खारापन कम हो जायेगा? नमक खारा है, खारा ही रहेगा। संयम है वहाँ सुख रहेगा। अगर कोई परायों के साथ चल रहा है, काजल की कोठरी में है, अनार्य देश में चला गया है, वहाँ भी वह संयम के साथ है तो राक्षस वृति वाले भी आपका कुछ बिगाड़ नहीं सकते। चन्दनबाला राजमहल में थी, बाजार में बिक रही थी, कोठरी में कैद थी तब भी उसने संयम नहीं छोड़ा। चंदनबाला भगवान् महावीर के शासनकाल में साध्वीप्रमुखा बनी। जब तक यह अवसर्पिणी काल रूप संसार चलेगा, तब तक चन्दनबाला का नाम गाया जायेगा।

संयम की कोई परिधि नहीं है। कान, आँख, नाक, मुँह का संयम, मन-वचन-काया का संयम, किसी भी इन्द्रिय के विषय में हर जगह विवेक के साथ चलिये, आपके कर्म कटते चले जायेंगे। संयम छूट गया तो फिर चाहे जितने ऊपर बढ़े हों गिरना निश्चित है। ज्ञान में दो-चार शास्त्र नहीं, बतीस शास्त्र नहीं, चौदह पूर्वों का ज्ञान कर लिया, इतना सब कुछ कर लेने के बाद भी अगर संयम छूट गया तो गिरना निश्चित है। चढ़ते-चढ़ते कोई पहाड़ की चोटी पर चढ़ गया, किन्तु असंयम से फिसल गया तो कहाँ जायेगा? नीचे ही गिरने वाला है। मैं छः-सात साल का था। नागौर के चारों ओर हाथियों को रोकने वाले बड़े दरवाजे बने हुए हैं। दरवाजों में लोहे की तीखी-तीखी कीलें लगी हुई थीं। दरवाजे को हाथी तोड़ना चाहे तो कीलों के कारण तोड़ना कठिन हो जाता था। मैं दरवाजे के ऊपर चढ़ गया। हाथ छूटा, गिर गया। गिरते ही दरवाजे को रोकने के लिए लगी नुकीली कील लगी, माथा फूट गया। इतना बड़ा खड्डा हुआ कि ललाट में तीसरी आँख बन गई जिसका निशान आज भी विद्यमान है।

अगर कोई पूछे कि सहन कब तक करें? इस संयम की सीमा क्या है? अगर कोई मिथ्याभाषण करे, निन्दा करता रहे, कलंक लगाता जाये तो

कहाँ तक सुनें? सुनने की जब भी बात आती है प्रायः लोग पूछते हैं कहाँ तक सुनना? सुनना संयम के लिए जरूरी है। सुनते जाओ जब तक यह शरीर है, आयु है अथवा तब तक जब तक मंजिल नहीं मिल जाये।

झूठ, झूठ है, सत्य-सत्य है। हो सकता है सूरज को बादल आच्छादित कर दें। सूरज के मार्ग में गहरे बादल छा जाने पर भी दिन, दिन है। जीव निगोद में चला जाये, एक शरीर में अनन्त-अनन्त जीव रहें फिर भी जीव, जीव रहेगा जीव कभी अजीव नहीं हो सकता। इसी तरह धर्म, धर्म रहेगा। सहनशीलता, सहनशीलता रहेगी, संयम, संयम रहेगा। हो सकता है कुछ बंधे कर्म ऐसे हैं जिनके कारण मिथ्या आरोप भी सुनने पड़ सकते हैं। भगवान् महावीर को भी सुनने पड़े थे। उनको चोर समझ कर फाँसी पर लटका दिया था, लेकिन वे भी संयम में दृढ़ रहे।

सत्यवादी हरिश्चन्द्र पर कितने संकट आए? राजपाट छूट गया, पत्नी तारा बिक गई, हरिजन के वहाँ पानी भरना पड़ा, श्मशान में रहना पड़ा, तब भी सत्य, सत्य ही रहा। कहूँ आगे- हरिश्चन्द्र आपके क्या लगते हैं? क्या आपकी जाति के हैं, या न्यात के हैं? कोई रिश्तेदारी है या कोई लेनदेन का व्यवहार है? आपको तो अपने बडेरों के नाम तक याद नहीं है। जोधपुर के कितने दरबार कब-कब हुए, आपको ये सब याद नहीं, पर किसी तरह का कोई भी संबंध नहीं होने पर भी शायद सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र का नाम आपको क्या, छत्तीस कौम को याद है। क्यों? सत्य बोलने वाले बहुत हैं, परन्तु हरिश्चन्द्र का ही नाम क्यों याद रखा जा रहा है? क्योंकि सत्य के पीछे राजा हरिश्चन्द्र ने जो बलिदान किया, वैसा अन्य किसी ने नहीं किया। उन्होंने सत्य का संयम नहीं छोड़ा।

राजा हरिश्चन्द्र भगवान महावीर के भी पहले हुए थे। करोड़ों वर्ष हो गये, फिर भी उनका नाम आज भी गाया जा रहा है, उसके पीछे कारण है

संयम। यह संयम दया का भी है, सत्य का भी है, शील का भी है, सन्तोष का भी है। संयम की कोई सीमा नहीं।

स्वभाव में आने का जो रास्ता है वह है संयम। जिस क्रिया से, चिन्तन से, व्यवहार से, आत्मा अशुभ से हटकर शुभ में एकाकार होती है वह संयम है। यम अर्थात् काबू करना। ऐसे-ऐसे लोग हैं जो जीवन भर मौन कर लेते हैं, जीभ खींच लेते हैं। पैर बुरे रास्ते पर जा रहे हैं तो पैर काट लेते हैं। यह यम है, संयम नहीं। व्यक्ति की इन्द्रियाँ मौजूद हैं, साधन मौजूद हैं, फिर भी वह मर्यादा में रहता है, स्वभाव में रहता है, सत्य पर रहता है, धर्म में रहता है, यह है संयम।

आप जहाँ भी रहो, संयम में रहो। सुखी रहना चाहो तो संयम में रहो। आज स्थिति कुछ दूसरी है। कोई किसी की बुराई करे, आप पास में आकर कहते हैं- वापस कह, मुझे सुनाई नहीं दिया। आज आप बुराई सुन रहे हैं तो दूसरों की सुनते-सुनते आपकी बुराई भी कभी आपको सुननी पड़ेगी। आचार्य भगवन्त शोभाचन्द्र जी महाराज के शब्दों को याद करें- "बुराई से तेरी जुबान खराब होगी और सुनने से मेरे कान।" अतः वाणी पर संयम रखो।

शास्त्र कहता है- "जो निन्दा करता है वह सम्यग्दर्शनी नहीं।" जब सम्यग्दर्शन का ही पता नहीं तो फिर श्रावक और साधु तो बहुत ऊँची बात है। श्रावकत्व एवं साधुपन महल हैं जिसकी नीव है समकित। जब नींव का पता नहीं तो इस पर महल कैसे ठहरेगा?

एक सूत्र सबके लिए है। हर आदमी सुख-शांति और समाधि चाहता है। किसी के पास धन है या नहीं, मकान है या नहीं, वह जिस किसी स्थिति में है, सुख चाहता है। किन्तु वह सुखी कब रह सकता है? अगर उसमें संयम है तो। आपने चाहे जितना कर लिया, संयम नहीं तो दुःख का साम्राज्य समाप्त नहीं होगा। छः खण्ड का राज्य मिल गया तब भी संयम नहीं

तो सुख नहीं, वहाँ भी दुःख ही है। आप नोट कर लें- "असंयम है तो दुःख है, संयम में सुख है।"

जिस कोणिक का नाम भगवान् महावीर की पर्युपासना के सन्दर्भ में उववाइ सूत्र के माध्यम से संत-सतीवृन्द लिया करते हैं, असंयम के कारण वही कोणिक चक्रवर्ती बनने की चाह में हाय-हाय करते मरता है।[2] कुंडरीक जब तक संयम में था, सुखी था, किन्तु असंयम की चाह में राज पाकर भी मात्र तीन दिन के असंयम से उसकी क्या गति हुई, आप जानते हैं।[3]

आप कोशिश कीजिये जिससे जीवन में संयम आए। उपवास आज है, कल पारणक कर लेंगे। उपवास हो, बेला हो, तेला हो, आठ हो, मासखमण हो, तपश्चर्या कोई भी क्यों न हो, पारणक तो होगा ही, लेकिन खाने की तृष्णा पर, इच्छाओं पर संयम करेंगे तो सुखी रहेंगे। कषाय पर संयम करेंगे तो जीवन भर के लिए समाधि में रहेंगे। कषाय-त्याग चार महीने या एक वर्ष तक ही नहीं, जीवन भर के लिए हो सकता है। यह तप पूरे जीवन तक किया जा सकता है। कषाय-त्याग की भावना वाले रोज आते हैं, नियम करते हैं। आपको कषाय-त्याग की बात जँची, तो क्या करें? आप बोलने में संयम करें। मैं अपनी बात कहूँ, शास्त्र मेरे लिए कह रहा है-

बहुं सुणेइ कण्णेऋह, बहुं अच्छीऋह पिच्छइ।
न य दिट्ठं सुयं सव्वं, भिक्खू अक्खाउमरिहइ।।

-दशवैकालिक सूत्र 8/20

मैं न जाने कितने घरों में जाता हूँ। सुनता हूँ, देखता हूँ, लेकिन सुनी या देखी सभी बातें कहने की नहीं होती। आप संघ में हैं, संघ में अमीर हैं, गरीब भी हैं, सज्जन हैं तो विपरीत वृत्ति के भी लोग हो सकते हैं। फूल की जगह फूल है, कांटों की जगह कांटे भी हैं। सबका सही मूल्यांकन कर यथोचित व्यवहार करें तो अच्छा रहेगा। गुरुदेव का एक सूत्र कहकर अपनी बात समाप्त करूँ। आदिनाथ दीक्षा लेने गये तब उनके साथ चार हजार

राजकुमार निकले। उस समय सात्विकता थी, सरलता थी। मैं आपसे पृच्छा करूँ कि उस युग में गुण्डे कितने, चोर कितने, लुच्चे-लफंगे कितने, डाकू कितने, बदमाश कितने, शीलहरण करने वाले कितने थे? तब चार हजार दीक्षित हुए थे। आज का हिसाब देखें तो गुण्डे आज ज्यादा हैं या पहले ज्यादा थे? अभी संतों की ज्यादा जरूरत है या उस समय ज्यादा थी? अब यदि ज्यादा जरूरत है तो आप क्यों नहीं संयम के मार्ग पर निकलते हैं?

आज स्थान-स्थान पर माँग होती है कि हमारे यहाँ पुलिस चौकी होनी चाहिये। शस्त्रधारी सेना की आज माँग है तो शास्त्रधारी सेना की भी जरूरत है, क्योंकि आज सज्जनता की विपरीतता वाले राक्षस ज्यादा हैं। राक्षस ज्यादा क्यों हैं? बेईमान ज्यादा क्यों हैं? भ्रष्टाचारी क्यों बढ़ रहे हैं? लूटपाट-चोरी-गुण्डागिरी और बहन-बेटियों के साथ दुर्व्यहार जितना आज है, पहले नहीं था। आज पढ़े-लिखे ज्यादा हैं उतने ही अपराध बढ़ रहे हैं। आप दूसरों को सुधारने के लिए कदाचित् कुछ नहीं कर सकते तो कम-से-कम अपने घर में तो ऐसा संयम रखें जिससे लड़ाई नहीं हो। "खामेमि सव्वे जीवा" दूर की बात है, पहले घर में, परिवार में, मोहल्ले में तो संयम से रहें। घर में कोई भोला है, कोई चतुर है, कोई मूर्ख है, कोई पढ़ा-लिखा है, कोई आँखों वाला है तो कोई अंधा भी हो सकता है। घर है तो कोई लूला-लंगड़ा भी हो सकता है। परन्तु घर-परिवार में संयम रखकर चलने वाले सब जगह शांति में रहेंगे। आप पूरा संयम ग्रहण करना चाहें तो पाटे पर आ जाएँ। घर में रहें तो शांति से रहें, समाज में रहें तो प्रेम से बोलें। केकड़ी में 45 साल तक एक अध्यक्ष रहा। मीटिंग में कोई विरोध की बात आती तो मीटिंग रोक देते और दूसरे दिन अध्यक्षजी विरोध करने वाले के घर पर जाते, उसकी बात सुनते और समाधान करते, पर जो भी नियम पास होता निर्विरोध होता।

आप संयम में रहना सीख जाओ तो दुःख का कारण रहेगा क्या?

आप संयम को अपनाएँ तभी शांति-समाधि प्राप्त कर सकेंगे।

जोधपुर
30 अगस्त, 2011

संदर्भ

1. राजा भोज की विद्वत्सभा में एक महान् आयुर्वेदज्ञ वाग्भट्ट थे, जिन्हें लोग मूर्तिमान धनवन्तरि कहते थे। कहते हैं कि वागभट्ट की कीर्ति सुनकर एक बार अश्विनी कुमार, जो देवताओं के महान् चिकित्सक थे, एक रोगी का रूप धारण कर वाग्भट्ट के द्वार पर आये और उनसे पूछा- ''वैद्यराज! मुझे एक औषधि बताइए जो न पृथ्वी पर उत्पन्न होती है, न आकाश में, न पानी में पैदा होती है और न बाजार में ही बिकती है, फिर भी सभी शास्त्रों में उसका वर्णन है। वह औषध क्या है? वाग्भट्ट ने चिन्तन कर उत्तर दिया-

   अभूमिजयनाकाशं पत्थं रसविवर्जितम्।
   पूर्वाचार्यैः समाख्यातं लंघनं परमौषधम्।।

   अर्थात् पृथ्वी एवं आकाश में नहीं होने वाली, जल बिना (रस रहित) उत्पन्न होने वाला जो पथ्य है, पूर्वाचार्यों ने जिसकी प्रशंसा की है वह सर्वोत्तम औषध है- उपवास।

2. चेटक के साथ वैशाली के युद्ध में श्रेणिक पुत्र कोणिक ने वैशाली पर विजय प्राप्त की। वैशाली के उस युद्ध में उसने 'महाशिला कंटक' और 'रथमूसल' अस्त्रों का उपयोग किया। उन युद्धास्त्रों को पाकर कोणिक अपने आपको विश्व विजयी और अजेय समझने लगा और उसके सिर पर चक्रवर्ती बनने की धुन सवार हो गई। फिर भी कोणिक भगवान् महावीर का परम भक्त था। वह भगवान् के पास गया और वन्दन कर भवगान् से पूछा-''भगवन्! क्या मैं भरत क्षेत्र के छह खण्डों को जीतकर चक्रवर्ती बन सकता हूँ?'' भगवान् ने कहा- ''नहीं कोणिक, तुम चक्रवर्ती नहीं बन सकते क्योंकि इस अवसर्पिणी काल में बारह चक्रवर्ती हो चुके हैं, तेरहवाँ नहीं बनसकता'' परन्तु कोणिक महत्त्वाकांक्षा में प्रभु के कहने के बाद भी संयम खो चुका और षट्खण्ड विजय के लिए निकल पड़ा। वह अनेक देशों को अपने अधीन करता हुआ तिमिस्र गुफा के द्वार पर पहुँच गया। अष्टम भक्त तप कर उसने गुफा के द्वार पर दण्ड प्रहार किया।

   द्वार रक्षक देव ने पूछा- ''द्वार पर कौन है?'' कोणिक ने उत्तर दिया- ''चक्रवर्ती अशोकचन्द्र।'' देव ने कहा- ''चक्रवर्ती तो बारह ही होते हैं और वे हो चुके हैं।'' कोणिक ने कहा- ''मैं तेरहवाँ चक्रवर्ती हूँ।'' इस पर द्वार रक्षक देव ने क्रुद्ध होकर हुंकार भरी

और कोणिक तत्क्षण वहीं भस्मसात हो गया। मर कर वह छठे नरक में उत्पन्न हुआ। महावीर का परम भक्त होते हुए भी तीव्र लोभ के उदय से वह संयम खो चुका और दुर्गति का अधिकारी बना।

3. ज्ञाताधर्मकथांग के उन्नीसवें अध्ययन में उत्थान और संयम से पतन का एक सजीव कथानक आया है। महाविदेह के पूर्वी भाग में पुण्डरीकिणी नगरी में महापद्म राजा के दो राजकुमार थे- पुण्डरीक और कुण्डरीक। एक बार वहाँ धर्मघोष स्थविर का पदार्पण हुआ। धर्मदेशना सुनकर महाराजा महापद्म दीक्षित हो गये और ज्येष्ठ पुत्र पुण्डरीक राज्य सिंहासन पर आसीन हुए। एक बार पुनः धर्मघोष स्थविर का वहाँ आगमन हुआ। उनकी देशना सुनकर राजकुमार कुण्डरीक दीक्षित हो गये।

कुण्डरीक मुनि देश-देशान्तर में विचरण करने लगे, किन्तु रूक्ष आहार से उनका शरीर रूग्ण हो गया। बहुत काल के बाद मुनि कुण्डरीक पुण्डरीकिणी नगरी में आये। वहाँ पुण्डरीक राजा ने उनके लिए मुनिधर्म के अनुकूल उपचार की व्यवस्था कर दी। मुनि कुण्डरीक कुछ ही समय में पूर्ण स्वस्थ हो गये, किन्तु वे विहार के प्रति उपेक्षा करने लगे। वे राजसी भोजन-पान में आसक्त हो गये।

पुण्डरीक महाराजा उनकी आसक्ति को समझ गये। कुण्डरीक मुनि की आत्मा को जागृत करने के लिए एक बार राजा पुण्डरीक ने उनके पास जाकर वन्दन किया और कहा- "आप धन्य हैं मुनिवर! आपने अपना मनुष्य जन्म सफल किया है और विषय-कषायों के बन्धन को तोड़कर संयम साधना करते हुए विचरण कर रहे हैं। मैं अधन्य हूँ जो अभी राज्य के प्रपंचों में फँसा हुआ हूँ।" मुनि ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया। तब राजा ने मुनि से पूछा- "आप योग चाहते हैं या भोग चाहते हैं?" मुनि कुण्डरीक ने संकोच त्याग कर कह दिया- "मैं भोग चाहता हूँ।" अनेक तरह से समझाने पर भी मुनि कुण्डरीक संयम मार्ग में स्थिर नहीं हुए।

तब राजा पुण्डरीक ने उन्हें राजचिह्न देकर कुण्डरीक का राज्याभिषेक कर दिया और कुण्डरीक के संयमोपकरण लेकर पुण्डरीक दीक्षित हो गये। इधर कुण्डरीक राज्य सिंहासन पर आरूढ़ होते ही भोगोपभोग में आसक्त रहने लगे। विषयासक्ति और आहारादि के असंयम से शीघ्र ही वे असाध्य रोग से पीड़ित हो गये और आर्त्तध्यान में मृत्यु को प्राप्त कर सातवीं नरक में उत्पन्न हुए।

आत्मोत्थान हेतु करें आलोचना

सिद्ध स्वरूपी सिद्ध भगवान्, पाप-प्रकृतियों को क्षय करने वाले अरिहन्त भगवान् तथा सिद्धि की राह पर चलते हुए समिति-गुप्ति की साधना करने वाले संत भगवन्तों के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन।

बन्धुओं!

तीर्थंकर भगवान् महावीर की आदेय-अनमोल वाणी में आत्म-सिद्धि की चर्चा चल रही है। प्रत्येक प्राणी सिद्धि चाहता है। जो जिस बात को अच्छा मानता है, उसकी प्राप्ति का हर संभव प्रयास करता है। संसार में कुछ ऐसे मूढ़ मति हैं जो चाहते हुए भी कुछ कर नहीं पाते। ज्ञान अच्छा है। पढ़ना अच्छा है। शिक्षा का प्रचार-प्रसार हो, इस लक्ष्य से ग्राम-नगरों में शिक्षण सप्ताह चलाया जाता है। नारा क्या है? चलो, स्कूल की ओर। क्यों? कारण क्या? नारे लगाने का कारण है- जो परिस्थितियों में उलझे लोग हैं, पढ़ना अच्छा मानते हुए भी परिस्थितियों के कारण पढ़ नहीं पाते उन्हें स्कूल में ले जाना। पढ़ने की उम्र वाले न जानें कितने बच्चे पोटली लेकर गली-गली कचरा बीनते हैं। कुछ कारखानों में, मिलों में, व्यापारिक प्रतिष्ठानों में मजदूरी करते हैं। कुछ बच्चे ऐसे भी हैं जो काम करते हैं और पढ़ाई भी करते हैं। पढ़ना अच्छा है, पढ़ना चाहिए फिर भी वे पढ़ नहीं पाते। आज बच्चों को पढ़ाने के लिए सरकार की ओर से, सामाजिक संस्थाओं की ओर से, कई कार्यक्रम आयोजित हो रहे हैं। इसके अन्तर्गत स्कूल चलो अभियान

का सप्ताह मनाया जाता है।

पढ़ना अच्छा है, ऐसे ही सफाई भी अच्छी है। अच्छी होते हुए भी सब जगह सफाई नहीं हो पाती, इसलिए सफाई सप्ताह चलाया जाता है। गाँवों में, शहरों में, महानगरों में सफाई सप्ताह मनाया जाता है। बड़े-बड़े नेता, अधिकारी, सामाजिक कार्यकर्ता, गाँव-नगर के प्रमुख-प्रमुख लोग आगे आकर सफाई अभियान का श्रीगणेश करते हैं। प्रधानमंत्री, मंत्रीगण, पार्टियों के मुखिया कार्यक्रमों का आयोजन करते हैं, जिससे सामान्य जन कार्यक्रमों की क्रियान्विति में जुड़ें और सफाई का काम आगे बढ़े। आजीविका के लिए भी लोग अपना नाम इन कार्यों को करने में लिखवाते हैं, काम पर आते हैं किन्तु काम कितना करते हैं? कुछ तो ऐसे भी हैं जो केवल मात्र हस्ताक्षर करके दिनभर मौज-मस्ती करते हैं। वे जानते हैं कि हमारी ड्यूटी है काम करने की, पर साइन करके ड्यूटी की इतिश्री कर लेते हैं।

अभी एक शब्द पढ़ा- **GOD**। गॉड यानी गो ऑन ड्यूटी (**Go On Duty**) जो कर्त्तव्य का पालन करता है, ड्यूटी करता है, ईमानदारी से काम करता है, वह गॉड है। गॉड यानी भगवान्। जो काम को भगवान् माने वह काम करने में कोताही नहीं करेगा। पूरी निष्ठा से और समर्पित भाव से काम करेगा। काम की प्रेरणा देने के लिए भी अभियान चलाए जाते हैं। काम करने वाला अनुशासन में रहे इसके लिए कभी अनुशासन सप्ताह का आयोजन किया जाता है। ये सब क्यों? इसके पीछे कारण हैं। बातों में, खेल-खेलने में, हँसी-मजाक में न जाने कितना समय व्यर्थ चला जाता है किन्तु उन्हें यदि कहा जाय कि तुम भगवान् का नाम लो, कुछ नहीं तो एक माला ही जप लो, सामायिक कर लो, भगवान् की वाणी सुन लो तो वे तैयार नहीं होते। कहने के लिए कहते हैं- भगवान् का नाम लेना अच्छा है, भगवान् की वाणी सुननी चाहिए परन्तु कहने के बावजूद समय का भोग देना भूल जाते हैं। आपने सुना होगा- भगवत् वाणी श्रवण कराने की दृष्टि से भागवत् सप्ताह मनाया

जाता है। क्यों? आयोजन करने वाले जानते हैं कि भगवान् की वाणी तन-मन को पवित्र करने वाली है। भागवत् सप्ताह के बहाने सामान्य जन आएँगे, सुनेंगे और सुनकर कुछ जीवन में अंगीकार करेंगे।

कल संवत्सरी महापर्व हैं। इस महापर्व की सम्यक् आराधना के लिए आप सप्ताह भर से तैयारी कर रहे हैं। भगवान् की वाणी सुनने वाले सदैया न सही, चातुर्मासिया न सही, भदैया न सही, संवत्सरिया ही सही कुछ तो स्मरण करे, श्रवण करे, साधनरत हों और पाप से बचे रहने की कोशिश करें। कुछ लोग रोज नहीं कर पाते, वे चातुर्मास लगने के साथ चार माह के लिए कुछ नियम करते हैं। चार माह रात्रि भोजन का त्याग करते हैं, जमीकन्द की मर्यादा करते हैं, ब्रह्मचर्य व्रत के प्रत्याख्यान करते हैं। नियम लेने वाले नियम लेकर पालना करते हैं। पर सब चौमासिये नहीं होते। भदैया यानी भाद्रपद में करने वाले भी कुछ-न-कुछ त्याग-तप करते हैं। भदैया भी सब नहीं होते, इसलिए पर्वाधिराज पर्युषण पर्व के इन आठ दिनों में आकर न केवल व्याख्यान सुनते हैं पर आठ दिन कच्चा पानी नहीं पीऊँगा, हरी नहीं खाऊँगा, चौविहार करूँगा, कुशील का सेवन नहीं करूँगा, इस तरह के नियम करते हैं। कुछ ऐसे भी हो सकते हैं जो पर्व के आठ दिनों में साधना-आराधना नहीं कर पाते, वे संवत्सरी के दिन लाइसेंस रिन्यू करवाने जरूर आते हैं। बाकी दिनों में करें, न भी करें पर संवत्सरी के दिन उपवास करते हैं, व्याख्यान सुनते हैं, सामायिक-साधना और प्रतिक्रमण जरूर करते हैं। अपनी उपस्थिति दर्ज कराने के लिए बच्चे से बूढ़े सभी तत्पर रहते हैं।

कल संवत्सरी महापर्व है। आप जानते हैं, मानते हैं, कहते हैं कि साधुपना अच्छा है, फिर भी महाव्रत अंगीकार नहीं कर पाते। आज का दिन आत्मशुद्धि का है, कल दिल की दीवाली होगी। जो बीत गया, सो बीत गया, अब तक जिन्होंने कुछ भी नहीं किया, अब पीछे नहीं रहना है। आपको, हमको, सबको पापों की आलोचना करनी है। आलोचना आवश्यक है।

प्रायश्चित्त करना, शुद्धि करना जरूरी है। पाप की शुद्धि न हो तो फिर बड़े से बड़ा तप करना भी सार्थक नहीं होगा। लोग मासखमण करते हैं, यह अच्छा है, किन्तु तप के पहले शुद्धिकरण का पूरा ध्यान रखना चाहिए।

प्रायश्चित्त में भगवान् महावीर के शासन में छःमासी प्रायश्चित्त होता है। तप का किसी को प्रायश्चित्त दिया जाएगा तो अधिक से अधिक छः मासी तप हो सकता है। दीक्षा छेद भी छः मासी ही दिया जाएगा। पाप का प्रायश्चित्त छः महीने से ज्यादा नहीं होता। मैं, मेरी नहीं, आपकी नहीं, भगवान् महावीर की बात कहता हूँ। उनके जीव ने पाप करके प्रायश्चित्त नहीं किया तब तक उनके कर्म अवशेष रहे। पूर्व में भगवान् के जीव ने किसी के कान में शीशा डाला, तड़फा-तड़फा कर मारने के पीछे हेतु था कि उसे देखकर दूसरे मेरी आज्ञा टालने का साहस न करे। मेरी आज्ञा नहीं मानी, यह भूल कैसे हो गई? मन में खेद नहीं, पश्चाताप का भाव नहीं, यह मर रहा है, मर जाने दो। कल कोई मेरी आज्ञा की अवहेलना नहीं करेगा। परन्तु महावीर ने इस भव में इसको समता से सहन किया ताकि अवशेष कर्म समाप्त हों।

आज क्या स्थिति है? अमुक ने मेरे को ऐसा कहा, मैंने वापस ऐसा सुनाया कि वह जिन्दगी भर याद रखेगा। गलत काम जो भी करे उसे दण्ड मिलेगा, यह सोचकर यदि भूल का परिमार्जन नहीं किया जाता अथवा पाप का प्रायश्चित्त नहीं किया जाता है, तब तक कर्म कट जायेंगे ऐसा मानना भूल है।

राजा नंदन के भव में भगवान् महावीर के जीव ने कितने मासखमण किए थे? उस जीव ने ग्यारह लाख से ऊपर मासखमण किए। कोई एक लाख वर्ष की उम्र में मासखमण करते-करते पारणा करे तो जीवन में ग्यारह लाख साठ हजार मासखमण होते हैं। इतना करने के पश्चात् भी उनका पाप नहीं धुला। हम सब आलोचना करें। मैं अगर संत हूँ तो मैं अपनी आलोचना

करूँ। मैंने व्याख्यान दिया, कहीं लोगों को प्रसन्न करने के लिए तो व्याख्यान नहीं किया? व्याख्यान मात्र इन्द्रियों के पोषण के लिए किया या पाप से हटकर धर्म की ओर बढ़ाने के लिए किया? इस दृष्टि से व्याख्याता अपनी आलोचना करे।

आप श्रावक हैं, गृहस्थी हैं आप अपना चिन्तन करें कि मैंने कहीं थोड़ा देकर अधिक तो नहीं बताया है। आज कई हैं जो देते कम हैं दिखाते ज्यादा हैं। वे अपने-आपको दानवीर समझें, भामाशाह अथवा झगडूशाह मान लें, तो कहना होगा दान अहंकार की पूर्ति के लिए दिया है। आज नाम के लिए देते हैं, यशकीर्ति के लिए देते हैं, प्रशंसा पाने के लिए दान करते हैं, अहंपूर्ति के लिए देते हैं। कभी उनके मुँह से दूसरों के लिए भी निकल जाता है कि- "ए बापड़ा कांई देवे, है कांई जो म्हारी बराबरी करे।"[1] ऐसा कहने वाले और सोच रखने वाले, कर्मबंधन करते हैं। देने वाले देते समय सोचे कि मैं दीन-दुःखियों के दुःख दूर करने में सहयोगी बनूँ, जो कष्ट पा रहे हैं उनके कष्टों को दूर करने का प्रयास करूँ, जिसका लक्ष्य किसी की वेदना कम करने का है, वह छुपकर देगा, दिखाकर देने की उसकी भावना नहीं होगी।

सेवा करने वाला है तो वह सेवा करे। शास्त्र कहता है- वैयावृत्त्य करने वाला तीर्थंकर नाम कर्म गोत्र का उपार्जन करता है। सेवा करने वाला सेवा की भावना से सेवा करे, अन्तर्मन से सेवा करे। सेवा के लिए नन्दीषेण जी महाराज का नाम लिया जाता है। एक महाराज बीमार हो गये। सेवाभावी नन्दीषेण जी महाराज तपस्वी हैं, पारणक लाया हुआ है, लेकिन बीमार मुनि की बात सुनी तो पारणा एक तरफ रखा और महाराज की सेवा में पहुँच गए। महाराज की चलने की स्थिति नहीं थी। महाराज को उपचार के लिए ले जाना आवश्यक था और बीमारी में वे चल पाने में सक्षम नहीं थे अतः सेवाभावी नन्दीषेण मुनि उनको उठाकर चलते हैं। बीमार महाराज कंधे पर बैठ कर रवाना तो हो गए किन्तु कंधे पर बैठे-बैठे उन्होंने गन्दगी कर दी। नन्दीषेण

जी का शरीर अशुचि से भर गया। सेवाभावी मुनिश्री को ग्लानि नहीं हुई, लेकिन मन ही मन यह विचार आया कि मैंने यहाँ पहुँचने में देर कर दी। मैं कुछ जल्दी करता तो अच्छा रहता। सेवा करने वाले पर गन्दगी करना तो दूर की बात कोई थूक दे तो उसे कैसा लगेगा? थूके भी नहीं, पर मन के विपरीत कुछ कह दे तो सुनना तक पसंद नहीं करेगा। सेवा करने वाला अपना सुख और सुविधा छोड़कर सामने वाले के दुःख को मिटाता है और वह भी अग्लान भाव से तब कहीं जाकर सेवा होती है।

दान हो, व्याख्याता हो, सेवा हो ये सभी काम अच्छे हैं। आप जो कर सकते हैं कीजिये। अपने कर्मों के दलों को काटिये। आप अपने दोषों की शुद्धि हेतु आलोचना करें। इस साल तक की ही नहीं, जब तक के दोष याद आएँ उन सब दोषों की आलोचना करें, प्रायश्चित्त करें, शुद्धि करें। हिंसा में, झूठ में, चोरी में, कुशील में, पाप-त्याग में कहाँ-कहाँ अतिक्रमण हुआ, उन पर सोच-विचार करके पश्चाताप करें। प्रायश्चित्त करके संकल्प करें कि अब फिर से वैसे पाप न हों।

प्रतिक्रमण में एक-एक पाठ तीन बार बोला जाता है। निन्नाणु अतिचार पहले ध्यान में बोले गए फिर प्रकट में और उसके बाद अणुव्रत में। आप आलोचना करें, प्रतिक्रमण करें और शुद्धिकरण करें। मैं संत हूँ, मैं अपनी आलोचना करूँ, आप श्रावक हैं तो आप अपनी आलोचना करें। एक-एक व्रत के पाँच-पाँच अतिचार हैं। "रोष वश गाढ़ा बंधन बांधा हो, गाढ़ा घाव घाला हो, अवयव का छेद किया हो, अधिक भार भरा हो, भत्त-पाणी का विच्छेद किया हो", ये अतिचार आप बोलते हैं, बोलने चाहिए किन्तु कार्य निष्पादन करते समय भी पूरा उपयोग रखना चाहिए। उपयोग में धर्म है।

आदमी आवेश में क्या-क्या कर जाता है, उसे ध्यान नहीं रहता। किसी को थप्पड़ मार देना, मुक्का चला देना, अस्त्र-शस्त्र से वार कर देना,

आवेश की निशानी है। आवेश में दूसरों पर वार करता है तो कभी-कभी आत्महत्या तक भी कर बैठता है। पति-पत्नी के बीच झगड़ा हुआ। पति का दुःख देना सहन नहीं हो रहा था, अतः आवेश में आकर पत्नी ने कोर्ट केस कर दिया। न्यायालय ने घर वाले सदस्यों को जेल की सजा दे दी। ऐसे किस्से सुनते हैं, देखते हैं। पति ने पत्नी को जला दिया इसके पीछे आवेग है, आवेश है।

आज मायाचार बहुत बढ़ गया है। धोखा करना, कपट करना, दुर्व्यवहार करना, कोर्ट-कचहरी चढ़ जाना सामान्य बात हो गई है। हमसे जो भी भूलें हुई, अपराध हुआ, त्रुटियाँ रही, आज हम एक-एक पाप की सच्चे मन से आलोचना करें। आज आलोचना करने का दिन है। हर व्यक्ति अपनी आलोचना करें। आप चाहे व्रती हैं या अव्रती, सबको अपनी-अपनी आलोचना करनी है। हर व्यक्ति को अपना चिन्तन करना है। आप चाहे व्यापारी हैं तो विचार करें कि कहीं मैंने माल में मिलावट तो नहीं की, खोटा माप-तौल तो नहीं किया। धंधे वाले अपना सोचें, नौकरी वाले अपना चिन्तन करें कि मैंने किसी से घूस तो नहीं ली, कहीं भ्रष्टाचार तो नहीं किया, किसी को हैरान-परेशान तो नहीं किया। आप चाहे अधिकारी हैं या कर्मचारी सबको सोचना है, विचार करना है और आलोचना करनी है।

आप चाहे व्रती हैं या नहीं, परन्तु हर इंसान को हिंसा, झूठ, चोरी से बचे रहना है। पाप, सामाजिक दृष्टि से, राजकीय दृष्टि से और आध्यात्मिक दृष्टि से हेय है, अपराध है। आप चाहे जिस माध्यम से अपनी आजीविका चला रहे हैं, अपना शोधन करेंगे और भविष्य में नियम के परिपालन में सजग रहेंगे तो पाप-प्रवृत्ति से बचे रह सकेंगें।

आप स्वतः अपनी आलोचना करें। किसी के कहने पर आलोचना करेंगे तो हो सकता है आपको गुस्सा आ जाय। किसी का कहा हुआ कभी

नागवार लगे, कभी न भी लगे परन्तु स्वयं की आलोचना करेंगे तो पाप प्रवृत्ति स्वतः घटती जाएगी । आप अगर पिता हैं तो सोचे कि मैंने पिता का कर्त्तव्य निभाया या नहीं? आज एक व्यक्ति गली-मोहल्ला-गाँव सँभालता है पर अपने बच्चों को सँभालने का उसे समय नहीं। आप में से कुछ संघ या समाज के पदाधिकारी हैं तो क्या आप अपना दायित्व भली-भाँति निभा रहे हैं? आप चाहे पिता हैं, परिवार के मुखिया हैं, संघ-समाज के अधिकारी हैं, सामाजिक-धार्मिक-सांस्कृतिक संस्थाओं से संबंधित हैं, कारखाने के मालिक हैं, आप अपना चिन्तन करें। साथ-ही-साथ घर-परिवार के बच्चों को संस्कार दे रहे हैं या नहीं, इसका भी अवश्य विचार करें।

आज सांस्कृतिक स्तर पर बहुत बिगाड़ हो रहा है। आपको तो फुर्सत नहीं है संस्कार देने की और कभी किसी बच्चे को कहना भी पड़े तो बच्चा सुनना नहीं चाहता है। टी.वी. के सीरियल देख-देखकर बच्चों में सुनने की शक्ति रही नहीं। कभी किसी ने कह दिया तो बच्चे जवाब देने में संकोच नहीं करते। पिताजी को यह बोल जाते हैं "म्हाने उपदेश मत झाड़ो। ज्यादा कहोगे तो मैं गोली मार लूँगा।" आज इस तरह का वातावरण क्यों हो रहा है? आप विचार करें।

एक माँ डॉक्टर है। उसके पास पचासों मरीज आते हैं, सबका उपचार करती है, लेकिन घर का बच्चा बीमार है तो सँभालने का उसके पास समय नहीं है। यह घटना मात्र नहीं है, इसे आप कहानी भी नहीं कहें। ये सच्ची बातें हैं, जिनपर ध्यान देने की जरूरत है।

संवत्सरी महापर्व साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका के लिए ही नहीं, हर व्यक्ति के लिए है। आप सब अपना-अपना चिन्तन करें, निरीक्षण करें और परीक्षण करें कि मुझ से कब-कहाँ और क्या-क्या भूलें हुई, मेरे में कितनी कमजोरियाँ हैं, मैं जीवन को कैसे सार्थक बनाऊँ? पुत्र है तो वह सोचे कि पिता ने मुझे पढाया-लिखाया, होशियार बनाया, योग्य बनाया,

शादी-विवाह किया अतः मैं पिता का ऋणी हूँ उस ऋण की मैं सेवा करके अदायगी करूँ।

भगवान् महावीर ने माता-पिता का, अक्षर ज्ञान देने वाले गुरु का और धर्माचार्य का ऋृण बहुत बड़ा ऋृण कहा है। वह ऋण खिला-पिला देने से, सेवा कर देने से, जिन्दगी में जरूरत की चीजें मुहैया करा देने से पूरा नहीं होता, परन्तु धर्म में उनको सहयोग देकर उनसे उऋण हुआ जा सकता है। पुत्र अपनी आलोचना करे, पिता अपनी आलोचना करे।

तपस्या करने वाले तपस्वी सोचें कि मैंने जो तप किया है, वह स्वागत-सत्कार और अभिनन्दन के लिए तो नहीं किया? मेरा तपस्वी के रूप में नाम आए इसलिए तो तप नहीं किया? तप क्यों करना? तप-दिवस पर मैं अपनी बात कह चुका हूँ।

शास्त्रवाणी कहती है- पाप अपनी आत्मा से और परमात्मा से छुपा नहीं रहता। आलोचना अपने-आपकी करनी है। दूसरों की आलोचना करना पाप है, निन्दा है, कर्मबंधन का कारण है। स्वयं की आलोचना करना शुद्धिकरण है, पश्चाताप है, स्वयं के किए गये पापों से निवृत्त होने का माध्यम है। आप जितना पश्चाताप करेंगे, उतने पाप हल्के होंगे। पाप करके बड़ाई करेंगे तो पाप बढ़ेगा और पुण्य करके प्रशंसा करोगे तो पुण्य घट जाएगा। एक ने दान दिया। देने के बाद पश्चाताप आया कि मैंने क्यों सारा दान में दे दिया, कुछ रख लेता तो ठीक होता। उसने देने की जगह दिया पर देकर मन में यह भाव आया कि क्यों मैंने सारा दे दिया? कुछ रख लेता तो अच्छा होता। देकर मन में मलाल रहेगा तो वह पाएगा जरूर, पर पाने के बाद भी खुद उसका भोग नहीं कर सकेगा।

पुण्य, प्रशंसा करने से घटता है, पाप प्रशंसा करने से बढ़ता है। पाप, पश्चात्ताप से घटता है। पुण्य भी प्रकट करने से कम होता है।

आत्मशुद्धि के आज के दिन आप चिन्तन-मनन करें, आलोचना-प्रतिक्रमण करें और जाने-अनजाने जो भी भूलें हुई हैं उनका प्रायश्चित्त करें। आपने जो पाप किए हैं उन्हें भोगना आपको ही है। दूसरे माल तो खा लेंगे, मजे कर लेंगे, किन्तु पाप के फल को कोई दूसरा भोगने वाला नहीं है।

आप समाधि में रहना चाहते हैं, आत्मा को पवित्र करना चाहते हैं तो आप अपनी भूलें, चाहे कषायों से हुई हैं, चाहे विषयों से, चाहे मिथ्या अभिमान से हुई हैं, चाहे जाने-अनजाने में हुई हैं वे भूलें, भूले हैं उन्हें दूर करना होगा। चलते-चलते अचानक आँख में फूस पड़ सकता है, चलते-चलते पैर में काँटा लग सकता है। आपको आँख में पड़ा फूस और पैर में लगा काँटा निकालना पड़ेगा तभी आप ठीक तरीके से चल सकेंगे। इसी तरह अपनी भूलों को प्रायश्चित्त करके निकालना होगा, तभी आपका जीवन सुखी होगा।

पाप चाहे भूल से हुआ, जानकर हुआ, अनजाने में हुआ पाप, पाप है। पाप संताप देने वाला है। पाप दुःखी करने वाला है। आप पापों की आलोचना कर लें, थोड़े में छूट जाएँगे। नहीं तो पाप एक-न-एक दिन उदय में जरूर आयेंगे। आपने सुन रखा है निन्नाणु लाख भवों के बाद भी पाप उदय में आया। आत्मशुद्धि करें। आज के दिन को दिल की दिवाली भी कह सकते हैं। आत्मोत्थान के इस पर्व पर आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त करेंगे तो सुख, शांति, आनन्द पा सकेंगे।

जोधपुर
31 अगस्त, 2011

संदर्भ

1. ये बेचारे क्या देंगे। इनके पास है क्या जो मेरी बराबरी करेंगे?

मन-वचन-काया से क्षमायाचना कर, दिल की दीवाली मनाएँ

स्व-स्वरूप में रमण करने वाले सिद्ध भगवन्त, खन्ती-सूरा अरिहन्ता यानी क्षमा में शूर कहलाने वाले अरिहन्त भगवन्त एवं सहनशीलता के पथ पर चलने वाले सन्त भगवन्तों के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन !बन्धुओं!

साधु-धर्म के दस बोलों में खन्ती अर्थात् क्षमा को धर्म का आधार बताया गया है। जीवन में जहाँ सहनशीलता है, वह धर्म के द्वार खोलने वाली है। मोक्ष-मार्ग के चार द्वार बताये गए हैं-

चतारी धम्मदारा पण्णत्ता, तं जहा-
खंती मुत्ती, अज्जवे, मद्दवे।। -ठाणांग सूत्र 4.4.627

अर्थात् धर्म के चार द्वार कहे गये हैं, जैसे क्षमा (खंती), निर्लोभता (मुत्ती), आर्जव या सरलता (अज्जवे) एवं मार्दव या मृदुता (मद्दवे)। धर्म के इन चार द्वारों में पहला द्वार है खन्ती या क्षमा।

आचार्य भगवन्त (पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमलजी महाराज) ने धर्म की व्याख्या करते हुए चार प्रश्न किए :-

कथं उत्पद्यते धर्मः? कथं धर्मो विवर्धते?
कथं च स्थाप्यते धर्मः? कथं धर्मो विनश्यति?

अर्थात् धर्म उत्पन्न कहाँ होता है? धर्म बढ़ता कैसे है? धर्म टिकता कैसे है? और धर्म का विलोप कैसे होता है?

नीति में कहा गया है- धर्म सत्य से उत्पन्न होता है। दया-दान से धर्म बढ़ता है, क्षमा से धर्म की नींव पक्की होती है। क्रोध धर्म का विनाश करने वाला है। क्रोध का अर्थ यहाँ कषाय से है। धर्म का नाश क्रोध कषाय करता है। क्षमा धर्म को टिकाये रखती है। विनय भी है, सरलता भी है, दया भी है, सत्यवादिता भी है, दानवीरता भी है पर सहनशीलता नहीं तो धर्म कैसे टिकेगा? आया हुआ, मिलाया हुआ, प्रसिद्धि पाया हुआ धर्म भी विनष्ट हो जाता है। धर्म को टिकाऊ बनाए रखने का रास्ता है- सहनशीलता। इसे क्षमा भी कह सकते हैं।

आज का दिन हमें धर्म को जीवन में स्थाई बनाने की कला सिखा रहा है। स्थिरता लाने का यह प्रारम्भ है। आज का दिन संवत्सर का है, इतिश्री का नहीं। आज प्रारम्भ का दिन है, शुरूआत करें। धर्म को टिकाऊ करना है तो नींव को स्थाई करने की जरूरत है। धर्म को टिकाने का काम खन्ती करता है। खन्ती यानी क्षमा। क्षमा अर्थात् सहनशीलता। इस सहनशीलता को बढ़ाने के लिए कई दिनों से दिल की दीवाली शब्द प्रयुक्त कर रहा हूँ, वह दिन आज का है।

दीवाली तीन तरह से मनाई जाती है। पहला काम है घर की साफ-सफाई करना यानी कचरा कहीं नहीं रहे। दूसरा काम है पुताई। तीसरा काम है हिसाब-किताब मिलाना। पूर्व में दीवाली के तीन काम कहे जाते थे। दीपावली आज है तो आज ही कचरा साफ किया जाता है, ऐसा नहीं है। सफाई करने का काम कई दिनों पहले से चालू हो जाता है। आपने-हमने दिल की दीवाली मनाने के लिए सात दिन पहले कचरा निकालने का काम चालू कर दिया। पहले दिन अज्ञान दूर करने के लिए ज्ञान-दिवस के रूप में ज्ञान क्या होता है, ज्ञान कैसे प्राप्त करते हैं,समझा। मैंने दृष्टान्त के रूप में कहा था कि मक्खी श्लेष्म पर बैठती है तो वह खाने की इच्छा से बैठती है किन्तु उसकी भूख नहीं मिटती, सो नहीं मिटती। अन्त में वह श्लेष्म में फँस

कर प्राण गँवा देती है। अज्ञानी जीव भी विषय-वासना में, कमाने-खाने में, भोग-विलास में संसार से इस तरह चिपकता है कि उसे सुख मिले या नहीं, परन्तु संसार में फँस कर रह जाता है। आप भोग-भोगने वालों से पूछ लें और अगर आप भोग-भोगने वाले हैं तो अपना चिन्तन कर लें।

मैं एक नहीं, अनेकानेक व्यक्तियों की बात कह सकता हूँ जो कहते हैं- "बाबजी! आप म्हाने पेली चेताय देता तो मैं उण रास्ता सूँ दूर रेवता, संसार-सागर में फँसता ही नहीं।" अज्ञान के कचरे को दूर करने के लिए ज्ञान और वह भी सम्यक् ज्ञान सीखना होता है। ज्ञान सीखने के लिए उम्र की बात कहना ठीक नहीं है। हर उम्र का आदमी ज्ञान प्राप्त कर सकता है। अतिमुक्तकुमार का नाम आपने सुना है उसकी दीक्षा की भावना होने पर माँ-बाप ने कहा-बेटा ! अभी तू छोटा है संयम क्या होता है, तुम्हें मालूम नहीं? अतिमुक्तकुमार के वे शब्द- "जो जानता हूँ वह नहीं जानता और जो नहीं जानता, वह जानता हूँ।" माँ-बाप ने पूछा तो छोटे-से बालक ने जानने और नहीं जानने का हार्द बता दिया।[1] छोटा हो या बड़ा अज्ञान हटाने के साथ जिसके साधना में चरण बढ़ते हैं, वह मुक्ति पा सकता है।

आपने सुदर्शन का उदाहरण सुना है। श्रमणोपासक सुदर्शन भगवान् महावीर के दर्शन करने की भावना से निकला। उसे यह विदित था कि रास्ते में संकट है। उसे श्रद्धा थी और श्रद्धा के बल पर ही नगर के बाहर जाने में उसे भय नहीं लगा। वह दृढ़धर्मी था। घर वालों ने कहा, समझाया कि भगवान् तो घट-घट की जानते हैं। तुम यहीं से वन्दन कर लो, भगवान् तुम्हारी वन्दना स्वीकार कर लेंगे। कई हैं जो मखौल उड़ाने के लिए कह जाते हैं- जाने दो, पता चल जायगा। चौबेजी छब्बेजी बनने जा तो रहे हैं, अर्जुन को देखते ही दुब्बेजी बनकर लौट जाएँगे। कई ऐसे होते हैं जो धर्म-साधना स्वयं तो करते नहीं और जो करते हैं उनके लिए उल्टी-सुलटी प्रतिक्रिया

करने में शान समझते हैं। सुदर्शन श्रमणोपासक था, दृढ़धर्मी था, उसको भगवान् के प्रति अटूट श्रद्धा थी। वह यह भी जानता था कि भगवान् सर्वज्ञ हैं, सर्वदर्शी हैं, घट-घट की बात जानते हैं। भगवान् सब जानते हैं पर मेरी सन्तुष्टी तो तब होगी जब मैं उनके दर्शन-वन्दन का लाभ प्राप्त करूँगा।

मैंने एक-एक दिन का विवरण-विवेचन रखते हुए ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, दान, शील, आत्म-शुद्धि का स्वरूप समझाने का प्रयास किया है। आपने सुना हैं, आप केवल मात्र सुनकर ही न रहें। जो-जो दृष्टान्त कहे हैं, हित-शिक्षा की बातें बताई हैं, आप जुगाली करें। गाय-बैल आदि जानवर खाने के बाद जुगाली करते हैं। जुगाली करने का मतलब होता है- पाचन। आपने जो कुछ सुना, समझा उसे जीवन-व्यवहार में चरितार्थ करने की जरूरत है। पाचन होने पर रस बनता है। ऐसे ही व्रत-नियम लेकर साधना-आराधना में आगे बढ़ने पर सिद्धि प्राप्त हो सकती है।

एक होता है- प्रियधर्मी और एक होता है- दृढ़धर्मी। प्रियधर्मी प्रतिदिन धर्म करता है पर दृढ़धर्मी जान की बाजी लगाकर धर्म की प्रभावना करता है। सेठ सुदर्शन दृढ़धर्मी था। वह भगवान् के दर्शन-वन्दन करने की भावना से नगर-सीमा के बाहर निकला। उसको न घबराहट थी, न कोई भय। अर्जुनमाली ने देखा कि कोई आ रहा है। सुदर्शन श्रमणोपासक को भी लगा कि अर्जुनमाली इधर आ रहा है। डरने के बजाय श्रावक ने सागारी संथारे के प्रत्याख्यान कर लिये। चिन्तन चला- जन्म लेने वाला, मरण प्राप्त करता है पर उस श्रमणोपासक को यह भी ज्ञात था कि तप करते-करते बल जाता है तो बल गया नहीं समझना। दान देते-देते धन खूटता है तो धन खूटता नहीं समझना। ऐसे ही धर्म करते-करते प्राण चले जायँ तो प्राणों का नाश समझने के बजाय परीक्षा में पास हुआ समझना।

सुदर्शन श्रमणोपासक दृढ़धर्मी था, भगवान् पर उसे अटूट श्रद्धा थी और उपद्रव के समय पूरी सजगता थी। सुदर्शन को मृत्यु का भय नहीं था।

वह अचल-अडोल प्रत्याख्यान कर खड़ा रह गया। श्रद्धा में बड़ी ताकत होती है। मैं एक बहिन की बात कहूँ। उस बहिन को कैन्सर था पर तप में उसकी अटूट आस्था थी। वह बहिन बंगारपेट में दर्शन करने आई। सहज पूछ लिया- बहिन क्या वेदना है? वह बोली- अन्नदाता ! वेदना क्या है? यह तो केवलज्ञानी जानें, पर मैं इतना जानती हूँ "मरना तो है ही, अतः रोग में मैं जितना धर्म कर सकती हूँ, करूँगी। यह कैन्सर का रोग न जाने कब मौत का सन्देश ले आए। मैं अनजाने में न चली जाऊँ इसलिए परिवारजनों से कहती हूँ मेरा ध्यान रखना, हॉस्पिटल मत ले जाना, मुझे व्रत-प्रत्याख्यान और संथारे का सहयोग करना। मैं स्वयं प्रमाद नहीं करती।" यह बात उस बहिन के लिए नहीं, सबके लिए है। अन्त समय में घर की, परिवार की और सुख-सुविधा के साधनों की ममता नहीं रहे। कभी मौत का वारन्ट आ जाय तो मैं बिना प्रत्याख्यान न जाऊँ यह भावना रहे।

सुदर्शन सेठ के सामने अर्जुन मालाकार का, जिसके पिण्ड में यक्ष था, उपद्रव सामने आया। उपद्रव की स्थिति में उस श्रमणोपासक का चिन्तन चला और सागारी संथारा कर लिया। धर्म करते प्राण छूट जाय, ऐसा अवसर सबको कहाँ मिलता है? धर्म पर दृढ़ आस्था से श्रमणोपासक के प्राण तो नहीं गए किन्तु अर्जुन जो यक्ष के कारण कष्ट में था, उसके कष्ट दूर हो गए।

आज आपकी क्या स्थिति है? मारणान्तिक कष्ट तो दूर, थोड़ा बहुत संकट आता है तो सबसे पहले सामायिक आदि धर्म-क्रिया का लिया नियम टूटता है। बच्चा बारह महिने तक स्कूल में पढ़ता रहे और परीक्षा में फैल हो जाय तो? परीक्षा में पास होने वालों को अगली कक्षा में पढ़ने का मौका मिलता है, पास होने पर ही मंजिल मिलती है।

आपके मन में कितनी श्रद्धा है, आप अपना चिन्तन करना। आपने अंतगड़ सूत्र में आये नब्बे पुरुषों का चरित्र सुना। मैं परम्परा का वर्णन करूँ तो समय पूरा हो जाएगा। हम महापुरुषों का जीवन-चरित्र सुनकर-समझकर

हमारे भीतर रही अविरति का कचरा निकालें। झोंपड़ी वाला जब झोंपड़ी से बाहर निकलता है तो झोंपड़ी बन्द करके निकलता है। दुकानदार दुकान से जाते समय ताला-कुण्डा अच्छी तरह देखकर दुकान छोड़ता है। आप जब भी तिजोरी बन्द करते हैं, तो अच्छी तरह देखते हैं कि तिजोरी ठीक से बन्द हुई या नहीं? जीवन में अविरति का कचरा कब हटा? कब विरति का ताला लगा? क्या यह भी कभी देखते हैं?

पर्वाधिराज पर्युषण महापर्व दिल की दीवाली है। अज्ञान, आश्रव, अविरति का कचरा हटाकर तप, दान, संयम, शुद्धिकरण ये चार पुताई करने जैसे हैं। पहले मकान का कचरा हटाया जाता है फिर पुताई की जाती है। पर्व के इन आठ दिनों में क्या किया? इस पर विचार करें। मेरी तप करने की जितनी सामर्थ्य है क्या मैंने उतना तप किया? तप करें, तप की अनुमोदना भी करें। आपने तपस्या करने वालों को धन्यवाद कह कर अनुमोदना कर ली, आप ऐसा समझते हैं। केवल धन्यवाद कहने मात्र से तप नहीं हो जाता। तप करने से होता है। कोई अनशन करे, कदाचित् आप अनशन न कर सकें तो ऊणोदरी भी करें तो वह आपका अनुमोदन है। आप धन्यवाद करें, पर साथ ही आप कुछ न कुछ नियम करें भले ही वह पोरसी ही क्यों न हो। आप कोई-न-कोई तप, चाहे आभ्यन्तर तप हो या बाह्य, तप करें और करने वालों का धन्यवाद भी करें।

पर्युषण पर्व का पाँचवा दिन दान-दिवस था। अर्जन के साथ विर्सजन जरूरी है। विसर्जन नहीं करने वाला तकलीफ पाता है। खाने वाला खाता ही खाता रहे, विसर्जन नहीं करें तो क्या होगा? आपने पाया है तो दें। अर्जन करने वाला देता है तो ठीक, अन्यथा कर्मों का भार बढ़ाता है। कंजूस- मक्खीचूस क्या देगा? कंजूस अशोभा पाता है और भीतर में रही पूँजी खुटाता है। अर्जन है तो कुछ-न-कुछ विसर्जन होना चाहिए। यदि सौ

रुपये कमाओ तो उसका एक-दो-पाँच प्रतिशत जो भी आपकी भावना है, निकालो। पाया है तो दान करो। दोगे तो मिलेगा। नहीं तो फिर कंजूस की तरह पानी पीकर पेशाब तोलने वाले यश-कीर्ति के न भागी हुए हैं, न होंगे।

शुद्धिकरण के पूर्व संयम करना चाहिए। आपके पास गाड़ी है। गाड़ी में पेट्रोल की टंकी भरी हुई है, गाड़ी में ए.सी. है, ड्राईवर अच्छा है, गाड़ी के पहियों में हवा भी पूरी है, सब कुछ ठीक है परन्तु गाड़ी में ब्रेक नहीं तो उस गाड़ी में क्या आप बैठेंगे? जिस गाड़ी का ब्रेक नहीं, उसमें कोई भी बैठना नहीं चाहता। संयम ब्रेक का काम करता है। संयम घर का दरवाजा है। आपका घर चाहे जितना अच्छा है, घर में ए.सी. है, फर्नीचर है, गद्दा-पलंग है, सुख-सुविधा की सारी सामग्री है किन्तु घर के किवाड़ नहीं तो क्या उस बंगले में कोई रहना चाहेगा? बिना किराये भी उस घर में कोई रहना नहीं चाहता। क्यों? क्योंकि आप उस घर में रहना चाहते हैं, जहाँ तन की रक्षा हो, माल की सुरक्षा हो। रक्षा-सुरक्षा नहीं तो घर या बंगले का क्या महत्व? बस, यही बात संयम के लिए है। संयम नहीं तो जीवन नहीं।

पर्वाधिराज पर्युषण पर्व के सातवें दिन शुद्धिकरण की बात कही गई। आज इस आठवें दिन हिसाब-किताब करें। इतने दिन सुन लिया, न जाने कितने-कितने दृष्टान्त सुने हैं, आज विचार करें कि हमारी आय क्या है? व्यय क्या है? हमारी संवर-साधना बढ़ रही है या आश्रव? आज संवत्सरी महापर्व के दिन हमें अपना हिसाब-किताब जाँचना है, देखना है। पुण्य-पाप का लेखा-जोखा करना है। आपने न जाने कितनी-कितनी बातें सुनी, कितने-कितने दृष्टान्त ध्यान में लिये, भगवान् की वाणी श्रवण करने का सुअवसर पाया, चिन्तन यही करना है कि जीवन में कितना उतरा है? जीवन-व्यवहार में धारण नहीं करेंगे तो कल्याण होने वाला नहीं है। भगवान् महावीर को छः-छः महिने संगम ने कष्ट दिये, फिर भी भगवान् की करुणा

देखिये। शास्त्रकार इसीलिए कहते हैं- "खन्ती सूरा अरिहन्ता!" उपसर्ग, परीषह, दुःख, साधु सहन करता है। क्षमा के इस अवसर पर जो-जो बातें कही गई हैं, उन पर आप चिन्तन करना। मान लीजिए- आपके बहुत विरोधी हैं बहुत विरोधियों में जितने विरोधी घटेंगे, उतनी संख्या कम होती जाएगी। विरोधी कम होंगे इसका मतलब है जितनी शत्रुता घटती है, उतनी मित्रता बढ़ती है। क्षमावन्त शत्रुता मिटाता है, मित्रता बढ़ाता है। आपको ये बातें अच्छे मन से, शुद्ध भावना से कचरा हटाने के लिए और गुण-ग्रहण करने के लिए कही गई हैं। मेरे द्वारा या संतों के द्वारा उपदेश रूप, आदेश रूप कुछ कहने में आया हो अथवा महासती मण्डल की ओर से कुछ कहने में आया हो तो उसके लिए क्षमयाचना। दुर्भावना से कहने-सुनाने का लक्ष्य न था, न है फिर भी किसी को कोई चोट पहुँची हो, बुरा लगा तो तो क्षमायाचना के पर्व पर मैं अपनी ओर से, संत-सतियों की ओर से क्षमायाचना करता हूँ। गोचरी में, व्याख्यान में, पढ़ने-पढ़ाने की दृष्टि से या प्रश्नोत्तर व चर्चा में किसी का मन दुःखा हो तो मन-वचन-काया से क्षमायाचना कर रहा हूँ। मैं यहाँ यह भी सूचना करना कर्त्तव्य समझता हूँ कि आप अगले संवत्सर तक के लिए अपनी योजना बनाइये, कार्यक्रम निर्धारित कीजिए। चातुर्मास का अभी आधे से ज्यादा समय अवशेष है इसमें ज्ञान-ध्यान, त्याग-तप, साधना-आराधना, व्रत-नियम करने में, श्रद्धा में स्थिरता लाने में, सबको साथ लेकर शासन-दीप्ति में आगे बढ़ने का प्रयासें करेंगे तो शासन देव की कृपा कहिये या गुरु भगवन्त (गुरु हस्ती) का परोक्ष आशीर्वाद कहिये या संघ की पुण्यवानी कहिये, आप ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप में उत्तरोत्तर विकास करेंगे, आगे बढ़ेंगे, यही मंगल मनीषा है।

जोधपुर

1 सितम्बर, 2011

करें इन्द्रियों का सदुपयोग

सिद्ध-स्वरूपी सिद्ध भगवन्त, पाप-प्रकृतियों को क्षय करने वाले अरिहन्त भगवन्त तथा पाप को संताप मानकर समिति-गुप्ति की साधना में रत रहने वाले संत भगवन्तों के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन!

बन्धुओं!

तीर्थंकर भगवान् महावीर की आदेय-अनमोल वाणी में एक-एक दुर्लभ बोल की हम चर्चा कर रहे हैं। साधना करने में जिन-जिन बोलों की आवश्यकता होनी चाहिए, दूसरे शब्दों में जिस अनन्त-अनन्त पुण्यवानी का उदय चाहिए उसमें से अनेक बोल हमने प्राप्त कर लिए हैं। भगवान् की भाषा में कहूँ- अव्यवहार राशि से व्यवहार राशि में आने के लिए न जाने कितने अनन्तकाल बिताये, अनन्त चौबीसियाँ होने के बाद यह जीव अव्यवहार राशि से व्यवहार राशि में आया। इस जीव का पुण्य उदय हुआ तब कहीं जाकर यह जीव अव्यवहार राशि से व्यवहार राशि में आया।[1] व्यवहार में आने के बाद उत्तराध्ययन सूत्र, जो प्रभु महावीर की अन्तिम वाणी है, उस वाणी का पारायण कीजिए तो ज्ञात होगा कि एकेन्द्रिय के स्थान में जीव का कितने काल तक भ्रमण हुआ? पृथ्वीकाय, अपकाय, तेऊकाय, वायुकाय में असंख्यात काल और वनस्पतिकाय में अनन्त काल जीव को रहना पड़ा। जीव को एक-एक काय में अनन्त अथवा असंख्यात काल तक रहना पड़ा। मैं तो यह बात कह गया, मुझे कहने में कितनी देर लगी? कहने में देर नहीं

लगती, भोगने में अनन्त या असंख्यात काल लगता है।

दुःख की घड़ियाँ कैसे बीतती है यह तो भोगने वाले को मालूम पड़ता है। भोगने वाला जानता है कि एक-एक क्षण, एक-एक पल कैसे बीतता है? आप आज प्रमाद में, आराम में, नींद में, बेहोशी में कितना समय जाया कर देते हैं? है कोई समय बर्बाद करने की गणना? कब-कितना-कहाँ समय बीतता है शायद आपको पता नहीं। पर, जिन्होंने सहन करते-करते समय बिताया है, उनको मालूम है कि समय कैसे बीता? जीव किस तरह पृथ्वीकाय में रहा? पृथ्वीकाय में रहते जीव कितनी बार काटा गया, कितनी बार पिसा गया, कितनी बार मसला गया, कितनी बार पकाया गया, है कोई हिसाब? खदान से निकालने की बात ही लीजिए। खदान से पत्थर, कोयला, सोना जवाहरात निकलते हैं। पहले खदान खोदी जाती है। धातु या जवाहरात भी हैं तो रेत मिश्रित हैं। खोदने के बाद सफाई की जाती है, तेजाब से मैल दूर किया जाता है तब कहीं जाकर रत्न अलग होता है। एक-एक रत्न को निकालने में असंख्य-असंख्य जीवों की घात होती है। खदान ही क्यों, समुद्र से निकालना हो तो भी यही बात है। समुद्र से मोती निकाले जाते हैं। मोती निकालने के लिए कितनी मछलियों का ढेर लगता है। हर मछली में मोती नहीं होता, अनेकानेक मछलियों में से किसी में मोती मिलता है लेकिन इसके लिए पंचेन्द्रिय जीवों की कितनी घातें होती होंगी, जरा विचार करना।

इस जीव ने कहाँ-कहाँ दुःख नहीं भोगा? दुःख भोगते हैं तब पता चलता है। कभी किसी को दो दिन अस्पताल में रहकर चीरफाड़ कराने का अवसर आया हो तो कितनी बार घड़ी पर नजर गई? क्यों बार-बार समय देखा जाता है? मतलब, भोगते हैं तब अनुभव होता है। एकेन्द्रिय में जीव था, तब क्या अनुभव हुआ? पृथ्वी हो, पानी हो, अग्नि हो, जीव सब जगह हैं। पानी का आज कितना दुरूपयोग हो रहा है? पाप करना सरल है, पाप को भोगना कठिन है। आप इस देह को चाहे जितनी सुख-सुविधाएँ दे दें, पर

कितने-कितने पाप-कर्म बन्ध रहे हैं उस पर कभी विचार क्यों नहीं करते? स्नान करने वाला लोटे भर पानी से काम कर सकता है, एक बाल्टी से नहाया जा सकता है पर नल के नीचे बैठकर घंटों नहाने वाले हैं या नहीं? तालाब-नदी में स्नान करने वाले भी हैं। आप कहीं नहायें, नहाने के कुछ समय बाद क्या होगा? क्या फिर पसीना नहीं आएगा? आप जरा सोचिये तो सही कि इस जीव ने कितनी वेदनाएँ सही हैं? एक-एक बात कहने जाऊँगा तो बात पूरी होगी या नहीं पर आपका समय पूरा हो जाएगा।

आज कितना अनर्थ हो रहा है उस सम्बन्ध में अधिकांश लोगों की न सोच है और न हिंसा से बचने का लक्ष्य ही। एक-एक शादी में हजारों लाईटें लगती हैं। मकान के ऊपर से नीचे तक ही नहीं, पूरे चौगान तक ही नहीं, गली तक लाईटें लगाई जाती हैं। जीव विराधना का हिसाब लगाओ तो? आज तो किन-किन जीवों की कहाँ-कहाँ विराधना नहीं हो रही है, कौन-कौन से जीवों को कष्ट नहीं पहुँचाया जा रहा है? आप अगर इसी तरह पाप करते रहे तो सोचिये आपकी क्या स्थिति बनेगी?

आपने शास्त्र के माध्यम से सुना है कि अनन्त-अनन्त पुण्य बढ़ने पर यह जीव एकेन्द्रिय से बेइन्द्रिय में आया। इन्द्रियाँ क्या होती हैं, पच्चीस बोल जानने वालों को ज्ञात है। इन्द्र और इन्द्रिय दोनों अलग हैं। इन्द्र अर्थात् अतुल वैभव। इन्द्र अर्थात् श्रेष्ठतम शक्ति वाला। इन्द्र का वैभव, ऐश्वर्य, सुख कितना है? परन्तु ये इन्द्रियाँ इन्द्र से ज्यादा शक्तिशाली हैं। इन्द्रिय इन्द्रलिंगः। इन्द्र की पहचान है लिंग। ऐश्वर्य, बल और शक्ति की पहचान। एक-एक इन्द्रिय में न जाने कितना-कितना ज्ञान है। बहुत पुण्यवानी होती है तब एकेन्द्रिय का जीव बेइन्द्रिय में आता है। एक-एक योनी में असंख्यात भव हैं। आप गणना करने जाओ तो आपका कम्प्युटर फेल हो जाये। एकेन्द्रिय से बेइन्द्रिय, बेइन्द्रिय से तेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय से चउरिन्द्रिय, फिर पंचेन्द्रिय। पाँच

इन्द्रियों का स्वामी पंचेन्द्रिय होता है। इन्द्र की ताकत आपने सुनी होगी। इन्द्र क्षण-भर में जो चाहे कर सकता है। परन्तु इन्द्रियों का ज्ञान और उसका उपयोग यदि संवर करणी में करें तो कर्मों की निर्जरा करते देर न लगे। एक-एक इन्द्रिय का बल है और यदि पाँचों इन्द्रियों का बल संयुक्त हो जाय तो फिर कहना ही क्या? पाँचों इन्द्रियों की सहायता करने वाला है नोइन्द्रिय मन भी यदि वह जुड़ जाय तो आप अतुल बली हो जायेंगे।

जीव असन्नी से सन्नी कब बनता है? इन्द्रियों के साथ जब मन जुड़ जाय तो जीव सन्नी बनता है। इस जीव ने इतनी पुण्यवानी कर ली परन्तु इतनी पुण्यवानी होने के बाद भी इन्द्रियों का उपयोग क्या किया? क्या इसका उपयोग थाँरी-म्हारी में करना चाहिए? निन्दा-विकथा में, खाने-पीने में, मौज-शौक में ऐशो-आराम में या सोने में उनका उपयोग किया तो कहना होगा पुण्यवानी से उन्हें पाना, नहीं पाने के समान हो गया।

ये बहिनें चूँदड़ी ओढ़ती हैं। चूँदड़ी का उपयोग क्या है? क्या आँगन साफ करने में चूँदड़ी का उपयोग है? क्या अशुचि को पौंछने में इसका उपयोग है? आदमी वस्तु की कद्र करना जानता है लेकिन व्यक्ति की कद्र करना नहीं समझता। ये इन्द्रियाँ अनमोल हैं। इन्द्रियों का उपयोग साधना के लिए हो। आपको नर से नारायण, जीव से शिव, आत्मा से परमात्मा बनना है न कि तेल-लूण-लकड़ी में जीवन खपा देना है।

मैंने बहुत पागल देखे हैं। पर जो आदमी जानकार है, पढ़ा-लिखा है, सब कुछ समझता है उसे पागल कहूँ तो मेरा ऐसा कहना एकान्ततः गलत नहीं होगा। सचमुच आदमी पागल ही तो है। आप पूछेगें- "महाराज ! आदमी जानता है, ज्ञानी है तो फिर वह पागल कैसे?" इन्द्रियाँ और मन पाना अनमोल है। आप तेरी-मेरी में, हिंसा-झूठ में, चोरी-कुशील में लगकर न जाने कितने अनमोल रत्न-रूप सम्पत्ति को बर्बाद कर रहे हो? इन्द्रियों की

शक्ति सार्थक हो रही है या बर्बाद? आपका इस पर चिन्तन तक नहीं गया।

अधिकांश लोग ऐसे है जो कहते हैं- "महाराज! अपने लिए समय नहीं। आपको समय नहीं, पर मान लीजिये कोई दूसरा व्यक्ति आपके पास आ जाय तो शायद समय है, तब कहीं माला फेरते-फेरते या स्वाध्याय करते-करते उठ तो नहीं जाएँगे?" शास्त्र की भाषा में कहूँ- ये इन्द्रियाँ, मात्र ज्ञान करने के लिए हैं, न कि भोग भोगने के लिए। भोग करना इन्द्रियों का दुरूपयोग है। इन्द्रियों का सही उपयोग ज्ञान करने में है, भोग भोगने में नहीं। अगर इन्द्रियों का ज्ञान करने में उपयोग किया जाता है तो अब तक संसार में भटकना नहीं पड़ता।

आप जानते हैं- बच्चा जन्मता है तो क्या साथ लाता है? क्या जन्मते समय बच्चे के सोने का कन्दौरा होता है? सोने का कन्दौरा तो दूर की बात, धागा तक नहीं होता था। खाली हाथ आया था। आप-सब जन्मे थे तो हाथ खाली थे फिर पाँच-पचास रूपयों के लिए झगड़ा क्यों? अनन्त-अनन्त पुण्यवानी से प्राप्त मनुष्य जन्म का क्या महत्व है? आज इन्द्रियों का उपयोग ज्ञान के लिए नहीं, भोग के लिए हो रहा है तो उसे क्या कहना चाहिए?

एक बार चन्द्रराजजी सिंघवी दर्शनार्थ आए थे। वे बाहर खड़े रह गये, पाँच-सात मिनट बीत जाने पर भी अन्दर नहीं आए। उनके हाथ में कुछ था। पूछा- यह क्या? वे राजकीय अधिकारी थे। सेकेट्री लेवल के अधिकारी होने से मोबाइल मिला था। उस समय हर किसी के पास मोबाइल सुलभ नहीं था, शीर्ष अधिकारियों को साधन, सुलभ करवाया जाता। आज क्या स्थिति है? आज तो हर व्यक्ति के पास मोबाइल है। नाई हो, धोबी हो, मजदूर हो, सफाईकर्मी हो, बच्चा हो अथवा घर का कोई सदस्य क्यों न हो, हर एक के पास मोबाइल है। मोबाइल सबके पास है, लेकिन मोबाइल का

सही उपयोग सब करना नहीं जानते। मुझे कहना यही है कि एक-एक इन्द्रिय अनमोल है, उसका सावधानी से उपयोग करना चाहिए।

आज आँखें, कान, मुँह का क्या उपयोग हो रहा है? आप धर्म स्थान में बैठे हैं, यहाँ कोई किसी की निन्दा कर रहा है तो आपके कान सुनने के लिए बेताब हो जाते हैं। आज साधनों का दुरूपयोग किया जा रहा है इसीलिए कहा जाता है कि मनुष्य और पशु में क्या अन्तर है? पशु कौन? पश्यति चरम चक्षुः इतिः पशुः। जो चमड़े की आँख से देखता है, वह पशु है। पश्यति ज्ञानचक्षुः इति मानवः। जो बुद्धि से, ज्ञान से देखता है, समझता है वह मानव है। "मननात् इति मानवः।" मनन करने वाला मानव होता है। आप मानव हैं तो मुँह से गाली नहीं निकलनी चाहिए।

आप चिन्तन करें कि प्राप्त इन्द्रियों का उपयोग कर्म काटन में हो रहा है या कर्म बाँधने में? सुनना एक साधन है। अगर सही सुनना नहीं आया तो मानकर चलना कि जो नौ बोल मिलें हैं वे कहाँ ले जाएँगे? पहले के लोग कहा करते थे- नौ घाटी पार हो गई?[2] एक-दो घाटी पार करना कितना मुश्किल होता है, नौ घाटी पार हो जाना सहज नहीं है।

कहने को बहुत कहा जा सकता है। मानव वह है जो ज्ञान की आँख से देखे। ज्ञान की आँख हेय-उपादेय का बोध कराने वाली है। धर्म-अधर्म का, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का भान, ज्ञान की आँख से होता है। आपने ज्ञान का सही उपयोग नहीं किया तो कहने वाले कह देंगे- यह तो गधे पर चन्दन का बोझ लदा है।

हम हिंसा का त्याग करें नहीं तो कथनी और करनी में फर्क रहेगा। इन्दौर में एक बार भाषण प्रतियोगिता का आयोजन हुआ। अहिंसा पर प्रभावी भाषा-शैली में भाषण किया जा रहा था। बोलने वाला कहो या भाषण देने वाला वह ज्ञानी नहीं था। भाषण करते-करते लोग मंत्र मुग्ध थे।

वह वक्ता भी पसीने-पसीने हो रहा था। पसीना पौंछने के लिए जेब में रखे रूमाल को निकाला। रूमाल के साथ जेब में रखा अण्डा बाहर निकल आया। जो भाई अहिंसा पर तर्क पर तर्क रख रहा था, हिंसा त्याज्य है कह रहा था उसकी जेब से रूमाल के साथ अण्डे का निकलना क्या बहुरूपियापन नहीं है? क्या उसे अहिंसा की बात करने का हक है? आप उस बहुरूपिये पर हँस सकते हैं पर आपको भी यह विचार करना चाहिये कि जो कुछ उपदेश में कहा जा रहा है उसका पालन भी हो रहा है या नहीं। कहने और करने में फर्क है तो कहना प्रभावी नहीं हो सकता। तुलसीदासजी ने कहा -

काम, क्रोध, मद, लोभ की जब लग घट में खान।
तुलसी पण्डित-मूरखा, दोनों एक समान।।

आज अधिकांश मानव अच्छी बात कहते हैं किन्तु कहे अनुसार आचरण देखने को नहीं मिलता तो उसकी बात निष्प्रभावी रहती है। लोग कहने लग जाते हैं- "ये मुझे जैसा मन में आया कहते रहे तो क्या मैं उसकी सुनता ही रहूँ, सुनने की एक सीमा होती है। मैं क्यों सुनूँ? मैं कहाँ तक सुनूँ?" आपको इन्द्रियाँ मिली हैं, उनका सही उपयोग करें। अनन्त-अनन्त पुण्यवानी के उदय से इन्द्रियों की प्राप्ति हुई है, अगर इनका सदुपयोग किया जाय तो एक-एक समय में अनन्त-अनन्त कर्म काटे जा सकते हैं। आप प्राप्त इन्द्रियों का सुपयोग करें, यही मंगल मनीषा है।

जोधपुर
4 सितम्बर, 2011

संदर्भ-

1. अव्यवहार राशि में अनन्तकायिक जीव होते हैं। अनन्त जीवों का एक ही औदारिक शरीर हो, उन्हें अनन्तकायिक जीव कहते हैं। जो जीव सूक्ष्म व साधारण वनस्पतिकाय के

अपर्याप्त व पर्याप्त इन भेदों में ही जन्म-मरण करते आ रहे हैं, वे सभी जीव अव्यवहार राशि के कहलाते हैं। इसके अतिरिक्त सभी व्यवहार राशि के जीव कहलाते हैं।

2. चेतना के क्रम में जीवों के नौ प्रकार बतलाये हैं- पृथ्वीकायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय। जीव इन नौ घाटियों में घूमता-घूमता अपने प्रबल पुण्य के योग से दुर्लभ मानव तन को पाता है, जहाँ वह अपने अध्यवसायों की शुद्धि से संचित कर्मों को समाप्त कर जीवन की उच्चतम मुक्त दशा को प्राप्त कर सकता है।

सामंजस्य से समस्या का समाधान निकालें

संयम-साधना से आठों कर्म तोड़ने वाले सिद्ध भगवन्त, यथाख्यात चारित्र जैसा कहते वैसा आचरण करने वाले अरिहन्त भगवन्त तथा संयम की साधना में अपने-आपको लगाने वाले संत भगवन्तों के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन

बन्धुओं!

जिनशासन में तीर्थंकर भगवन्तों ने संसार के लिए अनन्त शब्द का प्रयोग किया है। संसार अनादि-अनन्त है। जीवन अनन्त है। लोकालोक भी अनन्त कहा जाता है। वर्णादि पुद्गलों की बात कह दें तो वे अनन्ता-अनन्त हैं। अध्यवसाय की बात कहने जायें तो वे भी अनन्त हैं। कर्म अनन्त हैं। अभवी अनन्त हैं। सिद्ध अनन्त हैं। प्रतिपाति सम्यग्दृष्टि अनन्त हैं। शुक्लपक्षी[1] बनने वाले का संसार अनन्त हैं। उस संसार का अन्त करने के लिए पुरुषार्थ किया जाय तो अनन्त पुरुषार्थ किया जा सकता है। आज हम संसार का अन्त करने वाले और आत्म-गुणों को अनन्त बनाने वालों की बात कहने जा रहे हैं। यदि जीव अनन्त पुरुषार्थ करे तो हम आत्म-गुणों को अनन्त बना सकते हैं। अनन्त चौबीसियें हुई हैं और होंगी। हम अनन्त बनने की विधि, पुरुषार्थ और प्रकटीकरण की बात कर रहे हैं।

मेरे पीछे क्या है, मैं देख नहीं पाता हूँ। मेरे ऊपर क्या है, पीछे क्या है इसे देखने के लिए पराये का सहारा लेना होता है। बिन्दी कहाँ लगी है,

देखने के लिए दर्पण चाहिए। पीछे में कहाँ दाग लगा हुआ है उसे अकेला देखना चाहे तो एक पीछे एक आगे दर्पण होगा तो ही वह देख पाएगा। पुरुषार्थ करने वालों की बात देखिये, जो कल तक ऊपर और पीछे नहीं देख पाते थे, वे आज लोकालोक देख रहे हैं।

कल तक दो दिन से नींद नहीं आ रही थी, माथा भारी हो रहा था, चक्कर आ रहे थे, उपाय किया तो सब ठीक हो गया। जिनके दर्शनावरणीय कर्म का उदय है उन्हें ऐसी परिस्थितियों से गुजरना पड़ सकता है। हमारा ध्यान बार-बार उधर जाता है कि नींद नहीं आई, चक्कर आ रहे हैं, यह स्वभाविक है। आँख में एक तुस पड़ जाय तो बार-बार हाथ वहाँ जाता है। पैर में काँटा लग जाय तो ध्यान वहाँ जाता ही है। मुँह में बत्तीस दाँत हैं। दो दाँत निकल जाये तो जीभ बार-बार वहाँ जाती है। आँख में पड़ा तुस दुःखदाई होता है, पैर में लगा काँटा जब तक निकाला नहीं जाता, पीड़ा देता है। एक बहिन रोटी बना रही है। रोटी बनाते-बनाते कभी तवे पर हाथ जल जाय तो तुरन्त आटा लगाया जाता है। क्यों? क्योंकि उष्णता सहन नहीं होती है। आँख में गिरा तुस, पैर में लगा काँटा, तवे पर अनजाने में जला हाथ सहन नहीं होता फिर जो घाणी में पीले जा रहे हैं वह उनसे कैसे सहन हुआ?

आपने सुन रखा है- खंदक के पाँच सौ शिष्य थे। उनको ज्ञान दिया गया, समझाया गया कि शरीर अलग है, आत्मा अलग है। आत्मा न मरती है, न कटती है और न ही घाणी में पिलती है। उनमें समता जगाई, सहनशीलता बढ़ाई तो एक-एक शिष्य जो घाणी में पिलता जा रहा था, उसका खून बहता जा रहा था, कहते हैं सहनशीलता के कारण अनन्त सुख को पाने में वे सभी शिष्य सफल हुए। हत्या, हत्या है। हत्या से मन अशान्त, खिन्न, उद्विग्न होता है। आप भजन की कड़ियों में बोलते भी हैं- "गो ब्राह्मण प्रमदा बालक नी, मोटी हत्या चारों।" मन खिन्न है, किसी काम में ध्यान नहीं लगता पर इन शब्दों का चिन्तन करते-करते कि यह शरीर अलग

है, मैं अलग हूँ ऐसा भेद ज्ञान हो जाय तो बेड़ा पार है।

गजसुकुमाल मुनि की बात आपने सुनी है। सर्दी-गर्मी क्या होती है? कभी सहन करने का उनको मौका नहीं आया पर जब देह से ममता हटी तो वही गजसुकुमाल अनन्त की ओर बढ़ गए। आपने शास्त्र की बात कई बार सुनी है। आज पहली बार सुन रहे हैं, ऐसा नहीं हैं। इतनी बार सुने लेने पर भी मिथ्यात्व क्यों नहीं गया? फिर कैसे आप, अपने-आपको सम्यग्दर्शनी मानते हैं, श्रावक समझते हैं। आप मानने को कुछ भी क्यों न मान लें, किन्तु जब तक शरीर और आत्मा का भेद ज्ञान समझ में नहीं आएगा तब तक कर्म कटने वाले नहीं हैं। कर्म कटना तो दूर की बात है, दिनचर्या तक नहीं बदलेगी। जो लोग चौबीसों घंटे जड़ के लिए जी रहे हैं, उन्हें आत्मा के लिए जीना नहीं आता। नोट करे लें- यह शरीर आपके साथ पहले नहीं था, सौ बरस बाद भी नहीं रहेगा। सौ बरस जिस दिन आ जायेंगे तब शरीर साथ नहीं रहेगा। जब साथ ही रहने वाला नहीं है तो उसकी चिन्ता क्यों करनी? आप शरीर की परवाह कर रहे हैं इसीलिए गर्मी दूर करने के लिए न जाने कितने-कितने जीवों की घात कर रहे हैं, उसकी कतई परवाह नहीं है, पर आप तो सोचते हैं कि मेरा शरीर गर्मी से बचे। शरीर जड़ है, नाशवान है। जड़ की साता के लिए चेतन को दुःख पहुँचाना कहाँ तक ठीक है?

बात यह है कि आपने शरीर को अपना मान रखा है। गर्मी सहन नहीं होती, सर्दी सहन नहीं होती। गर्मी-सर्दी की क्या कहूँ, आपको तो सच्ची बात भी सहन नहीं होती। अनुशासन की बात सहन नहीं होती। मिथ्या बात तो क्या, जो सही है वह भी सहन नहीं होती। साँप को छेड़ो, वह फुफकारने लगेगा। ऐसे ही कषाय हैं। कषायों में जिनका रमण है वे क्या करते हैं, आप जानते हैं। मुझे कहने की जरूरत नहीं। लोभ कषाय है। लोभी क्या करता है? चमड़ी जाय तो जाय पर दमड़ी नहीं जानी चाहिए। क्रोध, मान, माया, लोभ

सब कषाय हैं। इन कषायों के वशीभूत आदमी क्या-क्या गुनाह नहीं करता? आपको गुनाह सुनाएँ जायँ तो रोंगटे खड़े हो जायँ। वासना की पूर्ति के लिए बलात्कार तक की घटनाएँ हो रही हैं। मारने की घटनाएँ होती हैं। मैं तो कहूँगा बलात्कार करने वाले रावण नहीं, रावण के बाप हैं। मोह के वशीभूत क्या-क्या गुनाह किए हैं? जिस दिन गुनाह समझ में आ जाएँगें, कर्म काटते देर नहीं लगेगी। कर्म काटने वाला वीतरागी बनता है। ऐसे अनन्त वीतरागी हो गये हैं।

आज अनन्त चतुदर्शी है। अनन्त चतुदर्शी के दिन अनन्त जीवों की बात कहें तो कहना होगा- अनन्त जीव मोक्ष में गए हैं, संख्यात जा रहे हैं। उनकी गणना नहीं होती। इस अनन्त में कोई अन्तर आने वाला नहीं है। जिन्होंने भी कर्मों का क्षय किया उनकी विचारधारा में भेद हो सकता है पर कषायों के अन्त करने में किसी प्रकार का कोई भेद नहीं है। कषाय क्या है? अहंकार के नाम से कहें, पद-प्रतिष्ठा के नाम से कहें, लोभ के नाम से कहें, हर प्रवृत्ति के मूल में कषाय का अंश रहा हुआ है। जहाँ कषाय है, वहाँ समस्या है और जहाँ कषाय नहीं, वहाँ समधान है।

समस्या के समाधान के लिए कहीं जाने की जरूरत नहीं हैं। अपने स्वार्थ को तिलांजलि देने के साथ आदमी सोचे तो कोई विग्रह नहीं है, अन्यथा बात-बात में आग्रह है। संत आए हैं तो व्याख्यान होना चाहिए, यहाँ तक किसी को कोई समस्या नहीं, पर व्याख्यान कब हो? इसमें सब एक मत नहीं। बहिनों को दस बजे व्याख्यान की सहुलियत है क्योंकि तब तक नाश्ता निपट जाता है, बच्चों को स्कूल भेजने का काम भी तब तक हो जाता है। युवकों से पूछो तो वे कहते हैं- व्याख्यान साढ़े आठ बजे चालू होना चाहिए क्योंकि हम दस बजे आफिस जाते हैं। हर कोई अपनी सुविधा-सहूलियत से बात कहता है, पर संसार के दूसरे-दूसरे कामों में ऐसी बात नहीं होती। मान

लें किसी का ऑपरेशन होना है और डॉक्टर ने नौ बजे का समय दिया, वहाँ आप अपनी सहूलियत की बात नहीं कहते। ट्रेन के समय पर आप ट्रेन पकड़ते हैं, वहाँ अपनी सुविधा नहीं चलती। ट्रेन अपने समय से चलती है, जिनको जाना है वह उसी समय आएगा पर व्याख्यान के लिए अपनी-अपनी सहूलियत बताने वाले हैं। व्याख्यान कब हो और किसकी बात रहनी चाहिए यह निर्णय कौन करे? जरूरत है अपने स्वार्थ को छोड़कर सबकी सुविधा का ध्यान रखकर चलने की। जहाँ भी अलग-अलग राय हो, मध्यस्थ मार्ग निकालें।

अनन्त बनने वालों ने कषायों का अन्त किया है। कषाय घटते हैं, कब? समता आने पर अपने-आपका निरीक्षण करने वाला कषाय घटाता है। मरना कोई नहीं चाहता। डॉक्टरों ने जवाब दे दिया है फिर भी वेन्टीलेटर पर और नलियाँ लगा कर भी आदमी जीना चाहता है। आदमी का प्रयास रहता है कि मेरा शरीर नहीं छूटे। एक तरफ शरीर की ममता है तो दूसरी तरफ जिन्हें समता का अनुभव होता है वे चाहते हैं, सोचते हैं, विचार और चिन्तन करते हैं कि मैं इस जेलखाने से कब छूटूँ? जिन्होंने कर्म छोड़े है, तेजस-कार्मण शरीर छोड़ा है, वे अटल अवगाहन में गए हैं।

कर्मों का अन्त करना है उसके लिए कहा गया- इस शरीर का अन्त करना है और आत्म-गुणों को अनन्त करना है। इसके लिए औषधि बताई जा रही है। सम्पूर्ण रोगों की एक दवा है- अपने-आपमें रमण करना चालू कर दें। जब तक बाहर में देखते रहेंगे, तब तक यह ऊँचा, यह नीचा, यह तेरा, यह मेरा करते रहेंगे। जब तक तेरा-मेरा रहेगा, अपने-आपमें देखना नहीं होगा।

समता धारण करने के लिए नाम-कर्म की बपौतियों को समाप्त करना होता है। यहाँ बहुत लोग बैठे हुए हैं। आपके बीच में कोई बावना

आदमी आ जाय तो शायद कइयों की नजर उस ओर चली जाएगी। सौ गोरे बैठे हुए हैं उनमें यदि एक काला-कलूटा आ जाय तो क्या उस ओर नजर नहीं जाएगी? नाक की जगह कान और कान की जगह नाक कर दी जाय तो? हाथ की जगह यहाँ है, उसे कहीं ओर दिखा दें तो? कहना होगा- नाम कर्म की बपौतियों को जिन्होंने दूर कर दिया, वे समता धारण कर सकते हैं।

नाम-कर्म क्षय से कौनसा गुण प्रकट होता है? आप सिद्धों के आठ गुण बोलते हैं उनमें एक गुण है अमूर्तिक। एक-एक गुण प्रकट करने में कुछ नुकसान होने पर जो घबरा जाते हैं वे गुण प्रकट नहीं कर पाते लेकिन जो अपने-आपके वास्तविक स्वरूप को पहचान लेते हैं वे कर्म-क्षय करने में आगे बढ़ जाते है। समस्या है तो समाधान की जरूरत होती है। छोटी अवस्था में गजसुकुमाल मुक्ति में जा सकते हैं तो आप क्यों नहीं जा सकते?

आज समस्याएँ तो हैं, साथ-ही-साथ युवा पीढ़ी में समन्वय की कमी भी है। समन्वय की कमी के कारणों से युवकों को जूझना पड़ता है। युवकों को कर्त्तव्य के बजाय अधिकारों की अधिक चिन्ता है। कहना होगा- समस्या का मूल इसी में निहित है। हर आदमी कर्त्तव्य करता जाय तो अधिकार बिना माँगे मिलते रहते हैं। अधिकार माँगता रहे और कर्त्तव्य का पालन नहीं करे तो अधिकार से "अ" का लोप हो जाता है। अधिकार वाला यदि कर्त्तव्य का पालन न करे तो धिक्कार का पात्र बन जाता है। जो कर्त्तव्य का निर्वहन कर रहा है, उसे अधिकार की जरूरत नहीं रहती क्योंकि जो काम करने वाला है, ड्यूटी निभाने वाला है, वह सबको हाथ जोड़कर चलता है। समन्वय करके चलने वाला सबका प्रिय तो होता है।

बड़ा कौन होता है? काम करने वाला बड़ा होता है या अधिकारी ? अधिकार की चाहना वाला कर्त्तव्य को भूल जाये तभी समस्याएँ सामने आती हैं। अगर आप संघ-समाज का उत्थान चाहते हैं, तो गुण प्रकट कीजिए। नोट

कीजिए- अकेला तिनका आँगन में फैले कचरे को साफ नहीं कर सकता। एक के साथ एक अनेक तिनके साथ हो जायँ तो वह झाड़ू घर-आँगन की सफाई कर सकता है।

आप एक-दूसरे के साथ संयुक्त होकर कर्त्तव्यपालकों का संगठन बनाइये। आप अगर संगठित हो जाते हैं तो अधिकारी आपके पास आएँगे, पूछेंगे और महत्व देंगे। भोले-भाले लोगों का जुड़ना सरल है। बच्चों को प्रोत्साहित करके जोड़ा जा सकता है लेकिन जवानों को बच्चों की तरह न समझाया जा सकता है और न जोड़ा ही जा सकता है। आप संघ-सेवी हैं तो कर्त्तव्य समझ कर संघ को सक्रिय कीजिए। इसके लिए सबसे पहले आप, अपने-आपको देखें।

शरीर में भले ही वह ताकत नहीं, किन्तु मन मजबूत है तो इकत्तीस दिन की तपश्चर्या भी भारी नहीं लगती। मुझे तपस्वी बहिन को देखकर कहावत याद आती है- दुबलो देख डरनो नहीं। शरीर का दुबलापन नुकसानकारी नहीं, जितना मन का कमजोर होना नुकसानदेह है। संवत्सरी महापर्व चला गया, फिर भी जिनका मन मजबूत है वे मासखमण कर रहे हैं। संकल्प वालों के लिए हर समय अनुकूल होता है। अच्छे काम के लिए हर समय अच्छा होता है। आप गुण-ग्रहण करने में बढ़िये, बढ़ने का प्रयास कीजिए। आपने सुन रखा है कि जामवन्त के साथ हनुमान समुद्र के किनारे जाकर बैठ गया। इतना विशाल समुद्र कैसे पार किया जा सकता है? जामवन्त ने हिम्मत दिलाई। कहा- "हनुमान ! तेरे में वह शक्ति है, तू चाहे तो समुद्र को छलाँग लगाकर पार कर सकता है।" जामवन्त के उत्साही बोल सुनकर हनुमान की सोई शक्ति जागृत हो गई और उसने देखते-देखते समुद्र पार कर लिया।

आज युवकों को उत्साहित करने की जरूरत है। जगिये, जगेंगे तो

अपने अन्दर रही शक्ति जागृत होगी। भगवान् का जन्म-कल्याणक होता है तब 1008 घड़ों का पानी पड़ता है, वह कैसे सहन होता है? भगवान् ने अँगूठे से मेरूपर्वत हिला दिया। शक्ति मन में चाहिए। आपके मन में संघ के प्रति दर्द है, संघ के प्रति श्रद्धा है तो आप संकल्प-शक्ति के साथ आगे बढ़ सकते हैं। बाल अवस्था में गजसुकुमाल मुनि का तालु देखो इतना नरम परन्तु जब शरीर पर अंगारे रख दिये जाते हैं, तो कैसे सहन हुए होंगे?

आपने जानवरों का देखा है। जानवरों में शक्ति है परन्तु उन्हें वश में करना हो तो जहाँ उनका मुलायम स्थान है वहाँ से वश में करने की प्रक्रिया की जाती है। ऊँट है तो नाक बींदा जाता है, घोड़े के मुँह में लगाम लगाई जाती है। हाथी है तो उसका सबसे कोमल अंग मस्तक है जहाँ महावत मस्तक पर अंकुश रखता है तो भारी-भरकम हाथी सीधा-सीधा चलता है। कच्चे स्थान पर वेदना अधिक होती है, आप कच्चावट दूर करके अपने-आपको आगे बढ़ाने के लिए संगठित बनिए फिर आपके लिए कोई काम मुश्किल नहीं होगा। जगिये और आगे बढ़िये, यही मंगल भावना है।

जोधपुर
11 सितम्बर 2011

संदर्भ

1. जब किसी जीव का अर्द्ध पुद्गल परावर्तन संसार परिभ्रमण शेष रहता है, तब से वह जीव शुक्लपक्षी कहलाता है। अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल में अनन्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल बीत जाते हैं। भवी जीव ही शुक्लपक्षी बनते हैं।

सकारात्मक हो दृष्टि अपनी

संसार के जीव मात्र पर अनन्त करुणा करने वाले सिद्ध भगवन्त, सदेह प्रत्यक्ष उपकारी अरिहन्त भगवन्त तथा साधना में चरण बढ़ाकर साधकों का मार्ग-निर्देशन करने वाले संत भगवन्तों के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन!

बन्धुओं!

सुनी हुई बातों में एक बात ध्यान में आ रही है कि दृष्टि में परिवर्तन किए बिना सृष्टि में परिवर्तन नहीं आता। एक काम एक की नजर में घृणित है, बुरा है, नहीं करना चाहिए वही काम दूसरे की नजर में अच्छा है, करना चाहिए और करने लायक है। आचार्य भगवन्त (पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमलजी महाराज) से एक दृष्टान्त सुना। गोचरी जाते हुए कहीं पत्थर का काम चल रहा था। तीन आदमी पत्थर गढ़ाई का काम रहे थे। एक अच्छे घर-घराने में जन्मा फिर भी परिस्थिति कुछ ऐसी थी कि उसे पत्थर तोड़ने पड़ रहे थे। पत्थर उठाकर रखने और टाँचने का काम करना पड़ता था। उसको पूछा- "भाई! तुम्हारी आजीविका कैसे चल रही है?" उसका उत्तर था- "भाग में भाटा भाँगणा लिखियोड़ा है, इण वास्ते भाटा भाँगू हूँ।" घर-परिवार अच्छा है, कुल-खानदान अच्छा है लेकिन परिस्थिति ऐसी आ गई जिससे उसे पत्थर तोड़ने का काम करना पड़ रहा है।

दूसरे व्यक्ति से भी यही प्रश्न किया गया। उसका जवाब था-

"भगवान् का बड़ा उपकार है, मैं कहीं चोरी नहीं करता, भीख नहीं माँगता, किसी के आगे हाथ नहीं फैलाता। मैं मेहनत करके, काम करके, शान से जीवन चला रहा हूँ। काम पहला व्यक्ति भी वही कर रहा है और दूसरा भी पत्थर तोड़ने और गढ़ने का ही काम करता है परन्तु दोनों की सोच में अन्तर है। एक कहता है- पत्थर तोड़ने का काम करना पड़ता है, दूसरा कहता- अभी पुण्यवानी है, माँगने की जरूरत नहीं है, हाथ-पैर चलते हैं, इसलिए काम करके संतोष का अनुभव कर रहा हूँ।

तीसरे व्यक्ति से भी यही सवाल किया गया। उसका जवाब था- "यह मेरी पुण्यवानी है, मेरी किस्मत अच्छी है इसलिए मुझे पत्थर काटने-छाँटने का काम मिला। मैं पत्थर को प्रतिमा बना रहा हूँ। यही प्रतिमा कल मन्दिर में प्रतिष्ठापित होगी,लोग पूजा करेंगे, मुझे इसकी भी दलाली मिलेगी।"

काम तीनों का एक-सा है। काम में फर्क नहीं, मगर दृष्टिकोण तीनों का अलग-अलग है। रोटी बनाने वाली बहिन कहे-"म्हारे तो ओ ही छाती-कूटो लिख्यो है, म्हारों जीवन तो इण में ही पूरो होवण वालो है।" दूसरी बहिन इसी काम को उत्साह के साथ करते हुए प्रसन्नता का अनुभव करती है। एक पाप रूपी कर्मबन्ध करती है, एक पुण्य-बन्ध करती है।

काम कोई खराब नहीं होता। काम छोटा भी नहीं होता। आपने पत्थर का काम करने वाले तीनों व्यक्तियों के उत्तर सुने। तीसरा व्यक्ति भी वही पत्थर तरासने का काम करता है। दिन भर उसी काम पर वह खुशी-खुशी काम करता है, उसे काम करने से संतोष है। वह कहता है- मैं मूर्ति बना रहा हूँ। मेरे द्वारा निर्मित मूर्ति मन्दिर में प्रतिष्ठापित होगी। लोग मूर्ति के दर्शन करने आएँगे, मूर्ति की पूजा होगी। तीनों आदमियों के उत्तर अलग-अलग हैं। यह है दृष्टि- दृष्टि में अन्तर।

एक को आपने मुँहपत्ति दी। उसकी दृष्टि में क्या भाव है- यह कपड़े का टुकड़ा है, किस काम का है। वह उसे फेंक देता है। दूसरा मुँहपत्ति का

उपयोग करता है। एक ने सदुपयोग किया, एक ने दुरुपयोग किया। एक निर्जरा करता है, दूसरा कर्म-बन्ध करता है। यह अन्तर है दृष्टि का। कर्म-बन्ध, भावना पर निर्भर करता है तो कर्म काटना भी भावना से होता है। भाव प्रशस्त है तो पुण्य का अर्जन हो सकता है और भावों में मलिनता है तो पापों के कर्म-बन्धन से बचा नहीं जा कसता। रोटी बनाना आरम्भ का काम है। आरम्भ से बनी रोटी भी यदि संत के अचानक पधारने पर बहराने के उपयोग में आई तो वह पाप का काम होते हुए भी निर्जरा का निमित्त हो सकता है। तीर्थंकर भगवान् के शब्दों में कहूँ-

जे आसवा ते परिस्सवा, जे परिस्सवा ते आसवा,
जे अणासवा ते अपरिस्सवा, जे अपरिस्सवा ते अणासवा।

-आचारांगसूत्र अ.4, उ.2, सूत्र-134

अर्थात् जो बन्धन के हेतु (आस्रव) हैं वे कभी कर्म-निर्जरा (मोक्ष) के हेतु हो सकते हैं और जो कर्म-निर्जरा के हेतु हैं वे ही कभी बन्धन के हेतु हो सकते हैं। एक काम कर्म-बन्ध का कारण भी हो सकता है तो कर्मनिर्जरा का एक कारण भी बन सकता है। स्थानक में झाड़ू निकालने वाला निर्जरा कर सकता है तो यहाँ बैठकर सामायिक करने वाला कर्म-बन्धन कर सकता है। कर्मबन्धन का कारण क्या है? व्यक्ति का दृष्टिकोण कारण है। दृष्टिकोण में सकारात्मकता हो, काम करने वालों को प्रोत्साहित किया जाय, सेवा करने वालों की कद्र हो तो वह काम कर्म-निर्जरा का हो सकता है। परन्तु किसी काम को हल्का बताया तो कर्मबन्धन से बचना नहीं होगा। इसलिए किसी काम में हल्कापन मत देखो।

काम करते-करते आश्रव भी हो सकता है, तो संवर भी हो सकता है। एक पिंगला कर्म बाँधने वाली है तो वहीं पिंगला कर्म काटने वाली हो सकती है। पिंगला वही है पर दोनों एक होते हुए भी दृष्टि के कारण दोनों में परिवर्तन दिखता है। बुरे से बुरा आदमी अच्छा बन सकता है। व्यक्ति बुरा नहीं होता। बुराई आदमी की दृष्टि में होती है। कभी किसी के मन में बैठ गया

कि अमुक बुरा है तो फिर वह हर काम में उसकी बुराई ही देखता है। बुरा आदमी अच्छा बनने की कोशिश करता है तब भी उसके प्रति दृष्टि में जब तक परिवर्तन नहीं आता तब तक वह अच्छा करते हुए भी बुरा लगता है।

संसार को बदलने के लिए खुद को बदलिये। विश्व को बदलने के पहले विश्वास बदलिये। सृष्टि बदलने के पहले दृष्टि बदलिये। बुरा कब तक बुरा रहता है? बचपन था तब चंचलता थी, लेकिन अब वह बात नहीं रही। आप बचपन में जैसा करते थे, क्या आज भी वैसा ही करते हैं? आप अपना सोचना, मुझे मत पूछना। मैं भी मानता हूँ बचपन में नादानी रहती है, पर हर समय नादानी का ही भाव रहे, ऐसा सोचना सही सोच नहीं है। बदलिये, पूर्व के आग्रह को बदल देंगे तो आप स्वयं समाधि में रहेंगे और यदि दृष्टि नहीं बदली तो फिर कहावत है ना- ''वो ही डाँडौ, वो ही कवाड़ियो।''[1]

दृष्टि में परिवर्तन कीजिये। दृष्टि को सकारात्मक बनाइये। दृष्टि नहीं बदली तो न स्वयं को शांति मिलेगी, न दूसरों को समाधि प्राप्त हो सकेगी। मैं फिर कहूँ- सारे काम एक आदमी नहीं कर सकता है। आप अपना काम करें, दूसरों को जो उनका काम है करने दें। आपकी सकारात्मक सोच बन गई तो आप स्वयं समाधि में रहेंगे, संघ-समाज में शांति रहेगी। आप शांति और समाधि के रास्ते पर चलेंगे तो आपका सुनना और समझना सार्थक होगा।

जोधपुर
13 सितम्बर, 2011

संदर्भ

1. वही लकड़ी का हत्था और वही कुल्हाड़ी। जब कोई समझाने-बुझाने पर भी अपने दुराग्रह को या हठ को नहीं छोड़ता है तब इस उक्ति का प्रयोग होता है।

सामायिक को समाज-धर्म बनाइये

स्व-स्वरूप में रमण करने वाले सिद्ध भगवन्त, अनन्त ज्ञानी अरिहन्त भगवन्त तथा तप-संयम की साधना में आत्मा को भावित करने वाले संत-भगवन्तों के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन!

बन्धुओं!

तीर्थंकर भगवान् महावीर की वाणी में अभी उदय को बदलने के बजाय अन्तर को बदलने की बात कही गई है। अन्तर सुनने मात्र से नहीं बदलता। अक्षर का ज्ञान दिया जा सकता है, शिक्षा दी जा सकती है, सभ्यता सिखाई जा सकती है पर अन्तर की अनुभूति, अन्तर के ज्ञान से होती है। निमित्त से भी होती है, पर वह भी होगी अन्तर से। जिसका अन्तर जग गया, उसको बाहर का निमित्त मिले या नहीं, फर्क नहीं पड़ता। ऐसे भी अनन्त साधक हैं जो स्वयंबुद्ध हुए हैं। उन्हें बोध देने के लिए बाहर के किसी निमित्त की आवश्यकता नहीं पड़ी। उनके लिए बाहर के निमित्त का कथन किया जाता है वे स्वयंबुद्ध नहीं हैं। किसी को चूड़ी से वैराग्य आ गया। क्या चूड़ी ने ज्ञान दिया? बैल को देखकर वैराग्य आ गया।[1] बैल तो कुछ बोलता नहीं। समुद्रपाल को चोर की सजा देखकर वैराग्य हो गया।[2] चोर को देखकर आप में से किसी को वैराग्य हुआ है? क्या आपने किसी चोर को कभी नहीं देखा है? आपने चोर को कई बार देखा है परन्तु वैराग्य नहीं आया। क्यों नहीं आया? क्या चोर को देखना वैराग्य का कारण है? किसी को इन्द्र की

ध्वजा देखकर वैराग्य आ गया।[3]

आप अन्तर में सोचने के लिए कब बैठे? हम कब अन्तर का निरीक्षण करते हैं? भगवान् की भाषा में कहूँ- हर साधक के लिए वर्णन है कि वह पहले प्रहर में स्वाध्याय करे, दूसरे प्रहर में ध्यान करे। ध्यान क्या है? जो कुछ मैंने ज्ञान सीखा है, सुना है, ग्रहण किया है उसका मेरे जीवन में क्या प्रभाव पड़ा? स्वयं का स्वयं के द्वारा निरीक्षण क्या है? भगवान् की भाषा में कहूँ- भगवान् ने स्वाध्याय का अर्थ किया है "अपने-आपका अध्ययन, स्वयं द्वारा स्वयं का निरीक्षण स्वाध्याय है। अपने द्वारा, अपने-आपका, अपने-आप में अपना निरीक्षण करना स्वाध्याय है।"

आप सबसे पहले मुझे इस बात का जवाब दो कि चौबीस घंटे में से आप अपने-आपके लिए कितना समय दे रहे हैं? कब समय देते हैं? क्या कभी किसी ने सोचा है कि मैंने अमुक व्रत लिया तो क्या उसकी बराबर पालना हो रही है या नहीं? व्रत नहीं लिया तो चिन्तन करो कि मैं कौन-कौन से व्रत ले सकता हूँ? जो व्रत मैं ले सकता हूँ, मैंने वे व्रत क्यों नहीं लिए? क्या आपका इन प्रश्नों पर कभी विचार गया है?

देवता दीक्षा नहीं ले सकते। दीक्षा तो क्या, कोई व्रत-प्रत्याख्यान तक नहीं कर सकते। नरक के जीवों के लिए कह दिया कि वे भी दीक्षा नहीं ले सकते। तिर्यंच के लिए कह दिया कि वे श्रावक तो बन सकते हैं किन्तु दीक्षा नहीं ले सकते। भगवान् ने मनुष्यों के लिए क्या कहा? अन्तगडदसासूत्र का आठ दिन ही नहीं, आठ महिने भी हम व्याख्यान सुना दें, परन्तु खुद का चिन्तन नहीं किया तो किसी की न दीक्षा हुई है, न होगी ही। आप पिता को देखते हैं, माता को देखते हैं, पत्नी और पुत्र को देखते हैं, आपके पास सबको देखने का समय है किन्तु अपने-आपको देखने के लिए समय नहीं। जब अपने-आपको देखने का समय नहीं तो दीक्षा कैसे हो?

सुनता हूँ- स्वाध्याय करते-करते कोई वैरागी हो गया। पूज्य श्री

धन्नाजी महाराज की बात कह सकता हूँ। उन्हें गुरु मिला नहीं, उन्होंने खुद गुरु की खोज की। आप स्वाध्याय करते हैं या नहीं? स्वाध्याय का मतलब दशवैकालिक या पुच्छिस्सुणं का पाठ कर लेना ही नहीं है, बल्कि शास्त्रों में जो गाथाएँ हैं उनका अर्थ अपने-आप पर कहाँ तक जमा है, देखना है। स्वाध्याय कब चालू करेंगे? आप अपने आपको जानें, समझें, देखें। आठ साल का बच्चा तेला कर सकता है पर तीस साल के बच्चे का बाप उपवास तक नहीं कर सकता। क्यों? क्या आपके मन में तपस्या करने की भावना आती है? क्या कभी यह भी सोचा है कि मेरा लड़का कर रहा है तो मुझे क्यों नहीं करना चाहिये? बेटा कर सकता है तो बाप क्यों नहीं कर सकता? बात यह है कि आपका उस तरफ चिन्तन चला ही नहीं।

मुझे पैंतीस वर्ष के भाई को समकित देने का मौका आया। समकित देकर मैंने कहा- हम रुपया, नारियल तो लेते नहीं, अतः गुरु दक्षिणा में मैंने साल भर में दो उपवास करने की बात कही तो वह भाई बोला- "बाबजी! आज तक मैंने कभी उपवास किया ही नहीं।" मैंने पूछा- "भाई! क्यों उपवास नहीं किया?" उसका जवाब था- "मैंने कभी व्याख्यान ही नहीं सुना।" क्या उसने घर में किसी को उपवास करते नहीं देखा? क्या कभी पर्युषण में लोगों को तप करते नहीं देखा? उसने सैंकड़ों-हजारों को तप करते देखा है। तपस्या करने वालों को धन्यवाद भी बोला है, पर खुद के करने की मन में नहीं आई। क्यों? क्योंकि उस तरफ उसका चिन्तन चला ही नहीं। जब तक सुनी-समझी बात अन्तर्मन तक नहीं जाती, तब तक व्रत करने की भावना नहीं जगती और व्रत-प्रत्याख्यान के प्रति लगाव भी नहीं बनता।

हम मुम्बई से अहमदाबाद आ रहे थे। बीच में एक गाँव में ठहरना पड़ा। गाँव का नाम था- बोर्डी। संत वहाँ गोचरी गए। वहाँ सुनने को मिला- इस घर में तेरहजनों ने दीक्षाएँ ली हैं। घर के सभी सदस्य दीक्षित हो गए। मैं पूछूँ- आपके घर से किसी की दीक्षा हुई? आपके घर से किसी की दीक्षा हो

क्या यह बात मन में आई? क्यों नहीं आई? निमित्त मिलता है पर निमित्त के साथ जब तक अन्तर्हृदय नहीं जगेगा, तब तक व्रत लेने की बात मन में नहीं आएगी। किसी को सारक्षता का ज्ञान दिया जा सकता है। शिक्षा दी जा सकती है, ली जा सकती है। परन्तु अन्तर का ज्ञान, अन्तर से ही आता है। अन्तर का ज्ञान न दिया जा सकता है और न ही लिया जा सकता है। हाँ, निमित्त कोई भी बन सकता है।

गुजरात की बात कहूँ। घर में तप के पारणे का दिन था। पारणा करते-करते डोकरा गुड़ गया (वृद्ध का देहावसान हो गया)। आवाज आई- डोकरा गुड़िगय्या छे। तमारे पण जावानुं छे (अन्तर में आवाज आई "वृद्ध तो चला गया, परन्तुएक दिन तुम्हें भी जाना है।")।

डोकरे की श्मशान यात्रा में चलते-चलते ग्यारह वैरागी हो गए। एक ही परिवार के ग्यारह सदस्य वैरागी तो बने ही, दीक्षित भी हो गये। मैं, मात्र दीक्षा की बात नहीं कह रहा हूँ। मुझे आपसे यह कहना है कि यहाँ कौनसा व्यक्ति है जो अपने लिए एक घंटा निकाल कर सामायिक नहीं कर सकता, प्रतिक्रमण नहीं कर सकता, अपनी आलोचना नहीं कर सकता? कर सकते हैं, पर कब? जब आप समय निकालें। मैं कई बार जैनों के बच्चों में ईसाईयों और मुसलमानों की बात उदाहरण के रूप में कहता हूँ। रिक्शा चलाने वाला रिक्शा छोड़कर नमाज पढ़ता है। आप रिक्शे में बैठे हैं उस समय बैठे-बैठे नमस्कार मंत्र तक नहीं जपते। मुसलमान चाहे राष्ट्रपति है तब भी नमाज पढ़ता है। आप में से कौन है जो अपने घर के सदस्यों से कहता है कि दूसरे काम बाद में, पहले सामायिक करो। सामायिक करके अन्न-जल लेना, ऐसा कहने वाले हैं या नहीं? आपने सब कामों के लिए प्रयास किया, किन्तु अपनी आत्मा के लिए क्या चिन्तन किया है? अगर चिन्तन करते तो खुद सामायिक करने की कहते।

आज बच्चों को तैयार करके स्कूल भेजना याद रहता है। बच्चे कभी

स्कूल जाने में आना-कानी करे तो उन्हें टॉफी देकर भेजते हैं। ओसवाल समाज में कभी नियम था कि जब तक घर वाले नवकार मंत्र नहीं जप लेते तब तक अन्न-जल नहीं दिया जाता। आपकी दुकान पर मुनीम रहता है। मुनीम काम पर आ गया, क्या उससे पूछा जाता है कि तुम सामायिक करके आए हो? क्या आप सामायिक नहीं करके आने वाले मुनीम को कभी कहते हैं कि- "जा, पहले सामायिक कर, फिर काम पर लग।" आप इतने लोग बैठें हैं उनमें से कौन हैं जो अपने घर वालों से कहते हैं- "पहले नवकार मंत्र जपें या सामायिक करें।" आप अपने छोटे-से बच्चे को, यदि उसने अण्डरवियर नहीं पहनी है तो कहकर पहनाते हैं। कपड़े पहनाना याद है पर कितने हैं जो नवकार जपने की याद दिलाते हैं? आज कभी बच्चा सामायिक करता है तो घर वाले पूछते हैं क्या तुम्हे महाराज बनना है?

आप चिन्तन करें। बच्चों के खाने-पीने का आप विचार करते हैं, घर में कोई बीमार है तो उसके उपचार की सोचते हैं। शिक्षा, चिकित्सा, घर की साफ-सफाई, काम-धंधे सबके लिए आपका चिन्तन है परन्तु अपने-आपका कितना चिन्तन है? आप यदि बच्चों को संस्कारित करने का चिन्तन करें तो वह दिन दूर नहीं जब घर-घर में वैरागी बन सकेंगे। संगति और संस्कार से जीवन प्रशस्त होने का मार्ग खुलता है। धार्मिकजनों को चाहिए कि वे सबसे पहले यह नियम करें कि घर का हर सदस्य बिस्तर से उठते और सोते समय कम से कम नमस्कार महामंत्र तो जपेगा ही। कुछ लोग जपते हैं। कुछ शायद हैं जो चौदह नियम चितारते भी हैं। तीन मनोरथ का चिन्तन करने वाले भी हैं। जो करते हैं, अच्छी बात है। पाँच मिनट यह भी विचार करें कि मैं धर्म में कौनसी आराधना कर सकता हूँ और जो कर सकता हूँ वह हुई है या नहीं? कभी घर का सदस्य भोजन नहीं करे तो बार-बार पूछते हैं। कभी कोई दुकान नहीं जाए तो बार-बार पूछते हैं, पर सामायिक हुई या नहीं, इसकी पूछ कौन करता है? शायद महाराज के अलावा

कोई पूछने वाला नहीं है।

जगिये ! कुछ समाज धर्म बनाइये। जैसे मुसलमानों में नमाज पढ़ना समाज-धर्म है, सिक्खों में पाँच क-कार, समाज-धर्म है, दिगम्बरों में रात में नहीं खाना समाज-धर्म है वैसे ही आपका समाज-धर्म क्या है? संस्कार-निर्माण के लिए अपने-आपको तैयार कीजिए। अपने विकास के लिए धर्म और संघ की दीप्ति के लिए, बच्चे-बच्चियों में संस्कार सृजित करने के लिए कोई समाज-धर्म होना चाहिये। स्थानकवासी समाज का बच्चा कम से कम उठने के साथ नमस्कार मंत्र गिनेगा अगर इतना-सा समाज-धर्म के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है तो धीरे-धीरे आप सामायिक, प्रतिक्रमण और साधना भी समाज-धर्म के रूप में करने लगेंगे। जगिये, घर परिवार के लोगों को जगाइये, संघ-समाज में व्रत-नियम की लहर पैदा कीजिए तो आपका प्रवचन सुनना सार्थक होगा।

जोधपुर
15 सितम्बर, 2011

संदर्भ-

1. कलिंग देश की राजधानी चंपापुरी में महाराज दधिवाहन अपनी महारानी पद्मावती के साथ सुखपूर्वक राज्य करते थे। महारानी पद्मावती वैशाली गणराज्य के महापराक्रमी राजा चेटक की सात पुत्रियों में सबसे बड़ी थी। उनके एक पुत्र था- करकंडू। रानी जब गर्भवती थी तब वह किसी कारण से राजा से बिछुड़ गई। एक दिन साध्वीजी के उपदेश से रानी को वैराग्य हो गया और वह साध्वीजी से दीक्षित हो गई। दीक्षा के बाद जब गर्भ के लक्षण दिखने लगे तो उसने साध्वीजी से क्षमा माँगी और कहा कि यदि मैं गर्भ की बात बता देती तो आप मुझे दीक्षा नहीं देती। साध्वीजी ने गुप्त रूप से प्रसव का प्रबंध किया। शिशु के जन्म होने पर उसका नाम रखा- करकंडू।

   कंचनपुर का राजा निःसंतान था। वह मर गया। मंत्रियों की सलाह पर नये राजा का चुनाव करने के लिए यह तय किया गया कि राजा की हस्तिनी जिसको पुष्प माला

पहनायेगी, उसका राज्याभिषेक कर दिया जायेगा। करकंडू उसी नगर में वृक्ष के नीचे सोया हुआ था। हस्तिनी ने उसका जलाभिषेक कर पुष्प माला करकंडू के गले में डाल दी। करकंडू को हाथी पर बैठा कर नगर में ले गये और उत्सवपूर्वक उसका राज्याभिषेक कर दिया। करकंडू ने अपने पिता को कभी नहीं देखा था।

कुछ बातों को लेकर चंपा के महाराज दधिवाहन और कंचनपुर के महाराज करकंडू के बीच लड़ाई छिड़ गई। उस समय साध्वी पद्मावती कचंनपुर में थी। पिता-पुत्र के बीच युद्ध का समाचार सुनकर वह सेनाओं के बीच में आ खड़ी हुई और पिता-पुत्र को समझाया और महाराज दधिवाहन को बताया कि करकंडू उन्हीं का पुत्र है। करकंडू पिता के चरणों में झुक गया और महाराज दधिवाहन ने उसे योग्य समझ चंपा का सिंहासन सौंप दिया और स्वयं दीक्षित हो गये।

करकंडू दोनों राज्यों की व्यवस्था देखता था। उसे गौवंश बहुत प्रिय था। एक बार उसकी नजर एक दूध जैसे धवल बछड़े पर पड़ी। उसको उससे स्वभावगत राग हो गया और गौशाला के व्यवस्थापक को बुलाकर कहा कि इस बछड़े का विशेष ध्यान रखना। करकंडू राज्य व्यवस्था में इतना व्यस्त हो गया कि कई वर्षों तक अपने प्रीतिपाल बछड़े को नहीं देख सका। एक दिन उसने सोचा कि वह बछड़ा तो अब काफी बड़ा और सुन्दर हो गया होगा। इन्हीं विचारों के साथ वह एक दिन गौशाला का निरीक्षण करने पहुँच गया। वहाँ उसने अपनी कल्पना के सुन्दर बछड़े को न पाकर गौपालक को उपालम्भ दिया। उसे अपने सामने लाने को कहा। गौपालक एक कृशकाय बैल को लेकर राजा के सम्मुख आ गया। राजा ने गौपालक को डाँटते हुए कहा- "तुमने मेरे बछड़े का ध्यान नहीं रखा, इसलिए इसकी यह हालत हो गई दिखती है।" गौपालक ने कहा- "राजन्! उम्र के हिसाब से यह बैल अब बूढ़ा हो गया है, इसलिए इसकी यह हालत है।"

'बूढ़ा' यह शब्द सुनते ही राजा का चिंतन शुरु हुआ- "क्या मेरा बल, वैभव, सुन्दरता भी ऐसे ही नष्ट हो जाएगी? यदि हाँ, तो इस नश्वर काया का मोह क्यों करना? इसी तरह से ये राज्य सम्पत्तियाँ, रानियाँ और अन्तःपुर सभी नष्ट होने वाले हैं। जो अपना है वह नष्ट नहीं होता और जो नष्ट होता है वह अपना नहीं, तब उस पर मोह क्यों?" चिंतन करते-करते राजा के चरण वैराग्य की ओर बढ़ गये। वह सब कुछ त्याग कर पिता का मार्ग अपना कर दीक्षित हो गया। शुद्ध संयम पाल कर केवलज्ञान प्राप्त किया। वे प्रत्येक बुद्ध सिद्ध हुए।

2. उत्तराध्ययन सूत्र के इक्कीसवें अध्ययन में समुद्रपाल के कथानक का वर्णन आया है। समुद्रपाल भगवान् महावीर के तत्त्वज्ञ श्रावक पालित का बेटा था। समुद्र में जन्म होने के कारण उसका नाम समुद्रपाल रखा गया। पिता ने उसका विवाह एक सुन्दर कन्या के साथ कर दिया। वह देवतुल्य कामभोगों का उपभोग करते हुए आनन्द से रहने लगा।

एक दिन समुद्रपाल अपने महल के गवाक्ष में नगर की शोभा देख रहा था, तभी उसने राजमार्ग पर मृत्युदण्ड प्राप्त एक चोर को देखा जिसे राजपुरुष वध्यभूमि की ओर ले जा रहे थे। उसे लाल कपड़े पहनाए हुए थे और उसके दुष्कर्म की घोषणाएँ की जा रही थी। समुद्रपाल ने तुरन्त समझ लिया कि इसे इसके दुष्कर्मों की सजा मिल रही है। उसका चिन्तन आगे बढ़ा और सोचा कि मैं भी विषयभोगों में पड़कर अधिकाधिक कर्मबंधन में फँस रहा हूँ। इनका फल मुझे भी मिलेगा ही। उसका मन कर्मबंधनों को काटने के लिए तिलमिला उठा। उसने सोचा कर्म काटने का एकमात्र मार्ग है श्रमण धर्म का पालन। उसका मन संवेग और वैराग्य से भर गया। उसने माता-पिता से अनुमति लेकर अनगार धर्म की दीक्षा ले ली।

3. पांचाल देश की राजधानी काम्पिल्यपुर में जयवर्मा राजा का शासन था। राज्य में एक बार चित्रशाला बनाने के लिए नींव की खुदाई में एक रत्नजड़ित अत्यन्त मनमोहन मुकुट मिला। राजा ने उसे सिर पर धारण किया तो मुकुट के प्रभाव से राजा के दो मुख दिखने लगे, अतः जयवर्मा प्रजा में द्विमुखराज के नाम से प्रसिद्ध हो गये। उनके एक पुत्री मदनमंजरी थी जिसका विवाह अवंतीपति चण्डप्रद्योत के साथ हुआ। तत्कालीन व्यवस्था के अनुसार इस पर इन्द्र महोत्सव का आयोजन हुआ, जिसमें रंगीन वस्त्रों, मणि-माणिक्य, रत्नों एवं पुष्पमालाओं से सजाकर इन्द्रध्वजों को स्थापित किया गया।

आठ दिन तक उस इन्द्रध्वजा का रोज पूजन होता रहा। आठवें दिन की समाप्ति पर लोग उस इन्द्रध्वजा के ऊपर के वस्त्र, रत्न और आभूषण उतार कर ले गये और अब वह एक ठूंठ के रूप में ही खड़ी थी। उसी इिन राजा वहाँ से निकले उन्होंने देखा कि वहाँ केवल ठूँठ है और उससे भी शरारती बालक खेल रहे हैं। इन्द्रध्वज की ऐसी दुर्दशा देखकर राजा ने सोचा- "अहो! एक दिन ये इन्द्र ध्वज जो सारी प्रजा का प्रीतिपाल थी, लोग उसे पूजते थे, आज उसकी यह दशा हो गई है, कैसी विडम्बना है?" चिंतन करते-करते राजा के मन में आया- "आज जो प्रजा मुझे इतना प्यार और आदर देती है, वही प्रजा एक दिन मेरी उपेक्षा भी कर सकती है। ये धन-सम्पत्ति, ये राज्य वैभव भी इसी तरह से चले जायेंगे। ये सब मुझे छोड़ें, उसके पहले ही मैं क्यों नहीं इन्हें छोड़ दूँ?" आसक्ति का त्याग कर क्यों नहीं शाश्वत सुख देने वाली मोक्ष लक्ष्मी का वरण करूँ?" विचार करते-करते राजा स्वयं दीक्षित हो गये। शुद्ध संयम का पालन कर केवलज्ञान प्राप्त किया और सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुए। ये द्विमुख या दुर्मुख राजा प्रत्येक बुद्ध थे।

संघ की आधारशिला है- संगठन, समर्पण और सहनशीलता

अविचल-अविनाशी पद में विराजमान सिद्ध भगवन्त, चतुर्विध संघ की स्थापना करने वाले अरिहन्त भगवन्त तथा ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना करने वाले संत भगवन्तों के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन!

बन्धुओं !

तीर्थंकर भगवान् महावीर की अनन्त-अनन्त अनुकम्पा हैं जिन्होंने तिरने-तारने वाले चतुर्विध संघ की स्थापना की। भाग्यशाली-पुण्यशाली हैं वे लोग जिन्हें इस तीर्थ में सम्मिलित होने का अवसर प्राप्त हुआ। संघ कई हैं, संगठन कई हैं, समाज कई हैं। लोग इकट्ठे होकर कई जगह भीड़ में सम्मिलित होते हैं, पर तिरने-तारने के उद्देश्य से, अपनी आत्मा को पवित्र करने के लक्ष्य से, स्वयं विकास पथ पर अग्रसर होकर दीपक से दीपक जगाने की दृष्टि से जो इस पवित्र संघ में उपस्थिति होते हैं, वे महान् भाग्यशाली हैं। सार्थकता संघ में सम्मिलित होने की तब बनती है जब हम संघ की आधारशिला संगठन, समर्पण, सहनशीलता और सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र के मार्ग पर आगे बढ़ें। सम्मिलित होने के लिए तीर्थंकर भगवन्तों के समवशरण में देवता भी उपस्थित होते हैं। तिर्यञ्च भी सम्मिलित होते हैं। उपस्थित होने मात्र से पवित्र जगह तो मिल जाएगी, शुद्ध देशना श्रवण करने

का मौका भी मिल जाएगा पर आगे तभी बढ़ेंगे जब हम तिरने-तारने वाले संघ में ज्ञान-दर्शन-चारित्र की उन्नति कर सकेंगे। इकट्ठा हो जाना कोई बड़ी बात नहीं है। अच्छे प्रतिष्ठानों में, मेलों में, आन्दोलनों में लोग इकट्ठे हो सकते हैं पर देखना यह है कि वह उद्देश्य पूरा हो रहा है या नहीं? भ्रष्टाचार के आन्दोलन में सम्मिलित होने वाले स्वयं भ्रष्ट हैं तो आन्दोलन का क्या होगा? आप धर्म-संघ में सम्मिलित होने आए हैं लेकिन ज्ञान-दर्शन-चारित्र की श्रद्धा से महरूम हैं, मात्र मेला देखने आए हैं तो आपका मिलना, एकत्रित होना, भाषण कर लेना, प्रस्ताव पारित कर लेना क्या संघ को सक्षम बनाने या संघ को आगे बढ़ाने वाला प्रयास कहा जाएगा?

आपका-हमारा मिलना, तीर्थ में सम्मिलित होना किस कारण से है? तीर्थ में सम्मिलित होने का मतलब है- ज्ञान, दर्शन, चारित्र में तिष्ठ होना है, क्योंकि यह तीर्थ है। आप ज्ञान, दर्शन, चारित्र में स्थित हो गए तो समझना चाहिए कि आप तीर्थ में शुमार है। यहाँ प्रधानता ज्ञान, दर्शन, चारित्र की अपेक्षा से कही जा रही है। ज्ञान-दर्शन देवता में हो सकता है, सम्यक्त्वी का गुण तिर्यञ्च में भी हो सकता है पर भगवान् के शासन में उनकी गणना नहीं आई है। गणना उनकी की गई जो चारित्र-मार्ग में बढ़े, चाहे वे देशविरति हों या सर्वविरति, एक व्रतधारी हों अथवा बारह व्रतधारी या पूर्ण महाव्रतधारी।

आपको मेरी बात समझ में आ रही है ना ! आप मेरी बात पर चिन्तन करना। भ्रष्ट कहलाने वाला, नादान कहलाने वाला, आपकी दृष्टि में मिथ्यात्वी कहलाने वाला भी अपने विश्वास में कितना पक्का है? वह जिसमें यकीन करता है उस काम के प्रति उसकी कितनी दृढ़ आस्था है? यदि वह मुसलमान है तो नमाज पढ़ेगा ही, सिक्ख है तो गुरुद्वारे जाएगा ही, ईसाई है तो चर्च में जाएगा ही। आप अपना चिन्तन करना। क्या हर जैन का बच्चा उपाश्रय में जाता है या मन्दिर में जाता है? आपका अपने धर्म के प्रति कितना विश्वास है? एक मुस्लिम है वह नमाज पढ़ने जाएगा ही चाहे छोटा है या बड़ा

अथवा अफसर है या नेता? वह चाहे राष्ट्रपति भी क्यों न हो अथवा रिक्शा चलाने वाला ही क्यों न हो, अपनी आराधना से कभी मुँह नहीं मोड़ता। मैं आपके बच्चों की नहीं, युवकों की कहूँ तो उनमें ऐसे-ऐसे जैन भी हैं जो कभी माला तक नहीं जपते।

मैं माला फेरने वालों के नाम नहीं ले रहा हूँ। मैं नहीं फेरने वालों की बात कह रहा हूँ। माला नहीं जपने वालों की बात इसलिए कह रहा हूँ कि जो करने वाले हैं वे आगे बढ़ें और नहीं करने वाले माला फेरना प्रारम्भ करें।

आप अभी ज्ञान की बात सुन रहे हैं, तिरने-तारने वाले संघ की बात सुन रहे हैं। शायद हर वर्ष, हर चातुर्मास में प्रेरणा की जाती है कि जो सामायिक कर रहा है या प्रतिक्रमण कर रहा है अथवा जो भी क्रिया कर रहा है, क्या वह अर्थ सहित कर रहा है? क्रिया जो भी की जा रही है, उसके नियम क्या है? सामायिक कर रहा है तो सामायिक के पाठों की प्रतिज्ञा क्या है? सामायिक के दोष कौन-कौन से हैं? शुद्ध सामायिक कैसे होती है? आप जो सामायिक कर रहे हैं क्या वह व्यवहार शुद्धि की है या नहीं? आप इन बातों को सुन रहे हैं, अच्छी बात है। परन्तु आपको सुनकर ही नहीं रहना है, चिन्तन-मनन करके जीवन में चरितार्थ भी करना है।

मान लीजिए-किसी बहिन ने बी.ए. कर लिया या एम.ए. कर लिया या और कोई डिग्री प्राप्त कर ली, लेकिन उसे रसोई करने का ज्ञान नहीं और वह रसोई करने बैठ गयी तो क्या होगा? मारवाड़ में एक कहावत है- "ओ काम मने आवे, थने आवे, तू बता सीरो कीकर बणावणो?" डिग्री होल्डर बहिन बोली- "आटो लेवणो, आटा ने घी में सेकणो, पानी मिलावणो, शक्कर डालनी।" और उसके बाद....? क्या धोबो भर ने धूल डाल देणी?1

सामायिक क्या है? आज कई लोग हैं, जिन्हें सामायिक करने का नियम ध्यान में नहीं है कि सामायिक कैसे की जाती है? आपने कई बार सुना

है कि सावद्य योग का त्याग करना पाप से हटना है। आप सामायिक करें, जरूर करें पर सामायिक का अर्थ, सामायिक करने की विधि, सामायिक के दोष कौनसे हैं, सामायिक से क्या लाभ हैं, सुनें, समझें और अनुभव करें तो सामायिक करने का आनन्द कुछ और ही होगा। आप सामायिक- प्रतिक्रमण केवल मात्र दिखावे के लिए नहीं, मिच्छामिदुक्कडं देने के लिए नहीं, ड्यूटी पूरी करने के लिए नहीं, जैनत्व का प्रमाण-पत्र लेने के लिए नहीं किन्तु सामायिक करना आवश्यक करणीय कार्य है इसलिए करें। जीवन-निर्माण में सामायिक का महत्वपूर्ण स्थान है, सामायिक करना हमारा संघ-धर्म है, सामायिक करने से हम संगठित बनते हैं। शांति-समाधि का कारण है सामायिक इसलिए सामायिक नित्य-प्रति करनी है।

आप मुस्लिम भाईयों को देखिये। आप चाहे जिस गाँव, नगर या महानगर में चले जाईये और देखिये कि वहाँ हर बच्चा, हर युवा, हर बुर्जुग सभी नमाज पढ़ते हैं। समय पर नमाज पढ़ते हैं। छोटे बच्चों की बात नहीं, पर जो बच्चा दस-बारह साल का हो गया है वह नमाज पढ़ता है। आप चाहे पल्लीवाल क्षेत्र के हैं या पोरवाल के अथवा मारवाड़ के हैं, क्या आपके घर-परिवार का हर बच्चा सामायिक करता है? आप सैंकड़ों की संख्या में यहाँ बैठे हैं, क्या आपको अर्थ सहित सामायिक आती है? आप रोज सामायिक कर रहे हैं फिर भी जीवन में कोई परिवर्तन क्यों नहीं आया? बात यह है कि आप, मात्र नियम निभा रहे हैं। आपने गुरु से नियम लिया, गुरु पर आपको विश्वास है इसलिए सामायिक कर रहे हैं लेकिन सामायिक करते हुए वर्षों हो जाने पर भी सामायिक के अतिचार क्या है, सामायिक के दोष क्या है, पूछुँ तो.....?

क्या सामायिक जैसी क्रिया करके कोई किसी से लड़ सकता है? सबसे पहला धर्म है-खन्ती। खन्ती यानी क्षमा। आपका कोई शत्रु भी है तो

उसे भी क्षमा कर दो। उसे ही नहीं, आपको अपने आप पर भी दया आनी चाहिए और क्षमा करने का ध्यान रहना चाहिए। मैं दो दिन पहले कह गया- दी जाने वाली और ली जाने वाली शिक्षा हो सकती है, पर ज्ञान भीतर से निकलता है। जब तक आपको यह ज्ञात नहीं कि मैं श्रावक हूँ, मैं साधु हूँ तब तक धृष्टता होती रहेगी। आप वास्तव में श्रावक हैं तो आपकी सभा में किसी की किसी के साथ लड़ाई नहीं हो सकती, झगड़ा नहीं हो सकता। राजनैतिक सभा में लड़ाई हो सकती है, श्रावकों की सभा में नहीं।

लड़ाई विभाव को लेकर होती है। धन-वैभव, सत्ता-सम्पत्ति, पद-प्रतिष्ठा अहंकार जगाने वाले होते हैं। अहंकार लड़ाई का कारण है। श्रावकत्व कभी लडने-लड़ाने वाला नहीं हो सकता। अभी तत्वचिन्तक प्रमोदमुनिजी ने कहा- बहुत-सी ऐसी सभाएँ होती हैं जहाँ हजारों लोग आते हैं, सुनते हैं और हाथ जोड़कर प्रस्थान कर जाते हैं, कोई-किसी से बात तक नहीं करता। यहाँ? प्रवचन पश्चात् मांगलिक हुई नहीं कि ऐसी राम-कथा चालू होती है जो पूरी नहीं होती। और कुछ नहीं तो चर्चा होती है कि अमुक महाराज कैसे बोले? कौनसे महाराज ने क्या बात कही? किस विषय पर जोर दिया? ऐसी बातों को लेकर जल्दी विराम नहीं लगता। आपका तेरी-मेरी करना आम बात है। किसी की निन्दा करना, किसी को हल्का बताना, क्या धर्म-संघ में सम्मिलित होने वालों के लिए उचित है? यहाँ पर पचासों अच्छी बातें चलती हैं, उनकी चर्चा क्यों नहीं? चर्चा किस बात की होती है कि उस दिन ऐसा हुआ, वे बोले, वे क्यों नहीं बोले, उन्होंने ऐसा क्या कहा? एक-दूसरे को, एक-दूसरे की कही बात याद रहती है लेकिन ज्ञान बढ़ाने में, विश्वास बढ़ाने में, श्रद्धा जगाने में सहायक बातों में कम लोगों की रूचि रहती है।

मैं आपके धर्म-संघ की बात कह रहा हूँ। अन्य मतावलम्बियों में

देखा जाता है कि वहाँ खाने वाले मौन करवाते हैं कि कम-से-कम भोजन करते समय मौन रखें जिससे आपका खाया अमृत हो सके। कैसे खाना इसका आप उदाहरण सुन चुके हैं। चावल का दाना व्यर्थ न जाय इसलिए गिरे हुए चावल के दाने को सूई की नोक से उठाकर खाने वाले हैं। थाली पानी से धोकर पीने वाले भी हैं पर अधिकतर ऐसे भी मिल जाएँगे जो जूठन छोड़ने में शान समझते हैं। वे अन्न का अनादर करते हैं। जो न खुद खाते हैं, न दूसरों के खाने लायक छोड़ते हैं। मैं आपका नाम खाने की वस्तु का सदुपयोग करने वालों में लिखूँ या दुरूपयोग करने वालों में?

आप खाने-पीने की बुराई दूर करें। बुराई दूर करते-करते भलाई का नम्बर आ सकता है। जमीन में बीज बोना है तो पहले जमीन पर रहे काँटे-कंकड़ साफ करें। पर्युषण पर्व पर आपने सुना है- मोक्ष जाने की भावना से एक भक्त उपस्थित हुआ। उसने महाराज से मोक्ष जाने का उपाय पूछा। महाराज ने कहा- "आज नहीं कल आना।" दूसरे दिन भक्त फिर पहुँचा। महाराज ने कहा- "आज नहीं, कल आना।" दूसरे दिन फिर भक्त पहुँचा और उपाय पूछा। महाराज ने फिर एक दिन बाद आने का कह दिया। इस बीच महाराज, गोचरी के निमित्त भक्त के घर पहुँच गए। पात्र में कीचड़ लगा हुआ था। भक्त, भक्ति भावना वाला था, वह खीर बहराने को तत्पर हुआ। महाराज ने भी पात्र आगे कर दिया। भक्त ने पात्र देखा और बोला- "महाराज! पहले पात्र साफ तो कर लें। यदि इसी पात्र में खीर लेंगे तो खीर गन्दी हो जाएगी।" खीर खराब होने की चिन्ता हैं परन्तु खीर कितने पैसों की? खीर से वीतराग वाणी का मूल्य ज्यादा है, पर अभी तक वीतराग वाणी का मूल्य समझ में नहीं आया। वीतराग वाणी, तिरने-तारने वाली है, अमूल्य है। मात्र एक मुहूर्त्त में एक-सा अध्यवसाय बना रहे तो केवलज्ञान मिलाया जा सकता है। यह ताकत मेरे में है, आप में है। कब? जब हम सब शुभ और

शुद्ध अध्यवसायों में बनें रहें। धर्म-स्थान में आने के बाद तेरी-मेरी, निन्दा-विकथा और बुराई की बातें चले तो कहना होगा अभी इस वाणी से कुछ सीखा नहीं है। पात्र साफ होना चाहिए नहीं तो खीर खराब हो जाएगी। इसी तरह मन में अहंकार है, ईर्ष्या है, द्वेष है, बुराई है तो वीतराग वाणी, कषाय रूपी कचरे में जाकर फायदा देने वाली नहीं होगी।

जरूरत है बुराई हटाने के साथ जीवन-निर्माण के कुछ सूत्र अपनाने की। गुरु हस्ती ने एक सूत्र कहा- "घर-घर में स्वाध्याय होना चाहिए।" स्वाध्याय में आचारांग या दशवैकालिक अथवा दृष्टिवाद की बात के बजाय आप पहले सामायिक, प्रतिक्रमण का ज्ञान करें, जीवन-निर्माण के लिए व्रत-नियम का अभ्यास करें। दृष्टिवाद के ज्ञान के लिए तो आर्य रक्षित की माता ने जो कहना था, कह दिया। रक्षित वेद-वेदांगों में निष्णातता प्राप्त कर विद्वान् बनकर घर लौटा। सारा नगर स्वागत के लिए तैयार था परन्तु माँ स्वागत के समय नहीं पहुँची। स्वागत-अभिनन्दन के बाद रक्षित घर पर पहुँचा। देखा, माताजी सामायिक कर रही थी। सामायिक के बाद रक्षित ने पूछा- "मातुश्री ! आप वहाँ क्यों नहीं पधारी? क्या आपको मेरे शिक्षण से संतोष नहीं?" माँ का उत्तर था- "बेटा ! तू पढ़-लिखकर आया इसमें संतोष कैसा? पुत्र तुमने तो जो ग्रन्थ पढ़े हैं, उनसे तो भव-भ्रमण की ही वृद्धि हो सकती है। अगर तू स्व-पर कल्याण करने वाले दृष्टिवाद को पढ़कर आया होता तो मुझे संतोष होता।"

माँ के कथनानुसार पुत्र दृष्टिवाद का ज्ञान करने चला गया और श्रमण बनकर साढ़े नौ पूर्वों का ज्ञान प्राप्त कर लौटा। मैं आपको दृष्टिवाद के ज्ञान करने की बात नहीं कह रहा हूँ लेकिन यह कहना चाहता हूँ कि आप सामायिक करते हैं, आप में से कइयों को सामायिक करना आता है पर आप स्थानक में बैठे-बैठे बाजार में क्या भाव चल रहा है इसका पता कर लेते हैं,

तो क्या सामायिक के पाठ अर्थ-सहित याद करना नहीं कर सकते?

आप बोलते हैं- "सामायिक री कमाई, प्रतिक्रमण री पूँजी।" सामायिक यानी समता की कमाई। यह कमाई आपकी यहाँ इस जन्म में सहयोग करेगी, जन्म-जन्म में सहायक होगी। आप श्रावक हैं। आप भगवान् की वाणी सुनते हैं। कुछ हैं जिन्होंने बारह व्रत ले रखे हैं। जिन्होंने बारह व्रत लिए, क्या उन्होंने घर पर पहुँचकर धर्म-सहायिका से कहा- "मैंने बारह व्रत ग्रहण किए हैं। आपकी भावना बनती हो तो आप भी गुरु-महाराज से व्रत ग्रहण कर सकती हो।"

मैं आपको सामायिक अर्थ सहित करने की बात आज ही कह रहा हूँ, ऐसी बात नहीं है। मैंने पहले भी कई बार यही बात कही है। कइयों ने मेरे सामने वादा किया कि अगले साल अर्थ सहित सामायिक याद करके सुना दूँगा। मैं फिर से पूछ रहा हूँ, आज क्या स्थिति है?

आप घर के बच्चों से रोटी खाई या नहीं पूछते हैं अथवा वे स्कूल गये या नहीं यह जानना चाहते हैं। दुकान जाने वाला घर का कोई सदस्य है तो दुकान कब गया यह जानना चाहते हैं। लेकिन सामायिक अर्थ सहित याद हुई या नहीं, शायद यह पूछना याद नहीं रहता।

संत प्रेरणा करते हैं, इसी तरह आपको भी घर-परिवार में पूछते रहना चाहिए। आप खाने-कमाने का पूछते हैं, शादी-विवाह के बारे में बातचीत करते हैं ठीक ऐसे ही आपको सामायिक-प्रतिक्रमण के बारे में भी पूछना चाहिये। आप यह नहीं सोचें कि यह काम संतों का है। संत-सती तीर्थ में हैं तो आप श्रावक-श्राविकाएँ भी तीर्थं में शुमार हैं। आप एक से दो, दो से चार दुकानें करते हैं। धंधा बढ़ाते हैं। फैक्ट्री एक है तो दो करते हैं लेकिन घर में कोई सामायिक करता है या नहीं इसकी न प्रेरणा करते हैं और न पूछताछ ही। आज लाखों के बजाय करोड़ों की कमाई है और घर में सुविधा-वृद्धि की

चिंता होती है, लेकिन सामायिक की बात पूछना, कहना, प्रेरणा करना आपसे नहीं होती।

मुझे ताज्जुब होता है जब बच्चों को और युवकों को मेले में चलने की बात कही जाय तो हजारों इकट्ठें हो जाते हैं और सामायिक की बात कही जाय तो 100 भी आ जायें तो बहुत हैं। आप संघ सदस्य हैं तो इस कमी को दूर कीजिए। आज युवक, सेवा में, सामाजिक व्यवस्थाओं में, स्वधर्मी वात्सल्य के कामों में रस लेते हैं लेकिन उतना ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना में रस नहीं लेते हैं, ऐसा कहूँ तो.....? युवक नहीं करेंगे तो उनके बच्चे कैसे तैयार होंगे? आप करोगे तो बच्चों में संस्कार सृजित होंगे।

आचार्य भगवन्त (पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमलजी महाराज) के शब्दों में कहूँ- एक माँ कमाऊ बेटे की उतनी चिंता नहीं करती, जितनी एक भोले बेटे की करती है। जो होनहार के बजाय प्रकृति से नादान है, उसकी माँ को ज्यादा चिंता रहती है। मैं उसी चिंता को लेकर अपना चिन्तन रख रहा हूँ कि जो ज्ञानी है, साधना करते हैं, वे सौभाग्यशाली हैं और सही मायने में संघ सदस्य हैं। उनका कर्त्तव्य है कि जो नहीं करते हैं उन्हें प्रेरित करें, अपने बच्चों को संतों के समागम में लाएँ।

आप आचार्य श्री हस्ती के सामायिक-स्वाध्याय के नारे तो खूब बोलते हैं, हर मौके पर नारे गुंजायमान करते हैं। नारे लगाने वालों को सामायिक-स्वाध्याय मिशन जीवन-व्यवहार में भी चरितार्थ करना चाहिए। घर का हर सदस्य सामायिक-प्रतिक्रमण करे, उसे याद हो, अर्थ सहित कण्ठस्थ किया जाय। इसलिए मैं बोर्ड की परीक्षा में बैठने की बात प्रायः कहा करता हूँ।

आप चाहे जिस उम्र के क्यों न हों, बोर्ड की परीक्षा में बैठें। आप बैठें, आपके बच्चे बैठें, बहिनें बैठें, घर के सब लोग बैठें। आप बोर्ड की

परीक्षा देंगे तो बच्चे भी परीक्षा देने के लिए सहज तैयार हो जाएँगे। घर-घर में सीखने-सिखाने का और चारित्र-मार्ग में आगे बढ़ने का वातावरण बनना चाहिए। आपको मैं दीक्षा लेने के लिए नहीं कह रहा हूँ पर आप पिता हैं तो आपका कर्त्तव्य है कि आप अपनी संतान को सुसंस्कारित करें। पिता कौन होता है? रामायण में एक प्रसंग है- अयोध्या नरेश विजय के पुत्र राजकुमार युगबाहु विवाह करके पत्नी मनोरमा एवं साला उदय सुन्दर के साथ अयोध्या की तरफ लौट रहे थे। मार्ग में पर्वत पर चढ़े जहाँ उन्हें एक मुनि दिखाई दिये। युगबाहु अपना रथ रोककर भक्तिपूर्वक मुनि की ओर देखने लगा। युगबाहु की भक्ति-भावना देखकर उदयसुन्दर ने उपहास करते हुए पूछा- "क्या प्रव्रर्जित होने की इच्छा है?" युगबाहु ने कहा- "भावना तो ऐसी ही उठ रही है।" उदयसुन्दर ने फिर परिहास किया- "फिर देर क्या है?" युगबाहु ने हास्य को साकार करने की आज्ञा माँगी। साले उदयसुन्दर ने आज्ञा दे दी।

बहनोई मुनि बनने को तत्पर हुए तो साले ने कहा- "मेरी बहिन का क्या होगा?" युगबाहु ने कहा- "आप चिंता न करें, वह अच्छे घर-घराने की खानदानी है इसलिए पति का साथ देगी।" पति-पत्नी दोनों की दीक्षा हो गई। सेवकों द्वारा अयोध्या में समाचार पहुँचे। अयोध्या नरेश विजय ने कहा- "जो काम मुझे करना था, वह काम मेरे पुत्र ने करके दिखा दिया। दीक्षा की अवस्था तो मेरी है।" ऐसा सोचकर राजा ने छोटे पुत्र को बुलाकर कहा- "यह राज-पाट अब तुम सँभालो। मैं दीक्षा ले रहा हूँ।" पुत्र ने पूछा- "आप क्यों दीक्षा ले रहे हैं?" पिता ने कहा- "राजेश्वरी, नरकेश्वरी है। राज्य की आसक्ति वाला नरक में जाता है।" छोटे पुत्र ने कहा- "आप कैसे पिता हैं जो स्वयं स्वर्ग में जा रहे हैं और मुझे नरक में भेजना चाहते हैं? मैं भी आपके साथ दीक्षा लूँगा, नहीं चाहिये मुझे राज्य। मैं भी संसार में नहीं

रहना चाहता।''

आपको सामायिक पर विश्वास है, सामायिक करने में आनन्द मिलता है, भगवान् की वाणी पर आपकी अटूट आस्था है, गुरु-वचनों पर श्रद्धा है, भक्ति है तो आपको संकल्प करना चाहिए कि यह व्रत रूप मिठाई मैं सबसे पहले खाऊँगा फिर घरवालों को खिलाऊँगा और उन्हें ज्ञान-दर्शन-चारित्र में आगे बढ़ाने का प्रयास करूँगा। यह चिन्तन बना रहना चाहिए।

आप संघ के सदस्य हैं, संघ की बैठक के प्रयोजन से यहाँ उपस्थित हैं तो आप धर्म-संघ की आधारशिला, संगठन, समर्पण और सहनशीलता के साथ ज्ञान-दर्शन-चारित्र में चरण बढ़ाइये। आप दृढ़ संकल्प के साथ संघ-सेवा में और संघ दीप्ति में आगे आने का प्रयास करेंगे तो आपका अनुसरण आपके बच्चे व पारिवारिक-परिजन भी करेंगे। आप सामायिक-प्रतिक्रमण अर्थ सहित याद करने का प्रयास करेंगे तो आपका यहाँ आना, संत समागम करना, वीतराग वाणी सुनना सार्थक होगा।

जोधपुर
17 सितम्बर, 2011

संदर्भ-

1. करने की क्रिया और तरीका तो बता दिया लेकिन उसका कोई फल नहीं निकला, तब इस उक्ति का प्रयोग किया जाता है।

गुण देखें, गुणी बनें

शाश्वत सुख पाने वाले सिद्ध भगवन्त, तिरने-तारने वाले तीर्थ के संस्थापक तीर्थंकर भगवन्त तथा भगवान् महावीर के इस तीर्थ को ढाई हजार वर्ष बाद भी संयम-साधना से कायम रखने वाले संत भगवन्तों के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन!

बन्धुओं!

भगवान् महावीर की आदेय-अनमोल वाणी के कुछ सूत्र संघ के स्थिरीकरण के लिए मोक्ष-मार्ग अध्ययन से आपके सामने रखे जा रहे हैं। इसमें सबसे बड़ा सूत्र है- "गुणाः सर्वत्र पूज्यंते महत्योऽपि सम्पदः" अर्थात् गुण सर्वत्र पूजे जाते है, बड़ी सम्पत्तियाँ नहीं, इसलिए कहते हैं- भारतीय समाज पुरुष-प्रधान होते हुए भी उसमें लिंग बड़ा नहीं है, अवस्था सम्पन्न होने पर भी आदमी बड़ा नहीं है। आदमी का बड़प्पन उसके गुणों से है। जो जितना गुणवान है, वह उतना ही बड़ा है। महत्व गुणों का है। जिसने जितने गुण संग्रहित कर आपने-आपको गुणवान बनाने में, आगे बढ़ाने में पुरुषार्थ किया, वह अवस्था वालों से, सम्पदा वालों से, सिंहासन वालों से भी अधिक बड़ा है। कल एक सूत्र कह गया- "आप अगर बड़े बनना चाहते हैं तो स्वयं आचरण कीजिए।" आप धर्म-संघ में सम्मिलित हैं, तिरने-तारने का विरुद निभाना चाहते हैं, ज्ञान-दर्शन-चारित्र के गुणों में विकास करना चाहते हैं तो आप स्वयं आचरण कीजिए, दूसरों से करवाइये और जो कर रहे है, उनको

प्रोत्साहित कीजिए, आगे बढ़ाइये।

संघ में सम्मिलित होने वाले सब लोग एक-सी मानसिकता वाले नहीं हैं। सबका एक-सा क्षयोपशम नहीं हैं और न ही सबकी एक-सी दृष्टि है। आचार्य भगवन्त (पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमलजी महाराज) के शब्दों में कहूँ- "जन्मने वाला हर बच्चा, माता-पिता के अनुकूल हो ही, यह जरूरी नहीं है, न ऐसा संभव ही है।" किसी के घर-परिवार में सब गुणी ही हों, सब विद्वान् हों, सब अच्छे और भले हों तो कहना होगा वह घर-परिवार बड़ा सौभाग्यशाली है। कदाचित् कोई माता मरुदेवी की तरह हो, जिसने अपने जीवन में किसी परिजन का न मरण देखा और न किसी को रोगी देखा। पंचम आरे में ऐसे भाग्यशाली-पुण्यशाली परिवार, शायद मैं कहूँ कि संभव नहीं है। आचार्य भगवन्त ने कहा- "अपने-अपने क्षयोपशम के अनुसार, प्रकृति के अनुसार चलते हुए भी एक माँ का दायित्व है कि वह सबको अपनत्व और स्नेह देकर चले।" एक लड़का धन्ना की तरह पुण्यशीलता लेकर गर्भ में आते ही उसे गड़े धन के चरु मिलते हैं, जन्म के साथ सम्पत्ति मिलती है, जहाँ हाथ डालो मिट्टी सोना बनते देर नहीं लगती। किसी के एक सरस्वती पुत्र है, एक ज्ञानी है। एक लड़का तन से सुन्दर है, एक इन्द्रियों से परिपूर्ण है, एक देखने में सुहाता है-अच्छा लगता है, सब कुछ ठीक है पर वह मंदबुद्धि वाला है अर्थात् भोला है, माँ उसे भी संभालती है। माँ के मन में होशियार लड़के के बजाय प्रकृति से भोले बच्चे के प्रति लगाव कुछ विशेष रहता है क्योंकि वह भोला है।

आचार्य भगवन्त के साथ हमारा इन्दौर शहर में चातुर्मास था। वहाँ के श्रावक वर्धमानजी चाणोदिया, उनका एक पुत्र उम्र चौबीस साल, वह जन्म से पालने में ही रहा, बाहर निकलने-निकालने की उसकी स्थिति नहीं बनी। पालने में ही खाना-पीना, सोना-उठना। ऐसा ही एक उदाहरण बालोतरा के

मंत्री धनराजजी चौपड़ा के वहाँ देखने को मिला। बच्चा जन्म से पालने के बाहर नहीं आ सका। उसके सारे काम पालने में ही होते। ऐसी स्थिति होने पर भी माता-पिता ने उस बच्चे का यह महसूस नहीं होने दिया कि उसका कोई नहीं है। जिस दिन संघ में संघ के पदाधिकारियों की, संघ सदस्यों की रक्षण की यह वृत्ति होगी, उस दिन संघ को चमकते देर नहीं लगेगी।

आप किसी की प्रकृति को नहीं बदल सकते किन्तु सहनशील बनकर सबको साथ लेकर तो चल सकते हैं। संघ सदस्यों में उदारता की भावना हो, ईर्ष्या की नहीं। संघ में कुछ लोग है, जो नाम के लिए काम करते हैं। कभी किसी का नाम नहीं लिया तो उनका काम में सहयोग नहीं रहता। सहयोग न करें, न सही, परन्तु वे विरोध तक करने लगे जाते हैं।

संघ में सब तरह की प्रतिभा वाले और प्रकृति वाले लोग मिल सकते हैं। मिल सकते ही नहीं, होते हैं। उनमें से कोई साधु बन गया, कोई साध्वी बन गई। कई श्रावक हैं तो कई श्राविकाएँ हैं। कुछ त्यागी हैं तो कुछ स्वाध्यायी हैं। किसी की ध्यान में रूचि है तो कुछ मूक-सेवा करते हैं। संघ में सब तरह के लोग हैं और होंगे भी। सबको साथ लेकर चलना जिस संघ को आ गया वह संघ उत्तरोत्तर उन्नत्ति-प्रगति करता हुआ प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। संघ में भातृत्व की भावना रहनी चाहिए। अगर भातृत्व की दृष्टि नहीं रही तो संघ में रहना संघ में जीना और संघ में रहकर विकास करना मुश्किल हो जाएगा। संघ-विकास के लिए पहला सूत्र है- "हम किसी-न-किसी को ज्ञान में, दर्शन में, चारित्र में, तप में आगे बढ़ा सकें तो बहुत अच्छा है पर हम किसी संघ सदस्य की बुराई नहीं करेंगे।" इतना भी यदि कर लिया तो संघ में शांति बनी रहेगी।

संघ के प्रत्येक सदस्य में कोई-न-कोई गुण जरूर मिलेगा। गुण-अवगुण सबमें मिलते हैं। किसी में मान लीजिए सौ अवगुण हैं तो भी उसमें कोई गुण जरूर होगा। गुण-ग्रहण करने वाला गुण देखेगा और गुण

अपनाने का प्रयास करेगा। आपने वासुदेव श्रीकृष्ण का जीवन-वृत्त सुना है। उन्होंने मरी कुतिया देखी। साथ चलने वालों ने भी क्षत-विक्षत, बदबूदार कुतिया का कलेवर देखकर नाक-मुँह बन्द करके आगे चलना ठीक समझा, परन्तु गुणग्राही श्रीकृष्ण ने कहा- देखो, इस कुतिया के दाँत कितने सुन्दर हैं? वासुदेव श्रीकृष्ण का कथन हमें गुण-ग्रहण की प्रेरणा दे रहा है। संघ में ऐसा कोई नहीं, जिसमें कोई-न-कोई गुण नहीं हो। हर एक में गुण है। हाँ किसी में कम, किसी में ज्यादा गुण हो सकते हैं, किन्तु बिना गुण वाला शायद ही कोई हो। अगर हम संघ में गुण और गुणी बढ़ाना चाहते हैं, तो जिसमें जो योग्यता है, उसे बढ़ावा दें।

आप अपनी योग्यता बढ़ाना चाहें तो बढ़ा सकते हैं। उसके लिए हर संभव प्रयास करने की जरूरत है। आप जानते हैं, आपने शायद देखा भी होगा कि जहाँ पागलों का इलाज होता है, वहाँ इलाज करने वाले चाहे डॉक्टर हों या नर्स, समता के साथ पागलों का उपचार करते हैं। वे जानते हैं, यह पागल है, कुछ भी कर सकता है। आपने यह भी देखा होगा कि कोई अनाथ बच्चा है, उसे पालने वाले और सँभालने वाले भी मिलते हैं। चतुर्विध संघ का हर सदस्य एक बात नोट कर ले कि जिसके जो भी सम्पर्क में आए, उसके गुण कहिये, अवगुण बताने या कहने की आवश्यकता नहीं हैं। अवगुण निकालना चाहें तो अभी प्रमोदमुनिजी कह गए हैं कि -"कहना भी हो, तो तरीके से कहो।" काली चिड़ी कहना आना चाहिए। यदि किसी को काला कह दिया तो लेने के देने पड़ जाएँगें और कला के साथ कहना आ गया तो आपकी प्रशंसा ही होगी।

हर जीव में कोई-न-कोई गुण है, बिना गुण के कोई जीव नहीं। आप-हम-सब छद्मस्थ हैं तो मानकर चलिए कोई न कोई दोष होगा ही, कमी रहेगी ही। अगर हमारे में कमी नहीं हो तो हमें पाँचवें आरे में जन्म लेने

की नौबत ही नहीं आती। निश्चित रूप से सब में कोई-न-कोई कमी है तो कोई न कोई गुण भी होगा ही। आदमी चाहे कितना भी ऊँचा क्यों न हो, चौदह पूर्वधर हो, उसमें भी कमी नहीं रहती तो इतना बड़ा ज्ञानी नरक में नहीं जाता।[1] कमी है, इसीलिए तो हम संसार में है।

हम गुणों का विकास करें। कहना भी हो तो, कला से कहें। आचार्यश्री हस्ती कहा करते थे कि "गुण बाहर में प्रकट कीजिए, कमी है तो एकान्त में कहिये।" अगर कमी को सबके सामने कहा जाएगा, तो उसके मन में आएगा कि- "नकटा तो बण गया, अबे वांने सोरा कीकर रेवण दाँ।"[2] गुण बाहर में प्रकट करें और अवगुण यदि कोई है तो उसे अकेले में कहें। उसे कहें- "आप जैसा खानदानी, आप जैसा गुरुभक्त, आप जैसा धर्मी ऐसी बात कैसे कह सकता है? ऐसा काम कैसे कर सकता है? मुझे तो विश्वास ही नहीं होता, पर किसी से ऐसा सुना है, वह कहाँ तक ठीक है?" आप जिस किसी में कमी देंखे, कमी निकालने का प्रयास कीजिये। प्रयास भी युक्ति से करें। युक्ति से प्रयास नहीं हो तो न गलती निकलेगी और न ही गलती के प्रति उसकी भावना में कोई बदलाव आएगा।

आप मानकर चलिए- निर्दोष तो तीर्थंकर भगवन्त होतें हैं या फिर केवलज्ञानी। हम जब तक छद्मस्थ हैं, हमारे में कोई-न-कोई कमी रहेगी। कमी हर एक में है, उसे दूर करना है तो आत्मीयता से कहें, अपनत्व से समझाएँ। आपको किसी में देखने हैं तो गुण देखें। दोष देखने की जरूरत नहीं। दोष देखना इष्ट नहीं हैं।

आज घर में रहते हुए भी लोगों को संतोष नहीं है। करोड़ों की सम्पत्ति है तब भी संतोष कहाँ? वह अरबपति बनना चाहता है। हर व्यक्ति की महत्वाकांक्षाएँ बढ़ी हुई हैं, बढ़ती जा रही हैं, किसी को संतोष नहीं। कोई विधायक हो गया, वह मंत्री बनना चाहेगा। मंत्री है, तो मुख्यमंत्री बनने की

भावना जगेगी। मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री बनना चाहेगा। आपने सुना होगा- चक्रवर्ती छः खण्ड का अधिपति होता है पर उसे संतोष नहीं तो वह सातवें खण्ड को साधने की सोचता है। परिणाम यह होता है कि सातवाँ खण्ड सधता नहीं और उसे समुद्र में डूबना पड़ता है।[3]

आदमी को संतोष नहीं, उसे तो और चाहिए। कितना चाहिए? कब तक चाहिए? कब चाहना समाप्त होगी? कब वह कहेगा कि बस अब नहीं चाहिए। यह 'बस' 'सब' मिल जाने का उल्टा है। 'सब' को 'बस' कर दीजिए।

आज हर व्यक्ति अहंकार से ग्रसित हैं। ईर्ष्या के कारण अहंकार पनपता हैं। अहंकार और लोभ, गुणों को नाश करने वाले हैं। सुयगडांग सूत्र के नौवें अध्ययन की ग्यारहवीं गाथा में लोभ के लिए एक शब्द आया- ''भजन''।

पलिउंचणं भयणं च, थंडिल्लुस्सयणाणि य।
धूणाऽऽअदाणाइं लोगसि, तं विज्जं परिजाणिया।।

अर्थात् परिकुंचन-वक्रताकारिणी क्रिया (माया) और भजन (लोभ) तथा स्थंडिल व मान (क्रोध व मान) को धुन डालो, क्योंकि ये सब कर्मबंध के कारण है, अतः विद्वान इनका त्याग करें।

भजन क्या? आत्म-गुणों को भंग करने वाला लोभ हैं सारी अच्छाईयों को लोभ खा जाता है। कोई उदार है, मधुर है, दानी है, शीलवान है, ज्ञानवान है, गुणवान है पर लोभ है तो वे अच्छाइयाँ किस काम की?

एक-एक शब्द के अलग-अलग अर्थ होते हैं। कल 'स्थंडिल' शब्द आपके सुनने में आया। स्थंडिल कहते हैं, परठने की भूमि। कभी-कभी स्थानक में आने वाला भाई पूछता है- महाराज कहाँ गए? प्रश्न का उत्तर होता- महाराज स्थंडिल गए हैं। आगत भाई समझ जाता हैं, पाँचवी समिति

को स्थंडिल भूमि कहते हैं। गाथा में शब्द आया 'स्थंडिल'। स्थंडिल क्रोध शब्द के रूप में भी प्रयुक्त होता हैं।

मैं संघ की आधारशिला- संघ के विकास के सन्दर्भ में अपनी बात रख रहा था। संघ के अधिकारीगण कोई विद्वान हैं, कोई ज्ञानवान हैं, कोई सुज्ञ हैं, कोई चिन्तक हैं, वे यदि गुस्सा करें तो क्या वे कुर्सी पर बैठने लायक हैं? वह पदाधिकारी भी है तो भी उसके गुणगान नहीं होते। जो क्रोधी है, उसकी तरफ कोई झाँकता तक नहीं। आप संघ की उन्नति-प्रगति चाहते हैं तो आवेग से, लोभ से, ईर्ष्या से अहंकार से, नाम की भावना से अलग रहें। आप भातृवत् अपंग लड़के को जैसे माँ सँभालती हैं, उसी तरह संघ के सदस्यों को सँभालते रहेंगे तो संघ दिन-दूनी, रात चौगुनी प्रगति करेगा।

जोधपुर,

18 सितम्बर, 2011

संदर्भ

1. ज्ञाताधर्मकथांग में वर्णन आता है कि कुण्डरीक मुनि प्रव्रजित होकर ग्यारह अंगों के वेत्ता हो गये, लेकिन वे पुनः मानवीय भोगों में आसक्त हुए। काल करके वे सातवीं नरक में उत्कृष्ट स्थिति वाले नारक रूप में उत्पन्न हुए। (ज्ञाताधर्मकथांग 19/25)

   आचार्य मंगु दशपूर्वधर थे। स्थिरवास एवं सुस्वादु भोजन के कारण वे अपने तप, संयम और साधना में शिथिल हो गये। उन्होंने अपने सदोष आचरण की आलोचना किये बिना ही प्रमाद अवस्था में आयु पूर्ण की और यक्ष योनि में उत्पन्न हुए। यक्ष योनि में उन्होंने अवधिज्ञान से अपना पूर्वभव का परिचय किया तो वे घोर पश्चात्ताप करने लगे। आर्य मंगु की कथा में एक गाथा आई है-

   चउदसपुव्वधरावि, पमायओ जंतिनंतकायेसु।
   एयंपि ह हा हा पावं जीवनतए तया सरियं।।

   ठीक ही कहा है- चतुर्दश पूर्व के ज्ञाता भी प्रमाद के कारण अनन्तकाय में जाकर उत्पन्न होते है। (जैन धर्म का मौलिक इतिहास भाग-2, पृष्ठ 533, प्रथम संस्करण।

2. मेरी कमी बाहर बताने से मैं निर्लज्ज तो बन ही गया, अब बताने वाले को भी चैन से

नहीं रहने दूँगा।

3. भगवान् अरनाथ के तीर्थ में सुभूम नाम का आठवाँ चक्रवर्ती हुआ। पूर्वभव में उसने संभूत मुनि से संयम ग्रहण किया और उग्र तप किया। समय बीतते-बीतते उसके मन में भोग लालसा उत्पन्न हुई और उसने निदान कर लिया कि मेरी उच्च साधना के फलस्वरूप मैं आगामी भव में कामभोग की सर्वोत्तम सामग्री का भोक्ता बनूँ। वहाँ से कालकर वह महाशुक्र नाम के आठवें देवलोक में उत्पन्न हुआ। देवलोक की आयु पूर्ण कर वह हस्तिनापुर के राजा कृतवीर्य की महारानी तारा के गर्भ में आया। महारानी ने 14 महास्वप्न देखे। पुत्र का नाम सुभूम रखा। हस्तिनापुर का राज्य व्यवस्थित हो जाने के बाद सुभूम की आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। इसके बाद सुभूम ने भी पूर्ववर्ती चक्रेश्वरों की भाँति भरत क्षेत्र के छह खण्डों पर विजय प्राप्त की। छः खण्डों का अधिपति होने के बाद वह सांसारिक भोगों में लीन हो गया।

एक दिन उसे विचार आया कि छः खण्ड पृथ्वी पर तो सभी विजय प्राप्त करते हैं। मुझे तो कुछ ऐसा करना चाहिए जो आज तक किसी ने नहीं किया है। शास्त्रों में असंख्य द्वीप बताये हैं उसमें भरतक्षेत्र तो एक छोटा सा भूभाग है। इसके परे सातवां खण्ड विजय करके क्यों न अपना नाम चमका दूँ। उसने अपना निर्णय राज्यसभा में बता दिया और यह भी बता दिया कि इसके लिए मैं कल ही चल दूँगा। इस अभूतपूर्व बात पर सभी अवाक् रह गये। मन्त्री ने कहा महाराज यह असम्भव है। सुभूम ने कहा- असम्भव को सम्भव करना ही साहसी वीरों का काम है। उसने सभी को चुप करा दिया।

दूसरे दिन उसने अपने अधीन देवताओं को बुलाकर कहा कि मेरे विमान को सातवें द्वीप में ले चलो। इस प्रतिकूल काम के लिए भी देवों ने आज्ञा का पालन करते हुए विमान को उठाया। एक हजार देव विमान को ढोने में लगे थे। देवताओं की अरुचि तो थी ही। ऊपर जाकर वे एक-एक करके विमान से हटने लगे। सबके हटने पर विमान नीचे लवण समुद्र में पड़ कर डूब गया और सुभूम समुद्र में मर गया। रौद्र परिणामों से मर कर वह सातवें नरक में गया।

शरीर की ही नहीं, मन की सफाई भी करें

समस्त कर्मों के विजेता सिद्ध भगवन्त, घनघाती कर्मों को क्षय करने वाले अरिहन्त भगवन्त तथा कर्म काटने की दिशा में प्रयास करने वाले संत-भगवन्तों के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन!

बन्धुओं!

तीर्थंकर भगवान् महावीर की आदेय-अनमोल वाणी में अभी सम्यक् दर्शन को लेकर मिथ्यात्व के क्षय करने की कुछ क्रियाएँ तत्त्वचिन्तक प्रमोदमुनिजी के माध्यम से आप श्रवण कर रहे थे। संसार का हर व्यक्ति समकित वाला नहीं, सामान्य ज्ञान वाला है। वह शांति चाहता है, स्वस्थता चाहता है, निर्मलता चाहता है और उसी का प्रयास हर घर में देखा जा सकता है। मारवाड़ी भाषा में कहूँ- हर घर में सवेरे-सवेरे सुनने को मिलता है कि "अभी तो बासी काम करना है।" बासी काम क्या? क्या आँगन को साफ करना, बर्तन माँज लेना, पानी छान लेना, कपड़े धो डालना, यही बासी काम है? मैंने सुना है प्रत्येक घर में चाहे वह गरीब हो या अमीर, छोटा हो बड़ा, हर घर शुद्धि चाहता है। एक दिन भी ऐसा नहीं जाता जब कि बासी काम न किए जाते हैं। कभी घर में बासी काम करना रह जाय तो मन में उदासी आती है। आज शरीर में कुछ कष्ट है, काम करने की स्थिति नहीं इसलिए बासी काम तक नहीं हुआ। बासी काम करते-करते कितना समय हो गया?

आप मात्र बासी काम में ही नहीं, शरीर की शुद्धि में भी उतने ही तत्पर है। शरीर का एक-एक अंग धोया जाता है। बाहर से घर आने के साथ, हाथ धोए जाते हैं, कपड़े पसीने से तर-बतर हैं, गन्दे हैं, उन्हें साफ किया जाता हैं। शरीर को कुछ नहीं लगा तब भी मन में विचार आता है कि आज नहाये नहीं। शरीर पर कचरा नहीं है, मैल नहीं है, कहीं गन्दगी नहीं दिखती फिर भी व्यक्ति हाथ धोता है, आँख-नाक-मुँह और माथे तक की बात नहीं, शरीर का एक-एक अंग धोने का प्रयास किया जा रहा है। शरीर को जितना साफ करने का प्रयास किया जाता है, शायद मन को साफ करने के लिए हजारवाँ भाग जितना प्रयास भी नहीं होता।

आचार्य भगवन्त (पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमलजी महाराज) की भाषा में कहूँ- "प्रतिक्रमण नहीं हुआ। रात में कौन-कौन से पाप हुए? कौनसे अतिचार लगे? क्या प्रातः उठकर प्रतिक्रमण हुआ? नहीं हुआ तो क्या यह विचार आया कि आज बासी काम नहीं हुआ?" बात यह है कि अभी जैसी चाहिए वैसी श्रद्धा नहीं है, विश्वास नहीं है, प्रतिक्रमण को आवश्यक नहीं समझा है। आप जितने श्रावक-श्राविकाएँ हैं क्या किसी को अफसोस हुआ कि आज मेरा प्रतिक्रमण नहीं हुआ? घर का झाड़ू नहीं निकला, परिण्डा नहीं छना, बर्तन नहीं मँजे उसका तो पछतावा है, पर सामायिक- प्रतिक्रमण नहीं होने का कितनो को पछतावा है? कभी किसी घर का बासी काम नहीं हो तो क्या यह कहने में नहीं आता कि उस घर के लोग फूहड़ है। भगवान् की भाषा में फूहड़ कौन? मन की गन्दगी नहीं निकालने वाला, मन के मैल को नहीं धोने वाला, पाप का प्रायश्चित नहीं करने वाला, फूहड़ है। अगर आप फूहड़ नहीं तो सामायिक कीजिए, प्रतिक्रमण कीजिए, संवर कीजिए। आप जैसे शरीर की और घर की सफाई करते हैं, भीतर रहे मन की सफाई भी कीजिए। मन के मैल को दूर कीजिए। भीतर रहे मन की सफाई भी कीजिए। दिखावा नहीं करे, खाना-पूर्ति भी न हो। संघ का व्यवहार है, इसलिए किया

जा रहा है, यदि ऐसा है तो वह भी मन से नहीं है।

आचार्य भगवन्त, गुरु हस्ती की भाषा में कहूँ- आदमी सबसे बात करता है। नौकर से, बेटे से, भाई से, माँ-बाप से, पत्नी से, सबसे बात की जाती है पर क्या कभी-कभी इस मन से बात करने के प्रयास किये जाते है? आप अपने-आपसे बात करके देखो। आप जिसके सहारे जी रहे हैं, प्राणावान कहलाते हैं, सेठ साहब हैं तो सोचें कि मैंने कभी अपने आत्मदेव को सँभाला या नहीं? आचार्य भगवन्त की भाषा में कहूँ-

तन का मैल हटाने खातिर, नित प्रति नहावेला।
मन पर मल चहुँ ओर जमा है, कैसे धोवेला?
करलो सामायिक रो साधन, जीवन उज्जवल होवेला।।

आचार्य भगवन्त ने उज्ज्वल होने का रास्ता बताया है- तन का मैल धोने वाले मन का मैल भी धोए। मन का मैल धोने वाले विरले हैं। तन को उज्ज्वल करने वाले कई हैं। तन की शुद्धि के लिए, घर की सुरक्षा के लिए आपका चिन्तन है। घर की सुरक्षा के लिए लकड़ी के किंवाड़ है, जाली का अलग से किंवाड़ है, कुत्ता फाटक भी है। किनको घर में प्रवेश करने देना, किनको नहीं आने देना ये सब आपको ध्यान है। मन पर क्या कोई किंवाड़ है? क्या कोई पाप-त्याग का किंवाड़ है? है कोई फाटक? क्या कहीं नो एडमिशन का बोर्ड है? आपको जितना घर का खयाल है, शायद मन का खयाल कुछ अंश में है या नहीं, कहा नहीं जा सकता? घर में कुत्ता न आ जाय, चोर न आ जाय, क्या इसी तरह मन में कषाय न आ जाय, विचारों में बुराई न आ जाय, उस ओर कभी चिन्तन चला? चालीस साल पहले किसने क्या कहा, वह तो याद है पर यह याद नहीं कि मैंने किसके साथ क्या बुरा किया, मैंने किसका माल हजम किया? जिसका मैंने लिया, उसे वापस दिया या नहीं, ये बातें शायद याद नहीं है। यह भी याद नहीं कि कौनसा नियम कब लिया और कब नियम टूटा?

आपको "धम्मो मंगल मुक्किट्ठं" (धर्म ही उत्कृष्ट मंगल है) याद रहना चाहिए या मेरे विरूद्ध किसने-कब-क्या कहा यह याद रहना चाहिए? आप नहीं रखने वाली बातें तो याद रखते हैं और याद रखने वाली बातें भूल जाते हैं तो आपको क्या कहना? आप घर के दरवाजे बन्द करते हैं तो क्या मन के दरवाजे को बन्द करना कभी याद आता है? बुराई के लिए दरवाजे क्यों खुले हैं? आप प्रवचन-सभा में बैठे हैं। जिनवाणी श्रवण कर रहे हैं। व्याख्यान की बात याद रहे, न रहे, पर नीचे कौन है? जो जोर-जोर से बोल रहे हैं, वे क्या कह रहे हैं? आपको याद है। मुझे कहना यही है- गुण-ग्रहण करने वाले दरवाजे बन्द हैं, दोष देखने और सुनने के दरवाजे खुले हैं।

अभी आपने तत्त्वचिन्तिक मुनिजी से सुना- "जब तक सप्लाई-लाईन बन्द नहीं होगी तब तक न सामायिक शुद्ध होगी, न साधना ही। पात्र में कचरा भरा है तो खीर गन्दी हुए बिना नहीं रहेगी। पहले पात्र साफ करना होगा। मन में जब तक विषय-कषाय का कचरा है, ज्ञान-ध्यान और मोक्ष जाने की बात कहाँ ठहरेगी? आपने ठूँस-ठूँस कर खा रखा है, फिर कोई मनुहार करे तो आप मना कर देंगे कि अब लड्डू खाने की जगह ही कहाँ है?"

अनन्तानुबन्धी कषाय की बातें मन से सम्बन्धित हैं उन्हें निकालिये। घर की तरह मन का कचरा साफ करने की जरूरत है। गाँव-गली, मोहल्ला-नगर सब जगह कचरा साफ करने की व्यवस्था है, पर घट की सफाई की कोई व्यवस्था है या नहीं? पहले से मन की सफाई की मन में नहीं आती फिर व्याख्यान में कड़वी बात सुनने को मिले, तो कई भाई ऐसे भी मिल सकते हैं जो कह दें- यहाँ क्या सुनना, वहाँ चलो, वहाँ भजन-गीत और कहानियाँ सुनने को मिलेगी।

जरूरत है, कषाय-निकन्दन की। जरूरत है अपने अवगुणों को

देखने की। जरूरत है पाप से निवृत्ति की। जहाँ से भी अच्छी बात सुनने को मिले, ग्रहण करनी चाहिए। आप लिख लें जब तक कषाय-निकन्दन का चिन्तन नहीं, तब तक संसार का न अंत आया है, न आएगा। पहले बुराई समझ में तो आए। आप इतने लोग सुनने वाले हैं किन्तु सुनकर सार निकालने वाले कितने हैं? आप दोष-निकन्दन हेतु पाँच-दस मिनट निकालने का समय नहीं देते हैं तो दोष दूर कैसे होंगे? आप व्यापार में घाटा लग जाय तो विचार करते हैं, कभी बीमार हो जाओ तो किस डॉक्टर से उपचार करवाना है, सोचते हैं। लेकिन अपने में सद्गुण बढ़े, जीवन में सुख-शांति और समाधि मिले इसके लिए किसका-क्या चिन्तन है? जब तक मन का मैल साफ नहीं होगा, गुरु तो क्या भगवान् भी आपके समक्ष आ जायें तो भी मन का कचरा निकल जाएगा, यह संभव नहीं है। बाहर की सफाई, काम वाली बाई कर देगी, बच्चा है तो माँ शरीर की सफाई कर देगी परन्तु मन में रहे मैल की सफाई तो आपको खुद ही करनी होगी। मन की सफाई के लिए मुहूर्त्त की जरूरत नहीं है। मन की सफाई के लिए, अच्छे काम करने के लिए कोई भी समय खराब नहीं है। बुराई जब चाहें, निकाली जा सकती है।

आप-हम-सब में कमी है, बुराई है लेकिन अपनी बुराई सुनने को कोई तैयार नहीं होगा। एक बात और कह रहा हूँ- आप किसी को चोर, किसी को हत्यारा, किसी को व्यभिचारी कह कर देख लें, क्या नतीजा होता है? अभी तक आपने मन के कचरे को कचरा नहीं माना इसलिए बात-बात पर लड़ाई-झगड़े की नौबत आती है। आप अपने-आपको देखें, अपना स्वयं का निरीक्षण करें।

आप अच्छा बनना चाहते हो या बुरा? बुरा बनना कोई नहीं चाहता। चाहे बच्चा हो या बुढ़ा अथवा जवान, सब अच्छा बनना चाहते हैं। और यह भी सच है कि बुराई सब में रही हुई है। कम-ज्यादा बुराई हो

सकती है, लेकिन बुराई छोड़ने वाले कितने हैं? लोग बोलने तक का विवेक नहीं रखते। वे यह नहीं सोचते कि किस कुल और खानदान में जन्म लिया है?

आप रोज सुनते हैं। पर्युषण बीत गए, चौमासा बीतने वाला है, आज तक न मालूम कितने चौमासे बीत गए पर किसको कितना लगा है, पूछूँ तो इस बारे में? लगे भी कैसे? बहुत से तो गिलगिचिये (गोल चिकना पत्थर) की तरह हैं। गिलगिचिये जानते हैं ना- एक पत्थर जिस पर लोटा या बाल्टी ही नहीं, मूण भर पानी डाल दो, गिलगिचियों पर कोई असर होने वाला नहीं है। आप बुराई पर 'नो एडमिशन' का बोर्ड लगाओ किन्तु पहले सप्लाई लाईन काटो। आप पहले बुराई धोने वाला स्वाध्याय कीजिए। आप गाँवों में जाकर देख लीजिए, गाँव का काश्तकार यदि दूसरा काम नहीं है तो वह राम-राम करता रहेगा, भगवान् का नाम लेगा, दूसरी पंचायत नहीं करेगा। आपके पास दूसरा काम नहीं तो बैठे-बैठे नमस्कार मंत्र गिनते रहो, प्रार्थना बोलो, भजन-गीत गुनगुनाओ, स्वाध्याय करो। जिनसे ये नहीं बनता, वे बुराई में आनन्द का अनुभव करते हैं। कोई जोर-जोर से बोल रहा है तो वहाँ भीड़ लग जाती है। क्या बात है? कौन लड़ रहा है? किसकी गलती है? आप जो काम कर रहे हैं, उसे छोड़कर बाहर आकर देखेंगे। अभी आप व्याख्यान में बैठे हैं। दूसरी ओर कोई बात कर रहा है तो आप में से कुछ ऐसे भी हो सकते हैं जो व्याख्यान छोड़कर देखेंगे कि कौन है जो जोर-जोर से बोलता है?

आप इस शरीर को चाहे जितना साफ करने की कोशिश करें, यह साफ हुआ नहीं, होगा नहीं। आपने अनुभव किया होगा- ब्राह्मण, शुचि-प्रधान होता है। वह बार-बार हाथ-मुँह धोता रहता है। उसने मुँह साफ करने के लिए कई बार कुल्ले किए हैं। पाँच-दस नहीं बीसियों बार कुल्ले

करके वह किसी पर थूके तो.....? अरे भाई उसने बीस बार कुल्ले किए हैं, कई बार हाथ धोए हैं, अब कहाँ से गन्दगी रह गई? इस शरीर को चाहे जितना साफ कर लो, यह शुद्ध होने वाला नहीं है। यह शरीर बिना गन्दगी के रह नहीं सकता। अगर पूरी तरह गन्दगी निकल जाय तो "राम नाम सत्य" हो जाये। संथारा करने वाले में मल का कुछ अंश रहता है, सारा मल निकल जाएगा तो संथारा सीझ जाएगा।

यह जीव मल में जन्मा है, मल में जीवित रहने वाला है। मल की सफाई की जा रही है और जो निर्मल है, पवित्र है, भगवान् की भाषा में कहूँ- "सिद्धाँ जैसो जीव है", अगर यह ज्ञान हो जाय तो फिर नर, नारायण हो सकता है। आप भाग्यशाली हैं, मन का कचरा निकालने के लिए सामायिक, स्वाध्याय और साधना करते हैं। जिन्होंने साधना की, वे आगे बढ़े हैं। भले ही उनकी खोपड़ी सीझ रही है, चमड़ी उतारी जा रही है। आपने कई बार सुना है, सुनना साकार तभी होगा जब कि मन के कचरे को आप निकाल बाहर करेंगे। नहीं तो, अधिकांश लोगों को बातों में रस आता है, लड़ाई-झगड़े देखकर उन्हें आनन्द आता है। अनुभवियों ने तो यहाँ तक कहा है कि जहाँ दो आदमी लड़ते हों, वहाँ तीसरे को नहीं जाना चाहिए। आप अपना चिन्तन करें। आप सामायिक-स्वाध्याय और साधना की निरन्तरता रखकर त्याग-वैराग्य में आगे बढ़ेंगे तो "देवावि तं नमंसंति, जस धम्मे सयामणो" (उन्हें देवता भी नमस्कार करते हैं, जिनका धर्म में सदा मन लगा रहता है।) की उक्ति साकार कर सकेंगे।

जोधपुर
25 सितम्बर, 2011

बच्चों को संस्कारित करने में समय दें

स्व-स्वभाव में रमण करने वाले सिद्ध भगवन्त, अनन्त ज्ञानी अरिहन्त भगवन्त तथा स्वध्याय-ध्यान में लीन संत भगवन्तों के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन!

बन्धुओं!

जीवन चलाने के लिए हर व्यक्ति को कोई-न-कोई काम करना ही पड़ता है। आजीविका हेतु चाहे नौकरी करें, धंधा करें, गाँठ उठाकर चलें, ठेला चलाएँ, चाहे जिस माध्यम से उपक्रम करें, कुछ-न-कुछ काम हर व्यक्ति को करना ही होता है। सामान्य कार्यों के अतिरिक्त कई काम हैं जो कर्मादानों के धंधों से आजीविका चलाते हैं। आजीविका निर्वहन हेतु कोई भी काम करें, कर्म-बन्धन होता ही है।

आचार्य भगवन्त (पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमलजी महाराज) के शब्दों में कहूँ- काम कोई भी हो, पाप से अछूता नहीं है। उसमें चाहे हिंसा हो, चाहे झूठ बोलना पड़े, चाहे भ्रष्टाचार करना पड़े, चाहे छुप कर काम करना पड़े, अधिकांश कामों में पाप लगता ही है। निर्दोष आजीविका के साधन कम है। आचार्य भगवन्त शिक्षा को निर्दोष आजीविका कहते थे। शिक्षक की बिना पाप किए पेट भराई हो जाती है। अक्षर ज्ञान करवाना, पढ़ाना, जीवन-जीने की कला सीखाना, अगर भावना में मलीनता नहीं तो शिक्षक की आजीविका शुद्ध है, पापकारी नहीं है। मैं केवल शिक्षक की बात ही नहीं कहूँ, सद्ज्ञान देने

वाला, संस्कार प्रदान करने वाला, आत्म-जागृति की प्रेरणा जगाने वाला, स्वयं कर्म-निर्जरा करता है और दूसरों के उत्थान में भी सहयोगी बनता है, उसका दर्जा शिक्षक से कहीं आगे है।

ज्ञानाराधन के तीन लाभ हैं। पहला लाभ है- पाप के धंधों से बचाव। खाली बैठा-बैठा आदमी कोई-न-कोई उधेड़बुन में रहेगा। वह चाहे अपनी बात करे, पड़ोसी की बात करे, परिवार की करे, व्यापार-व्यवसाय की करे, कोई-न-कोई बात जरूर करेगा। इसके विपरीत जो ज्ञान-साधना में रत है, ज्ञानाराधन करता है या करवाता है वह स्वयं आरम्भ-समारम्भ से बचता है एवं अपने अध्वसायों की निर्मलता बनाए रखता है। मैं ख्याति की अथवा नाम-प्रसिद्धि की बात नहीं कह रहा हूँ, पर जो बात रख रहा हूँ वह संस्कार के लिए है। आचार्य श्री हस्ती कहा करते थे कि पहले के लोग कर्त्तव्य भावना से घर-घर जाकर संस्कार देने की बात करते थे। इसलिए घर-घर में बच्चों को, बच्चियों को चौबीस तीर्थंकरों के नाम कहिये, तिक्खुतो का पाठ कहिये, सामायिक के पाठ कहिये, आते थे। उन्हें माता-पिता और परिजन नित्य-प्रति बोल-बोल कर सिखाते, याद करवाते, सुनते और पूछते थे। आज क्या स्थिति है? आज न साक्षरता की तरफ ध्यान है, न संस्कार देने की कला की ओर। धर्म, नैतिकता और आध्यात्मिक शिक्षा की बात तो आगे की है। आज धनी-मानी लोगों के घर कितने सदस्य इस विषय में क्या करते हैं, शायद यह भी पता नहीं, फिर संस्कार कहाँ से दें? अगर माता-पिता बच्चे-बच्चियों की अँगुली पकड़ कर धर्म-स्थान में लाते और पूछते कि महाराज ने क्या कहा? तुमने क्या सुना? कितना याद है? आज क्या नियम लिया? अमुक पाठ सुनाओ तो उन्हें कुछ संस्कार मिलते। पहले घर-घर में पूछने-सुनने का सिलसिला चलता था। आज घर के बच्चों को संस्कार देने का ध्यान तक नहीं है।

मैंने आपके सामने मुसलमानों की बात रखी, ईसाइयों की बात

कही, ब्राह्मणों-वैष्णवों की परम्परागत बातें सुनाई, पर वीतराग के भक्तों की क्या स्थिति है? आप जिनधर्मी है, वीतराग-भक्त हैं "ज्ञान-क्रियाभ्याम् मार्ग" की बात सुनते हैं, मैं आपके घरो की पूछूँ तो आपका क्या उत्तर होगा? आप कर सकते हैं, समय भी है लेकिन करने की अभी भावना नहीं बनी। पचासों नहीं, सैंकड़ों लोग हैं जो सेवानिवृत्त हो चुके हैं, वे चाहे तो धार्मिक संस्थानों में, सामाजिक संस्थानों में, परोपकारी संस्थाओं में सेवाएँ दे सकते हैं। मैं सेवानिवृत्त लोगों का आह्वान करता हूँ कि वे सीखने-सिखाने में, संस्कार देने में, सेवा के कार्यों में समय का भोग दें। आज घर के सदस्य घर के बच्चों को संस्कार नहीं दे पा रहे हैं, उन बच्चों को संस्कार देने के लिए अध्यापकों की माँग की जा रही है। हमने फिड़ौद गाँव में देखा, नागौर शहर में भी अनुभव किया और कुछ स्थानों पर देखा-सुना है कि एक-एक मौलवी गाँव-गाँव जाता है, बच्चों को तालीम देता है, सिखाता है। मस्जिद हो, चर्च हो, मन्दिर हो वह भले घर से दूर ही क्यों न हो, वहाँ जाकर मुसलमान है तो नमाज पढ़ेगा, ईसाई है तो प्रार्थना करेगा, वैष्णव है तो कुछ समय भक्ति में बैठेगा। आपका धर्म-स्थान भी है लेकिन यहाँ आने वाले कितने हैं? अभी तो महाराज आए हुए हैं, व्याख्यान हो रहा है इसलिए कुछ लोग यहाँ पर मिल जाते हैं। किन्तु यहाँ बच्चे कहाँ हैं? युवक कितने हैं? आज हमारे सामने धर्म-स्थान खाली रहते हैं, यह समस्या क्यों आई? आज सेवानिवृत्त सैंकड़ों लोग हैं, वे कई संस्थाओं से जुड़े हुए भी हैं, लेकिन अपने घर के बच्चों को संस्कारित करने के लिए उनके पास समय नहीं है।

आज साक्षरता की ही नहीं, संस्कारों की भी जरूरत है। शिक्षा का काम निर्दोष है फिर धार्मिक शिक्षण तो और अधिक निर्दोष है, होनी चाहिए अध्यवसायों की निर्मलता। जिनको ज्ञान दिया जा रहा है उनमें विनय-विवेक के साथ, धर्म के संस्कार जीवन में उतर सकते हैं। हम बार-बार प्रेरणा करते

हैं, हमें प्रेरणा नहीं करनी पड़े इसलिए आप स्वयं चिन्तन करें।

मैं यह कह कर समाप्त करूँ कि हल्की-से-हल्की वस्तु का उपयोग किया जा रहा है। फटे हुए कपड़ों का उपयोग किया जा रहा है, रेत तक का उपयोग होता है, रद्दी कागज है उसका भी उपयोग किया जा रहा है लेकिन जो घर को रोशन करने वाले हैं, घर के स्तम्भ बनने वाले हैं, घर की नींव कायम रखने वाले हैं उन बच्चों को संस्कार देने की बात अगर समाज के सामने आती है तो समाज का क्या कर्त्तव्य है? दूसरी जगहों पर बिना माँगें, बिना बुलाए लोग काम कर रहे हैं। आचार्य भगवन्त ने अजमेर में फरमाया था- दो मौलवी थे। वे उठकर सबसे पहले नमाज नहीं पढ़ते। दूसरे लोगों को उठाने के लिए घर-घर जाते, कौन आया? कौन नहीं आया? इसका ध्यान रखते। समाज ने जो व्यवस्था कर रखी है उसका लाभ मिल रहा है या नहीं, देखते। एक तरफ मौलवी का यह उदाहरण है तो दूसरी तरफ मैं ढाई माह से आवाज लगा रहा हूँ लोगों को बार-बार कह रहा हूँ, उसका कितना और क्या असर हो रहा है? आप चिन्तन करना।

आप नोट कर लें- "संस्कार नहीं तो साक्षरता सुख देने वाली नहीं रहेगी।" आप चाहे माता-पिता हैं या दादा-दादी, चार-चार सुपुत्रों की सम्पन्नता है फिर भी देखते हैं पानी पिलाने वाला कोई नहीं है। मतलब क्या? साक्षरता है, पर श्रद्धा, सेवा और विनय नहीं तो वह साक्षरता किस काम की? शिक्षा से जीवन में सरसता आनी चाहिए। जीवन में शिक्षा के साथ संस्कार जरूरी है, आप उस पर भी विचार करें। धार्मिक शिक्षा के लिए हम कहते-कहते थक जाँय, परन्तु आपका कितना प्रयास चलता है? जरा सोचें।

आप प्रयास करें तो यह काम मुश्किल नहीं है। मैं सुनी-सुनाई नहीं, देखी घटना कह रहा हूँ। कर्नाटक में एक गाँव का व्यक्ति जो धंधे से मुक्त हो चुका था, वह नया धंधा करने के बजाय गाँव-गाँव में जाकर बच्चों को

संस्कार देता है। एक-एक गाँव में स्वयं अपने खर्चे से जाता है और वहाँ जाकर बच्चों को पढ़ाता है, संस्कार देता है।

जोधपुर महानगर है। आपके शहर की संस्कृति कहाँ जा रही है? आप कह नहीं रहे, जवाब नहीं दे रहे है? यह सही है कि यहाँ सैंकड़ों रिटायर्ड व्यक्ति हैं। वे चाहें तो घर-घर बच्चों से सम्पर्क कर संस्कार दे सकते है। नौकरी से रिटायर्ड ही नहीं, धंधे से निवृत्त हुए भी कई लोग हैं, जो ए.सी. , कमरों में बैठकर गादियें खूँदते हैं, आराम करते हैं, टी.वी. देखते हैं और यहाँ तक कि ताश खेलते हैं। उनको मौज-शौक के लिए समय है, ऐशो-आराम के लिए समय है किन्तु बच्चों को संस्कार देने का समय नहीं है। मेरा काम-धंधे से और नौकरी से रिटायर्ड लोगों से इतना ही कहना है कि आप बच्चों को सँभालें, उन्हें संस्कार दें। आप सुज्ञ हैं, इशारा समझते हैं इसलिए मैं अपेक्षा रखूँ कि आप बच्चों को पढ़ाने में, संस्कार देने में लगेंगे तो घर-घर स्वर्ग बन सकता है। घर-घर में प्रेम, शांति, समृद्धि दिखाई दे सकती है। आप सरस्वती के खजाने को बाँटने की तैयारी करें, इन्हीं शब्दों के साथ....

जोधपुर
1 अक्टूबर, 2011

श्रद्धा से करें, सामायिक-साधना

संसार के करणीय कार्यों से कृत-कृत्य होने वाले सिद्ध भगवन्त अटकाने-भटकाने वाले घाती कर्मों का क्षय कर अनन्त ज्ञान-अनन्त दर्शन पाने वाले अरिहन्त भगवन्त एवं करणीय कार्यों में कदम बढ़ाने वाले संत भगवन्तों को कोटि-कोटि वन्दन!

बन्धुओं!

तीर्थंकर भगवान् महावीर ने मन-वचन-काया को, जिसे अभी आप करना, कराना, अनुमोदना के रूप में श्रवण कर रहे थे, इन तीनों को दण्ड भी कहा है, प्रणिधान भी कहा है। अशुभ में प्रवृत्त होने वाले मन-वचन-काया के योग दण्डित करते हैं, संसार में रुलाते हैं, भव-भ्रमण बढ़ाते हैं, तो मन-वचन-काया के शुभ योग, बन्धन घटाकर, आत्म-स्वरूप जगा कर, कर्मों के बन्धन तोड़कर शाश्वत सिद्धि की ओर अग्रसर करते हैं।

शरीर से आदमी सीमित काम कर सकता है चाहे अशुभ हो, चाहे शुभ। शरीर की शक्ति पुण्यशीलता से बढ़ती है। साधना करके, पुण्य बढ़ाकर आदमी शरीर की सामर्थ्य बढ़ा सकता है। शरीर में वह बल है, शरीर के बल का वर्णन जहाँ आता है वहाँ हाथी या शेर या चतुरंगी सेना भी शरीर को हिला नहीं सकती। चक्रवर्ती भरत और बाहुबलि का द्वन्द्व युद्ध जब याद किया जाता है तो उस युद्ध को लेकर सेना में शंका होती है कि आज जितने भी युद्ध जीते, सेनापतियों ने जीते हैं, पर भरत की कहीं हार नहीं

हुई। टीकाओं में वर्णन चलता है- गड्डे खुदवाये, एक-दो नहीं, हजार साँकलें बँधवाई, सेना के सभी सिपाही पकड़ कर खींचने को तैयार थे। सभी ने जोर लगाया तो भी भरत को हिला भी न सकें। भरत ने ज्यों ही थोड़ा-सा हाथ खींचा तो सारी सेना धराशाही!

शरीर का बल बढ़ाया जा सकता है। शरीर की अपेक्षा मन अधिक बलशाली है, अधिक काम कर सकता है। मन से वैराग्य जग सकता है, पाप से घृणा हो सकती है। व्यभिचारी ब्रह्मचारी बन सकता है। वचन का बल शरीर के बल से अधिक सामर्थ्यवान है। एक अशुभ वचन बखेड़ा खड़ा कर सकता है। वचन से युद्ध हो सकते हैं। वचन से वासना जग सकती है। मन-वचन-काया इन तीनों का जब योग मिलता है तो शक्ति और अधिक प्रचण्ड हो सकती है। वह शक्ति लोगों को चमत्कार-सी दिखती है। मन-वाणी-काया के शुभ योग मिलते हैं तो चमत्कार पैदा करते हैं। अशुभ में लगे तो अन्तर्मुहूर्त्त में सातवीं नरक में पहुँचा सकते हैं। ध्यानस्थ खड़े प्रसन्नचन्द्र राजऋषि का उदाहरण आपने सुना है। तन्दुल मत्स्य की बात आप जानते हैं। गर्भ का जीव युद्ध में लगे तो कहाँ जा सकता है? नरक में। तन के साथ मन, मन के साथ वचन की शक्ति लगती है तो मानकर चलिए- अशुभ में लगी शक्ति डुबाने वाली है, शुभ में लगी शक्ति तिराने वाली है। इसे प्रणिधान के नाम से कहा गया। प्रणिधान मोक्ष के दरवाजे खोलने वाला है, यदि शुभ है तो।

इस शक्ति को जगाने के लिए सामायिक और स्वाध्याय की साधना करने की प्रेरणा की जा रही है। सामायिक-स्वाध्याय करते-करते शक्ति बढ़ती है। निरन्तर अभ्यास से चाहे वह शरीर का हो या मन का अथवा वचन का ही क्यों न हो, वह गाय-भैंस तक के पशु को कंधे पर उठाकर सीढ़ियाँ चढ़ सकता है। निरन्तर अभ्यास करने वाला चाहे शरीर से दुबला-पतला ही क्यों न हो, अच्छे-अच्छे पहलवान को पछाड़ सकता है। आप

अपनी सामर्थ्य-शक्ति का उपयोग करके साधना में बढ़ते हुए अपनी ताकत बढ़ायेंगे तो आप प्रकृति के धर्म तक को बदलने वाले बन सकते हैं। सामर्थ्य जगने पर आग को पानी बनाया जा सकता है, जहर, अमृत बन सकता है, साँप फूल की माला बन सकता है, शूली का सिंहासन हो सकता है। कब? जब श्रद्धा, भक्ति और समर्पण से काम किया जाय।

जरूरत है-आस्था जगाने की। जरूरत है- दोषों से बचकर शुद्ध सामायिक-स्वाध्याय करने की। आपको धर्म स्थान में आकर सामायिक करने को कहा जाता है। कारण है, घर में कभी दूध वाला आवाज देता है, कभी फोन की घंटी बजती है तो कभी बच्चे की जिद्द और रुदन सुनाई पड़ता है। जैसी शुद्ध सामायिक धर्म स्थान में हो सकती है, वैसी घर पर नहीं हो सकती।

आपको प्रेरणा की जा रही है। हर संत-सती धर्म स्थान में आकर सामायिक करने का आह्वान करते हैं। मुझे यह बताओ कि जोधपुर महानगर में कितने फकीर-कितने मौलवी आए और उन्होंने यह प्रेरणा की कि मस्जिद में जाकर नमाज पढ़नी चाहिए। आपने प्रेरणा करने वाले मौलवी को देखा है? आपने गली-गली में फकीर को नमाज की प्रेरणा करते हुए पाया है? मुस्लिम भाइयों को जगाना नहीं पड़ता। आपको? आपको जगाना पड़ता है, बार-बार कहना पड़ता है, अनेक बार प्रेरणा करनी होती है, नियम दिलाना पड़ता है। रोज-रोज प्रेरणा करने के पश्चात् भी आप जागते नहीं। क्यों? आप सुनते हैं, समझते हैं पर करने के लिए सब तैयार नहीं होते।

आप कर्म-बन्धन से मुक्त होना चाहते हैं, नर से नारायण बनना चाहते हैं, इस देह का सदुपयोग करना चाहते हैं, धर्म ही नहीं, धर्म शासन को दीप्तिमान करना चाहते हैं तो सबसे पहले सामायिक-स्वाध्याय की साधना स्वयं करें फिर औरों को कराने का प्रयास करें।

आज यहाँ उपस्थित सभी युवारत्न बन्धु प्रमोद के साथ साप्ताहिक सामायिक धर्म स्थान में करने के लिए नियमबद्ध हुए हैं। यह शायद पहली

बार हुआ, ऐसा नहीं है, इसके पहले भी आपने शायद नियम लिया था, आचार्य भगवन्त (पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमलजी महाराज) के चरणों में भी कइयों ने संकल्प किया होगा, आज भी कई लोगों ने नियम लिया है। सामायिक की साधना बराबर बनी रहनी चाहिए। आप अशुभ प्रवृत्तियों में जितना रस लेते हैं, शायद शुभ-वृत्तियों के लिए उतना प्रयास नहीं होता। अभ्यास के लिए सामायिक की प्रेरणा की जा रही है। सामायिक शुद्ध भावों से हो। शुभ संकल्प, शुभ चेतना, शुभ विचार क्या कर सकता है, जगाने पर आदमी कैसे जागता है? आपने अनाथीमुनि की बात सुनी है। जो काम परिवार वाले नहीं कर पाए, वैद्य और चिकित्सक नहीं कर सके, दवा जो काम नहीं कर सकी, वह काम मन के शुभ संकल्प ने कर दिखाया।

सामायिक-साधना सबके लिए करणीय है। जो नहीं करते, उनके लिए मन में गहरी वेदना है। करणीय कार्यों के करने से चमत्कार भी होते हैं। उसका वैज्ञानिक आधार भी है। मान लीजिए किसी की आँख की रोशनी चली गई। नेत्र-रोग विशेषज्ञ ने कह दिया कि अब रोशनी वापस आने वाली नहीं है। पर प्रभु स्मरण से, भजन से, ध्यान से, साधना से रोशनी आ सकती है, जरूरत है एकाग्रचित्त, एक मन से अध्यवसाय में बैठकर ध्यान करने की। आपने सुना है- आचार्य मानतुंग जिनके पास न हथौड़ा था, न कोई औजार। कोई साधन नहीं था, यहाँ तक कि पत्थर भी नहीं, फिर भी एक-एक कर कैसे ताले टूटते गए? बन्धनों से वे मुक्त कैसे हुए? कहना होगा- एकाग्र मन से भक्ति वाले शुभ अध्यवसायों से बन्धन टूटते गए।

अध्यवसाय पवित्र कब होता है? जब शुभ काम में, ध्यान में, स्वाध्याय में मन जुड़ता है तो शक्ति प्राप्त होती है। उस शक्ति से ज़हर भी अमृत बन सकता है। भक्तामर, श्लोक की कड़ियाँ बोलने वाले जानते हैं- वह मंत्र है, चमत्कार नहीं। सुना आपने भी है, सुना मैंने भी है कि मन की दृढ़ श्रद्धा हो तो नहीं होने वाला काम हो जाता है।

शरीर की शक्ति से अधिक वचन की शक्ति है और वचन की शक्ति से आगे मन की शक्ति है। मन की शक्ति अनन्त है परन्तु मन की शक्ति से आगे है- श्रद्धा की शक्ति। मन की शक्ति के आगे है विश्वास का बल। श्रद्धा और विश्वास का बल शरीर-बल, मन-बल से अनन्त गुना ज्यादा है। श्रद्धा का बल अनन्त भवों के कर्मों का क्षय कर सकता है।

कोई मुसलमान है, उसे चाहे फकीर का संयोग मिलेगा या नहीं, वह नमाज पढ़ने जाएगा ही। गाँव-गाँव में मुस्लिम भाइयों को नमाज पढ़ते देखा होगा। वह चाहे गरीब है या अमीर, मजदूर है या अफसर, नमाज पढ़ेगा ही, बिना नमाज पढ़े नहीं रहेगा। आप दिन-रात "गुरु हस्ती के दो फरमान सामायिक-स्वाध्याय महान" नारे लगाते हैं। फिर आपको सामायिक-स्वाध्याय करने के लिए कहना क्यों पड़ता है? जिस दिन हमें कहना या चेताना नही पड़े, आप स्वतः होकर धर्म स्थान में सामायिक करने लगेंगे तो वह दिन आपके लिए और हमारे लिए अच्छा दिन होगा। आपको दुकान जाने के लिए कहना नहीं पड़ता। नौकरी पर आप स्वतः समय पर जाते हैं। किसी को याद दिलाने की जरूरत नहीं। ऐसे ही आप खुद ही सामायिक-साधना करें। आज हमको प्रेरणा करनी पड़ती है, बार-बार कहना पड़ता है, याद दिलाना होता है पर आप कितना मानते हैं, स्वयं निर्णय करें।

आप प्रतिदिन सामायिक करें। प्रतिदिन समय न दे सकें तो साप्ताहिक सामूहिक सामायिक अवश्य करें। इसमें किसी के कहने की जरूरत नहीं होनी चाहिए। आप युवकों ने संकल्प लिया है, मैं अपेक्षा रखता हूँ कि सामायिक-साधना में आपके कदम उत्तरोत्तर आगे बढ़ते रहेंगे, यही मंगल मनीषा है।

जोधपुर
2 अक्टूबर, 2011

शांति-समाधि चाहिए तो संयोग का सही उपयोग कीजिए

अविनाशी सिद्ध भगवन्त, अनन्त ज्ञानी अरिहन्त भगवन्त तथा साधक-शिरोमणि संत भगवन्तों के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन!

बन्धुओं!

तीर्थंकर भगवान् महावीर की आदेय-अनमोल वाणी में योग और उपयोग का महत्व बताया है। योग की प्राप्ति अनन्त काल से है, संयोग अनन्त पुण्यवानी से मिलता है, उपयोग जीवन के विकास में सहयोगी होता है। संसारी जीव अनन्त काल से योग वाला था। जब वह व्यवहार राशि में था तब भी और अव्यवहार राशि में था तब भी। एकेन्द्रिय में था तब भी काया का योग था। योग में जब पुण्यशीलता बढ़ी तो वचन योग मिला, जीव एकेन्द्रिय से बेइन्द्रिय बना। पुण्यशीलता बढ़ी तो बेइन्द्रिय से तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय बना। और पुण्याई बढ़ी तो पंचेन्द्रिय बना, पंचेन्द्रिय के साथ मन का योग बना। संयोग से ऐसी पुण्यशीलता प्रकट हुई, अगर उसका सही उपयोग किया जाता है तो अन्तर्मुहूर्त्त में अनन्त-अनन्त जन्मों के कर्मों का क्षय कर जीव, मोक्ष में जा सकता है। संयोग से शक्ति बढ़ती है। एकेन्द्रिय जीव कितने ही कर्म करे, वह नरक में नहीं जाता। ज्यों-ज्यों योग बढ़ेंगे, संयोग प्राप्त होंगे और अगर उनका दुरुपयोग किया तो दुर्गति निश्चित है

और सदुपयोग किया तो सद्गति होगी ही।

आपको शिक्षा के, ज्ञान के, प्राप्त योग के सही उपयोग करने की बात कही जा रही है। आप व्यावहारिक दृष्टिकोण को लेकर देखिये- जन्मते बच्चे को मीठा दूध पीने को मिला। बच्चा बड़ा हुआ, दूध में शक्कर मिलाकर पीने को दूध मिला। दूध मीठा, शक्कर मीठी, मीठे में मीठा। दूध के दृष्टान्त से आप परिचित हैं कि दूध अपने-आपमें मीठा है। उसमें मीठी शक्कर घुल गई तो मिठास और बढ़ जाएगी। इसलिए आपको बोलने का काम पड़े तो मीठा बोलिए।

आप जानते हैं-साँप दूध पीता है, तब भी जहर बनता है। कहावत है- साँप को चाहे जितना दूध पिलाओ, वह तो जहर उगलेगा। आदमी मीठा खाता है, फिर खारा क्यों बोलता है? जो मीठा दूध पीकर या मीठा खाकर, खारा बोले तो कहना होगा- वह आदमी भी है क्या? मैं अपने शब्दों के बजाय तीर्थंकर भगवन्तों के शब्दों में कहूँ- खारा बोलने वाला अनार्य है, आर्य नहीं। हमारा देश आर्य कहलाता है। हमारी भाषा आर्य कही जाती है। फिर हम इस जमाने को आर्य कहने में संकोच क्यों करते हैं? देश, जाति, प्रान्त, भाषा अनार्य नहीं होते, अनार्य होते हैं संस्कार। अनार्य आचरण होता है, अनार्य व्यवहार होता है। देश तो क्या, कर्म भी अनार्य नहीं होते।

ज्यों-ज्यों संयोग से शक्ति बढ़ती है त्यों-त्यों लब्धियाँ प्रकट होती हैं। उन लब्धियों-सिद्धियों से अकल्पित काम, क्षण-भर में हो जाते हैं। आचार्य श्री मानतुंग ने श्रद्धा-भक्ति के कारण अड़तालीस-अड़तालीस तालों के बन्धन से मुक्ति प्राप्त की। न कोई अस्त्र था, न शस्त्र। न चाबी, न हथौड़ा फिर बन्धन कैसे कटे? वहाँ वचन का बल था, श्रद्धा थी और भक्ति थी इसलिए एक-एक श्लोक की रचना के साथ एक-एक बन्धन टूटता गया। यह तो उदाहरण है। आपके ध्यान में दूसरा उदाहरण भी है कि एक वचन से महाभारत खड़ा हो गया और लाखों लोग मारे गए। महाभारत वचन के

कारण खड़ा हुआ। कहा भी है-

बोली बोल अमोल है, जो कोई जाने बोल।
पहले भीतर तौलकर, फिर तूँ मुखड़ा खोल।।

आप मेरे आगे-आगे बोल रहे हैं। इसका मतलब है कि यह दोहा आपके ध्यान में है। आप सबको दोहा आता है, दोहे का अर्थ आता है, दोहे का हार्द मालूम है फिर ये लड़ाईयाँ झगड़े क्यों होते हैं? आज बात-बात पर लड़ाई होती रहती है, छोटी-सी बोल-चाल झगड़े का रूप ले लेती है। भगवान् ने 'मुख अरि' यानी मुख को शत्रु बताया है। जिनके वचन शत्रु बनाने वाले हैं उनका बोलना, बोलना नहीं, जहर उगलना है। आदमी बोलकर अपने को पराया कर देता है। आप बच्चों को पढ़ाते हैं-लिखाते है-सिखाते हैं पर यदि उन्हें बोलना नहीं आया तो उस पढ़ाई का क्या अर्थ? पढ़ने का सार क्या? दो और दो पाँच? या दो और दो चार। दो और दो चार होते हैं फिर पाँच कहाँ से आया? आप मीठा खाने वाले हैं। मीठे घरों में जन्में है, सामायिक-स्वाध्याय करने वाले हैं, आपके दिमाग में दो और दो पाँच आए तो क्यों आए?

भारत के प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी को जैनियों के सम्मेलन में आमन्त्रित किया गया। वाजपेयीजी ने सम्मेलन में हल्ला-गुल्ला और आपा-धापी देखकर एक व्यंग्य कसा। कहा- मैं संसद में बैठा हूँ या जैनियों की सभा में? जैन इस तरह लड़ेंगे, यह मुझे आज ज्ञात हुआ है। लड़े कौन? पढ़े-लिखे आदमी? मैं तुलसीदासजी की उक्ति में कहूँ :

काम, क्रोध, मद लोभ की, जब लग घट में खान।
तुलसी पंडित मूरखा, दोनों एक समान।।

पंडित और मूर्ख में क्या अन्तर? जानने वाला कौन? अनजान कौन? आप पढ़े-लिखे को पंडित कहते हैं, अनपढ़ को नादान या अज्ञानी कहते हैं। आप जानते हैं वर्षा का पानी जब बहता है तो बच्चे गली-मोहल्ले

में सड़कों पर उछल-कूद करते है। वे तो बच्चे हैं, नादान हैं, नासमझ हैं, क्या आप भी बच्चों की तरह सड़क पर बहते पानी में उछल-कूद करते हैं? हम बच्चों जैसा व्यवहार नहीं कर सकते।

आप बच्चे नहीं, बच्चों के पिता हैं। बच्चों के पिता ही नहीं, दादा हैं। फिर, आपके मुँह से बच्चों के लिए नालायक, कुत्ता, बेईमान जैसे शब्द कैसे निकलते हैं? आप बड़े हैं तो आपको बड़प्पन रखना चाहिए। आप सुज्ञ हैं, सामायिक-स्वाध्याय करते हैं। अतः आपकी साधना का असर आपके जीवन-व्यवहार में झलकना चाहिए। बच्चों में और बड़ों के व्यवहार में अन्तर होता है, वैसे ही मूर्ख और पंडित में भी अन्तर होना चाहिये या नहीं?

आप ज्ञानवान है, पढ़े-लिखे हैं। शिक्षित हैं, साधना करते हैं तो आपके जीवन-व्यवहार में शांति-समाधि और संयोग का उपयोग करना आना चाहिए। आप इस भ्रम में नहीं रहें कि मैं पढ़ा-लिखा, डिग्री वाला होने से बड़ा हो गया। आप बाप हो या दादा, आपको अपना व्यवहार कैसा है, उस पर विचार करना चाहिए। अपना जीवन कैसा है, निरीक्षण करना चाहिए। वाणी कैसी है देखना चाहिए। हर व्यक्ति को अपना चिन्तन करना चाहिए।

मैं कभी-कभी जज साहब इन्दरनाथजी मोदी का दृष्टान्त दिया करता हूँ। वे अपने पोते से भी कहते तो बोलते- "पोतासा अठी पधारो।" वे न्यायाधिपति थे, बड़े आदमी थे। उनकी बोली कैसी थी? आज कई लोग अपने-आपको बड़ा मानते हैं, लेकिन उनकी भाषा, उनके वचन, उनका व्यवहार वैसा नहीं है। कुछ तो अपने बच्चों को पुकारते हैं तो नाम को बदरूप करके पुकारने में अपनी शान समझते हैं। मान लीजिए बच्चे का नाम रमेश है तो कहते हैं- "रमेशिया।" कहाँ गया पूछना हो तो कहते हैं- "रमेशिया, तू कठे बलियो?" जैसी बोली बच्चा सुनता है, बोली का असर

बच्चे के जीवन पर भी होता है। बच्चा जवाब में कह देगा- "मैं बेरा (कुएँ) में पड़ियो हूँ।" आप पारस को पारसिया बोलें और सामने वाले से यह अपेक्षा रखें कि वह सम्मान-सूचक शब्द में पुकारे तो ऐसा संभव नहीं है।

वाणी, वाणी होती है। चाहे वह छोटे की है या बड़े की, क्योंकि वाणी न छोटी होती है न बड़ी। कुएँ में जैसी आप आवाज लगाएँगे, प्रतिध्वनि वैसी ही सुनाई देगी। इसी वाणी से दुःख मिलता है तो सुख देने वाली भी यही वाणी है। आपने दृष्टान्त सुना होगा। अकबर ने बीरबल से पूछा- "मित्र कौन और दुश्मन कौन?" बीरबल ने उत्तर में कहा- "जहाँपनाह ! हमारी जुबान ही मित्र है, जुबान ही शत्रु है।"

बादशाह ने कहा- "जुबान एक है तो वह शत्रु और मित्र दोनों कैसे हो सकती है?"

एक दिन बीरबल ने बेगम को भोजन के लिए आमन्त्रित किया। खूब खातिर-तवज्जोह दी, अच्छे पकवान खिलाए, अच्छा स्वागत-सत्कार किया। जब रानी साहिबा वापस लौटने लगी तो बीरबल ने पूछ ही लिया कि "क्या आपके बाप के राज में कभी ऐसा भोजन किया?" रानी साहिबा, खाया-पिया, स्वागत-सत्कार सब भूल गई और उसे रह-रह कर बीरबल की बात मन-ही-मन कचोटने लगी। मेरी बात आप-सबको समझ में आ रही है। आप चाहे श्रावक हों, श्राविका हों, बालक हों, बालिका हों, युवक हों, युवतियाँ हों या हम साधु-साध्वी भी क्यों न हों, हम-सबको यह समझ में आ रहा है कि वाणी हमारी मित्र है और वाणी शत्रु भी है। इस वाणी से पराया अपना बन जाता है। मित्र, शत्रु बनते देर नहीं करता, शत्रु मित्र बन सकता है। वचन से दोस्त बनते हैं तो दुश्मन भी बनते हैं। जिसके साथ, जीवन के 50-50 वर्ष तक साथ रहे, उम्र 75 से ऊपर हो गई, फिर भी तलाक की अर्जी कोर्ट में चल रही है। क्यों? कारण क्या? कारण है 'यही जुबान।'

एक बाप-बेटा है। बाप की उम्र अस्सी वर्ष के लगभग है तब भी बेटा बाप को छोड़ रहा है। क्यों? कारण क्या? जिस बेटे ने आज तक सेवा नहीं की वह बाप का साथ क्यों छोड़ना चाहता है? क्योंकि बेटा बाप की जुबान सहन नहीं कर सकता। मैंने कहा, फिर से दोहरा रहा हूँ- तन से ज्यादा शक्ति जुबान में है, जुबान से ज्यादा शक्ति मन में है। मन के साथ श्रद्धा जुड़ जाय तो अनाथी मुनि की तरह क्षण-भर में रोग दूर हो सकता है।

मैं आपको कहानियाँ नहीं सुना रहा हूँ। आपको अनुभव होगा- मंगल पाठ सुनने से रोग ठीक हो सकता है। चुटकी भर राख से रोग मिट सकता है। यह ताकत है, श्रद्धा में। मैं दृष्टान्त नहीं, हकीकत बयाँ कर रहा हूँ।

आप संस्कारवान हैं, सामायिक करने वाले हैं। स्वाध्याय करते हैं। फिर भी मेरा कहना कि जब तक जीवन-व्यवहार में परिवर्तन नहीं आएगा तब तक सामायिक-स्वाध्याय और साधना का कोई अर्थ नहीं है। आप इस बात का मन में अहँ नहीं करें कि मैं साठ-सित्तर साल का हो गया हूँ, मुझमें इतनी समझ तो है। मुझको सामायिक करते वर्षों हो गए। मैं अच्छा क्या, बुरा क्या, जानता हूँ। आपका व्यवहार ठीक है तो उसका प्रभाव होगा अन्यथा कहने का कोई प्रभाव नहीं होगा। आपका जीवन-व्यवहार सुन्दर होगा तो घर के ही नहीं, आसपास के सभी लोग आपके मित्र होंगे, आपके घर में सुख-चैन होगा और आपके मन में शांति होगी। यह कब होगा? जब आप संयोग का सही उपयोग करेंगे। इस तन में, इस वचन में इस मन में इतनी ताकत है कि आप अन्तर्मुहूर्त्त में अनन्त-अनन्त कर्मों का क्षय कर सकते हैं। दूसरी तरफ आप बुरा चिन्तन करके सातवीं नरक के मेहमान भी बन सकते हैं।

आपको-हमको यह चिन्तन करना चाहिये कि योग का सही उपयोग

हो रहा है या नहीं? हम प्राप्त योग का जितना-जितना सदुपयोग करेंगे, उतने-उतने हम ज्ञानी कहलायेंगे। योग के दुरुपयोग का नतीजा है कि हम किसी और का नहीं, अपना और अपने बच्चों का बिगाड़ कर रहे हैं। ऐसा करने वाले अपने जीवन को अशान्त तो करते ही है, घर-परिवार की शांति भंग करने में निमित्त भी बनते हैं।

भगवान् की यह वाणी हर व्यक्ति के लिए है, वह चाहे छोटा है या बड़ा। आप समय का नियोजन करके चलें तो सामायिक करना भारी नहीं लगेगा। सामायिक-स्वाध्याय करते-करते जीवन-व्यवहार में परिवर्तन आएगा। जरूरत है आप प्राप्त योग का सदुपयोग करें, इस मंगल भावना के साथ.....

जोधपुर
16 अक्टूबर, 2011

संयोग पाकर जगें, जगकर साधना में आगे बढ़ें

सम्पूर्ण दुःखों का अन्त कर अव्याबाध सुख प्राप्त करने वाले सिद्ध भगवन्त, दुःख-सुख की वेदना से अलग होकर अपने-आपको अनन्त सुखी बनाने वाले अरिहन्त भगवन्त, सुख का राज-मार्ग, समिति-गुप्ति की आराधना कर साधना में चरण बढ़ाने वाले संत भगवन्तों के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन।

बन्धुओं !

तीर्थंकर भगवान् महावीर की आदेय-अनमोल वाणी में दुःख-मुक्ति का राज-मार्ग बताया जा रहा है। जितने-जितने पुण्यशाली जीव हैं, दूसरे शब्दों में हलुकर्मी जीव हैं, उनको ज्यों ही संयोग मिलता है, संयोग मिलने के साथ वे साधना में चरण बढ़ाने लगते हैं। वे चाहे जिस कुल में हों, चाहे जिस जाति में हों, चाहे जैसी परिस्थिति में हों, चाहे जिस स्थान पर हों वे साधना में आगे बढ़ सकते हैं। उनके लिए कोई बन्धन नहीं हैं। बात कहने जायें तो यों कह सकते हैं कि एक मच्छीमार भी एक बार की संगति से सुख का राज-मार्ग पकड़ सकता है। कन्हड़ जैसा कठियारा भी संयोग पाकर सुख के मार्ग में आगे बढ़ गया। कथा भाग वर्णन करता है- कठियारे की योनि से एक जन्म करके वह जीव मोक्षगामी होगा। परिस्थिति देखें, संगति देखें, जाति और कुल देखें तो शायद आपका दर्जा तो ऊपर है ही, फिर भी शायद आप पीछे हैं।

एक निमित्त वाला जग सकता है। एक बार संयोग पाने वाला आगे

बढ़ सकता है। कठिन स्थिति में जागरण हो सकता है। पर जिन्हें सब प्रकार की सहूलियत मिली है फिर भी उनका जगने का मानस नहीं बन रहा है। शायद वे समय पूरा कर रहे हैं। रिवाज निभा रहे हैं ताकि व्यवहार बना रहे, इसकी तो सोच है लेकिन आगे बढ़ने की भावना, प्रगति-उन्नति करने की चाहना और अनित्य-अशरण का उनका चिन्तन तक नहीं चलता।

जगने वालों को, जगने के लिए एक पल मिलना चाहिए। न जाने कितने दृष्टान्त आपने सुने हैं, पढ़े हैं, अनुभव किए हैं। परिस्थिति प्रतिकूल होते हुए भी भीतर के वियोग का और बाहर के सत्संग का संयोग मिलते ही व्यक्ति जगने में सफल हो जाता है। आपने-हमने न जाने कितने दृष्टान्त सुन लिए। दृष्टान्त तो सुने ही, सुनते-सुनते इतने पक्के हो गए कि पूछो मत। मैं मेरा चिन्तन करूँ, आप अपना सोचना। ज्ञान के लिए, प्राप्त संयोग के लिए, मुक्ति के लिए जो चिन्तन होना चाहिए, जो पुरुषार्थ किया जाना चाहिए, वह नहीं हो रहा है। तत्त्वचिन्तक प्रमोदमुनिजी ने कहा- "खाने के लिए साधारण-सी रोटी है, उसे भी खाने वाला प्रसन्न मन से प्रसाद मानकर ग्रहण करता है तो वह खाया सार्थक होता है। बढ़िया से बढ़िया खाने को माल मिल रहा है, फिर भी उस खाने में कोई-न-कोई कमी निकालने वाले हैं फिर वो खाना सार्थक कैसे होगा? क्या वजह है? मूल कारण है- जो ज्ञान, चेतना, वैराग्य जगना चाहिए वह अभी जगा नहीं। अगर यों कह दूँ कि वह ज्ञान समाप्त हो गया तो कोई अतिशयोक्ति नहीं।

आचार्य श्री गुमानचद्रजी महाराज (रत्नवंश के आद्यपुरुष पूज्य कुशलचन्द्र जी महाराज के शिष्य एवं उनके पश्चात् रत्नवंश के प्रथम आचार्य) के शिष्य दौलतरामजी महाराज थे, वे जितेन्द्रिय थे। चालीस साल का संयम जीवन था फिर भी विगय का सेवन तक नहीं किया। पाँचों विगयों का त्याग। वे क्यों चमके? उनका नाम आज तक क्यों लिया जा रहा है?

बात यह है कि वे अन्तर्मन से वैरागी थे इसलिए त्याग में आगे बढ़ गए। उन्हें रुक्ष आहार से सन्तुष्टि मिल जाती, विगय-युक्त आहार करने की कभी मन में ही नहीं आई।

आज कई भाई-बहिन हैं जो आयंबिल तो करते हैं पर कैसे करते हैं? आप ज्यादा जानते हैं। आयंबिल में पचास-पचास आइटम। इतने आइटम हैं लेकिन कहने वाले कहते हैं- आयंबिल करने में मजा नहीं आया। आज आयंबिल में दर्जनों आइटम बनाए जाते हैं, खाए जाते हैं ऐसा क्यों हैं? यह सब खाने की आसक्ति का कारण है जो अनेकानेक खाने के पदार्थ होने पर भी मन नहीं भरता।

खाने वाले मात्र एक या दो आइटम खाकर आयंबिल करते हैं। मात्र एक दाना खाकर मन को सन्तुष्ट करने वाले आयंबिल-आराधक हुए हैं। उन साधकों ने एक-दो बार नहीं, बार-बार आयंबिल-साधनाएँ की हैं। आज आयंबिल में एक दाना खाया, कल उपवास, परसों फिर आयंबिल और आयंबिल में वही एक दाने का आहार। आज आयंबिल में कई चीजें बनती है, खाई जाती है पर उन्हें कितनी सन्तुष्टि है? इस पर आप चिन्तन करना। खाने में दस अच्छी चीजें हैं उनकी बात करें या न भी करे किन्तु एक चीज ठीक नहीं, उसकी चर्चा जरूर करते हैं। कुछ तो तप करके भी खाने में कमी ही नहीं देखते, किन्तु बड़-बड़ाते हैं, बार-बार गिनाते हैं कि अमुक चीज ठीक नहीं बनी।

आयंबिल तप है, साधना है। आयंबिल करने वाला तपस्या करता है या इन्द्रियों की तृप्ति? तप-साधना करने वाला खाने का स्वाद नहीं देखता। स्वाद की तरफ उसका न तो ध्यान जाना चाहिए और न कहने की आदत ही होनी चाहिए कि खाने में अमुक कमी है। आयंबिल तप की साधना करने वाला, स्वाद अच्छा है या नहीं, यह नहीं सोचे। वह तो यह सोचे कि मुझे खाने को मिल रहा है, व्यवस्था करने वालों ने कितना ध्यान रखा है।

आज तप-साधना के बजाय इन्द्रियों की तृप्ति की ओर लोगों का ध्यान है। अच्छे-से-अच्छा बनाकर और खाकर भी जिन्हें सन्तुष्टि नहीं, वे शरीर को भाड़ा चुका रहे हैं ऐसा मानना तो दूर, कहते तक भी नहीं। आपने आचार्य श्री गुमानचन्द्रजी महाराज के बारे में सुना है। वे इसी जोधपुर शहर के महापुरुष थे। एक निमित्त मिला और वे जाग जए। घर से पिता-पुत्र दोनों पुष्कर गए। पुष्कर में अस्थियाँ प्रवाहित कर लौट रहे थे। रास्ते में मेड़ता आया। वे दोनों मेड़ता विराजित पूज्य श्री कुशलचन्द्रजी महाराज के दर्शन-वन्दन के लिए उपस्थित हुए। दर्शन-वन्दन के सुयोग से वैराग्य जगा और दीक्षित हो गए।

दीक्षा लेना और दीक्षा लेकर रम जाना दोनों में बड़ा फर्क है। दीक्षा ही क्या, साधना-आराधना का कोई काम हो उसमें रमना और उसे करना दोनों में अन्तर होता है। मान लीजिए आप सामायिक लेते हैं। सामायिक लेने के बाद कितने पाप घटते हैं, विषय-कषाय से कितनी निवृत्ति होती है, आप इस पर सोचें। आचार्य भगवन्त श्री गुमानचन्द्रजी महाराज ने दीक्षा लेकर कैसा पुरुषार्थ किया, आप वृत्तान्त सुन चुके हैं। बात चाहे हम साधकों की हो या आप देशविरतियों की, आप नोट कर लें- परिवर्तन में न भगवान् सहायक हैं और न ही शास्त्र ही, परिवर्तन होता है- पुरुषार्थ से, संयम से, साधना से। हम, दृष्टान्तों के माध्यम से कहते हैं, आप सुनते हैं तो सुनने वालों के मन में "कम खाओ ज्यादा खाओ" उसके बजाय कुछ-न-कुछ चिन्तन चलना चाहिए, जागरण होना चाहिए। जब तक आचरण नहीं होगा, जीवन में परिवर्तन नहीं आएगा।

जगने वाले एक निमित्त से ही जग जाते हैं। वैरागी ही नहीं, दीक्षित भी हो जाते हैं। दीक्षित तक ही नहीं, साधना करके मुक्त बन जाते हैं। एक-एक निमित्त कैसे-कैसे जागरण करता है? तपस्वी ताराचन्द्रजी महाराज

ने तेरह साल तक संयम पाला, उन्होंने पाँचों विगयों का त्याग रखा, एक भी विगय का सेवन नहीं किया। वे बेले-बेले पारणा करते थे और पारणक में भी विगय का सेवन नहीं करते। आप महापुरुषों के जीवन-चरित्र सुनकर अन्तर्मन में जागृति का संकल्प करें। आपको बहुत सुनाया जाता है, आप सुनते भी हैं किन्तु लगता किन्हीं-किन्हीं को ही है। अधिकांश तो भारी कर्मा जीव हैं, इधर से सुना उधर से निकाल दिया।

जगने वालों के लिए एक निमित्त बहुत होता है। एक बार के संयोग से मच्छीमार जग सकता है, कान्हड़ कठियारा जग सकता है, फिर आप क्यों नहीं जगते? क्यों चोरों का सरदार, साधुओं का सरदार ही नहीं, प्रधान आचार्य बन गया? ये थे जम्बू स्वामी के पश्चात् भगवान् महावीर के तृतीय पट्टधर आचार्य प्रभव।[1] मैं पहले कह गया, आज फिर दोहरा रहा हूँ- पेटी में पड़ा कपड़ा सर्दी नहीं मिटा सकता। रसोई में पड़ी मिठाई पेट नहीं भर सकती। बैंक में पड़ा पैसा विपत्ति से नही बचा सकता। इसी तरह आप दुःख से मुक्ति चाहते हैं तो साधना करनी होगी, पुरुषार्थ का परिचय देना होगा।

एक वचन ही सत्गुरु केरो, जो पैठे दिल मांय रे प्राणी,
नीच गति में ते नहीं जावे, एम कहे जिनराय रे प्राणी।
साधुजी ने वन्दना नित-नित कीजे, प्रातः उगन्ते सूर रे प्राणी।।

लग जाय तो एक वचन काफी है। नहीं लगने वालों के लिए एक वचन नहीं, दिनों-महिनों-वर्षों तक सुनाया जाये फिर भी उन्हें नहीं लगता। कहा तो यह जाता है कि जो पत्थर हथौड़े से नहीं टूटे उस पर रोज रस्सी पड़ती जाय तो पत्थर जैसी कठोर वस्तु पर भी निशान बन जाता है। आपने देखा होगा- कुएँ पर पानी निकालने के लिए रस्सी अन्दर डाली जाती है, वहाँ निशान बन जाते हैं। पत्थर कठोर है, रस्सी कोमल है। कोमल होते हुए भी रस्सी के निरन्तर आने-जाने से पत्थर पर निशान बन जाया करते हैं।

आप रोज सुनते हैं। सुनते-सुनते कुछ-न-कुछ बात लगती ही है।

रोज सद्-शिक्षा सुनने से जीवन-सुधार होना स्वभाविक है। बस, लगनी चाहिए रगड़। बिना रगड़ लगे काम नहीं होने वाला है।

आप-हम आचार्य भगवन्त गुमानचन्द्रजी महाराज, आचार्य भगवन्त रत्नचन्द्रजी महाराज, पूज्य दुर्गादासजी महाराज, उत्कृष्ट क्रियापात्र ताराचन्द्रजी महाराज जैसे महापुरुषों के प्रसंगों को सुनकर हम अपने भीतर में साधना का बल बढ़ायें, कषायों को दूर करने का प्रयास करें तो साधना में विकास करना सहज होगा।

श्रुतज्ञान की सेवा में श्रावकों में अभी वैसा रस नहीं है। हम महापुरुषों के जीवन को देखकर, जीवन-चरित्र सुनकर जगें। जगाने के लिए संयोग प्राप्त है। हम, जगकर साधना-मार्ग में आगे बढ़ेंगे तो कल्याण हो सकेगा।

जोधपुर,
20 अक्टूबर 2011

संदर्भ

1. जम्बू स्वामी के पश्चात् भगवान् महावीर स्वामी के तृतीय पट्टधर आचार्य प्रभव स्वामी हुए। वे महाराजा विन्ध्य के ज्येष्ठ पुत्र थे। वे बड़े साहसी और तेजस्वी राजकुमार थे। बड़े होने पर विन्ध्य नरेश ने किसी कारणवश प्रभव राजकुमार से अप्रसन्न होकर अपने राज्य का उत्तराधिकारी छोटे बेटे सुप्रभ को घोषित कर दिया। प्रभव इससे रूष्ट हो जंगलों में चले गये। वहाँ वे लुटेरों के सम्पर्क में आये। उनके पराक्रम को देखकर लुटेरों ने उन्हें अपना सरदार बना लिया। अब प्रभव अपने 500 डाकुओं के शक्तिशाली दल के साथ कस्बों और गाँवों को लूटने लगा। उसने अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए मजबूत तालों को खोलने की विद्या और लोगों को प्रगाढ़ निद्रा में सुला देने वाली विद्या साध ली।

   ऋषभदत्त श्रेष्ठी के पुत्र जम्बूकुमार का विवाह आठ कन्याओं के साथ हुआ और उसे विवाह में अपरिमित दहेज मिला। प्रभव ने इस अवसर का लाभ उठाने के लिए 500 साथियों के साथ जम्बूकुमार के गृह में अपनी विद्या से घर के सभी लोगों को प्रगाढ़ निद्रा

में सुलाकर ताले खोल कर प्रवेश किया। परन्तु जम्बूकुमार पर प्रभव की विद्याओं का कोई असर नहीं हुआ और उन्होंने डाकुओं को कहा तुम ये सब आभूषण क्यों ले जा रहे हो? सारे ही डाकू वहाँ चित्रलिखित से स्तंभित हो गये। प्रभव ने तब जम्बूकुमार से कहा आप मुझे अपनी स्तंभिनी विद्या सिखा दीजिए और मैं आपको अपनी विद्याएँ सिखा दूँगा। तब जम्बू ने कहा- " प्रभव, मैं तो कल सभी प्रकार की हिंसा का त्याग कर दीक्षित होने जा रहा हूँ अतः मुझे तुम्हारी विद्याओं से कोई प्रयोजन नहीं। मेरे पास कोई स्तंभिनी विद्या भी नहीं है। ये सब विद्याएँ दुर्गतियों में भटकाने वाली है। मैं तो भवमोत्रिनी विद्या आर्य सुधर्मा से ग्रहण करने जा रहा हूँ।

प्रभव आश्चर्यचकित हो गया कि अपना वैभव और आठ-आठ रमणियों को त्याग कर दीक्षा लेने वाला यह कैसा शूरशिरोमणि है। प्रभव का शीश जम्बूकुमार के समक्ष झुक गया। जम्बूकुमार ने प्रभव को दृष्टान्त देकर इस संसार की असारता और इसके दुःखों के बारे में समझाया। प्रभव ने तदुपरान्त चिन्तन किया कि यह सुकुमार तृणवत् सभी का त्याग कर संयम ग्रहण करने को जा रहा है और इसके विपरीत मैं अपने साथियों के साथ रात-दिन दूसरों का धन लुटने में लगा हूँ, निश्चय ही मेरा भविष्य दुःखदायी और अन्धकारपूर्ण है। प्रभव, जम्बूकुमार के चरणों में पड़कर बोला मैं भी आपके साथ प्रव्रर्जित हो जाऊँगा, मुझे अपना शिष्य स्वीकार करें। घर जाकर प्रभव ने अपने कुटुम्बियों से आज्ञा प्राप्त कर अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ आर्य जम्बू के अनन्तर आर्य सुधर्मा से दीक्षा ग्रहण की। इस प्रकार डाकुओं के अग्रणी प्रभव अब प्रभव स्वामी बन गया।

महावीर को जानें और मानें ही नहीं, पाएँ भी

अनन्त-अनन्त जीवों के लिए मंगल-उत्तम-शरणदाता पंच परमेष्ठी भगवन्तों के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन!

बन्धुओं !

संसार के संसरण को संकुचित करने वाला, भव-भ्रमण की शृंखला को नष्ट करने वाला, कर्म के कलंक को काटने वाला परम पवित्र, प्रकाश-पुँज-दिवस आज उपस्थित है। आज का दिन भगवान् महावीर को देखने का दिन है। आज का दिन भगवान् महावीर के मार्ग पर चलकर उन्हें पाने का दिन है। जीवन की दृष्टि से भगवान् महावीर को नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव से जाना जाता है। जानने की दृष्टि से हम भाग्यशाली हैं, हमें वीतराग वाणी के अनुसार उनके बाह्य और अन्तरंग दोनों जीवन जानने का अवसर आगम के माध्यम से मिल रहा है।

नाम से लोग जानते हैं। उववाई-सूत्र गाथा 16 को पढ़कर देख लीजिए वहाँ तीर्थंकर भगवन्तों का सिर से नख तक का वर्णन मिलता है। सिर कैसा है, आँख-नाक कैसे हैं, ऊपर से नीचे तक एक-एक अंग का वर्णन उववाई-सूत्र में मिलता है। उववाई-सूत्र में भगवान् महावीर की आकृति का वर्णन पढ़ या सुनकर भगवान् महावीर की आकृति की पहचान कर सकते हैं। स्थापना के माध्यम से जो कुछ देखा जा रहा है, वह केवल मात्र कल्पना हैं। आकृति भी शास्त्र से ज्ञात हुई है। भगवान् की आकृति

बताने वाले सूत्र में जैसा वर्णन आया, आकृति की रचना वर्णन के आधार से कर दी।

मूर्ति बनाने वालों ने भगवान् को नहीं देखा। देखना तो दूर, सपने में भी मूर्ति का आकार नहीं आया होगा। तब प्रश्न उठता है कि आकृति कैसे बनी? आकृति से स्थापना का रूप मिलता है। उववाई सूत्र के माध्यम से वर्ण का, रूप का, आकृति का और उनके चिह्न और लक्षणों को देखकर मूर्ति का निर्माण किया जाता है। साँप का चिह्न है तो भगवान् पाश्वनार्थ हैं, सिंह का चिह्न है तो भगवान् महावीर हैं, बैल का चिह्न है तो भगवान् ऋषभदेव हैं। द्रव्य महावीर की बात कहें तो आप भी महावीर के रूप में हैं। भगवान् महावीर ने सामायिक की साधना की, अभी आप भी महावीर की तरह नजर आ रहे हैं। दूसरे शब्दों में कहें- महावीर नाटकों के पात्र में भी मिलते हैं। नाटक करने वाले महावीर जैसी वेशभूषा धारण करते हैं, वैसा मुकुट लगाते हैं। महावीर का नाटक करने वाले महावीर के रूप में देखे जा सकते हैं। इसलिए नाम, स्थापना और द्रव्य वंदनीय नहीं माना गया है।

नाम से कई लोग हैं जिनका नाम "महावीर" है। आकृति भी महावीर की बनाकर बैठ सकते हैं। भगवान् महावीर ने जैसे व्रत धारण किए और जिस रूप में रहे, बहुरूपिया भी वैसा कर सकता है। मेरे कहने का तात्पर्य है- नाम, स्थापना और द्रव्य से महावीर बना जा सकता है, पर कब? जब राग-द्वेष से, मोह-माया से, विषय कषाय से हटें, कर्म-जंजीरें तोड़ें ।

आज हम भगवान् महावीर की चर्चा कर रहे हैं। कभी-कभी लोग कह देते हैं कि पुण्य तिथियों को मनाने में क्या रखा है?लोग कहने में चाहे जो कहें लेकिन निमित्त भी कभी आदमी को ऊपर उठने में एक कारण बनता है। बाहर की आकृति भी कभी आदमी में उन गुणों को लेने की प्रेरणा करती है।

भगवान् महावीर का सही स्वरूप जानना है तो आचारांग सूत्र

(प्रथम श्रुतस्कन्ध- नवम अध्ययन) देख लीजिए। भगवान् ने कैसे-कैसे परीषह सहन किए? उनकी भिक्षा-वृत्ति का मार्ग कैसा होता है? भगवान् महावीर की तरह भिक्षा-वृत्ति के दोष टालने वाले कौन हैं? नौ-कोटि शुद्ध आहार करने वाले विरले मिलते हैं।[1] आज भी, नास्ति नहीं है। जिनका भाव जग गया, वे आज भी निर्दोष आहर लेते हैं। निर्दोष आहार नहीं मिला तो ग्रहण नहीं करते। भले ही एक-दो दिन नहीं, कई-कई दिन बीत जायँ। परीषह की दृष्टि से दीक्षा लेने के पश्चात् भगवान् को अनेक परीषह सहने पड़े। भगवान् के पारणों के उल्लेख में कभी खीर, छाछ, कभी उड़द के बाकले, कभी बेर का चूर्ण जैसी वस्तुएँ मिली। भगवान् को पानी ग्रहण कहाँ हुआ? भगवान् को साढ़े बारह वर्ष के काल में खीर मिलने का उल्लेख मिलता है। खीर में दूध की उपस्थिति, पानी का यत्किंचित अस्थाई विकल्प हो सकता है। कभी कोई तरल पदार्थ मिला, उसमें पानी की पूर्ति हो गई होगी, किन्तु बेर का चूर्ण या उड़द के बाकलों से पानी की पूर्ति कैसे हुई होगी?

भगवान् को पाँच महिने पच्चीस दिन बाद आहार मिला। पारणे में खाने की वस्तु मिल गई, पानी नहीं मिला, आप अनुमान करें क्या स्थिति बनी होगी? एक-एक परीषह का वर्णन आचारांग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के नौवें अध्ययन में मिलता है। हम परीषह से बचना चाहते हैं पर भगवान् कर्म काटने को परीषह झेलने आर्य क्षेत्र से अनार्य क्षेत्र में गए। हम सोचकर चलते हैं, आगे कौनसा गाँव है? वहाँ रुकने के लिए कौनसा स्थान है, किस जगह व्यवस्था हो सकती है? पर भगवान् ने ऐसे क्षेत्रों में विहार किया जहाँ आहार-पानी मिलना संभव नहीं था। लोग बहराना जानते ही नहीं थे, उस क्षेत्र के लोग आहार-पानी बहराना तो दूर की बात, वहाँ के लोग छू-छू करके कुत्तों को उनके पीछे छोड़ते थे, लाठी का प्रहार करते थे, धूल बहराते थे। भगवान् ने सभी परीषहों को समभाव से सहन किया, इसलिए वे महावीर कहलाए।

भगवान् महावीर की साधना का वर्णन देखना चाहें तो आचारांग सूत्र के माध्यम से देखें। उपमाएँ देखना चाहें तो सूयगडांग सूत्र के छट्ठे अध्याय वीर स्तुति का अध्ययन करें। भगवान् के लिए वहाँ वर्णन मिलता है। वीर स्तुति में कहा है- हाथियों में जैसे ऐरावत हाथी, मृगों में सिंह, नदियों में गंगा प्रधान है ऐसे ही निर्वाण को प्राप्त करने वाले महावीर श्रेष्ठ एवं प्रमुख कहलाते हैं। भगवान् महावीर के निर्वाण-मार्ग का जो वर्णन मिलता है, वह अद्भुत है। भगवान् का इतना समय गुजर जाने के बाद भी कोई भगवान् महावीर का विरोध करने वाला नहीं। गंगा गई समुद्र में मिल गई, आत्मा गई परमात्मा में मिल गई, दीप बुझ गया निर्वाण को प्राप्त हो गया। भगवान् महावीर का निर्वाण "एक माँहि अनेक राजे, अनेक माँहि एककं" इस उक्ति को साकार करता है। भगवान् निर्वाणवादियों में श्रेष्ठ थे, ऐसा वर्णन किसी अन्य परम्परा या दर्शन में नहीं मिलता।

भगवान् महावीर का ज्ञान देखना चाहें तो भगवती सूत्र देखिये। जिन-जिन लोगों ने समस्याएँ रखीं, भगवान् ने सम्यक् समाधान दिया। भगवान् महावीर जैसा अकाट्य समाधान आज तक किसी ने नहीं दिया। भगवान् महावीर ने नय-शैली से समाधान दिया। भगवती सूत्र में छत्तीस हजार प्रश्नों की बात आपने सुनी है। आवश्यक निर्युक्ति में आगम के मूल ग्रन्थों की बातें मिलती है। जन्म, जन्मोत्सव, बचपन का आवश्यक निर्युक्ति में वर्णन है। उत्तराध्ययन सूत्र के माध्यम से संथारे से सिद्धि तक की बात कही गई है।

आज भगवान् महावीर को जानने, मानने और देखने का दिन है, साथ ही आज हमारा यह संकल्प भी होना चाहिये कि आज का दिन महावीर को पाने का दिन है। महावीर को पाने के लिए महावीर की तरह साधना, सहनशीलता और क्षमा धारण करने से महावीर बना जा सकता है। आपकी

साधना कैसे होती है? शरीर से, वचन से, इन्द्रियों से, मन से कैसे स्थिर रह सकते हैं? यह चिन्तन का विषय है। आप भगवान् महावीर को जानिए, समझिये और पाने के लिए अपना आचार-विचार और पुरुषार्थ लगाएँगे तो आपका सुनना और हमारा सुनाना सार्थक होगा।

मानव से भूलें होती हैं। कमजोरियाँ होना, भूलें होना मानव का स्वभाव है ऐसा कहूँ तो अतिशयोक्ति जैसी बात नहीं है। मनुष्य में कमियाँ होती है। कमजोरियाँ रह सकती हैं पर सब में सब तरह की कमजोरियाँ नहीं हो सकती। कुछ कमजोरियाँ गौण तो कुछ प्रमुख कमजोरियाँ होती है। मेरे में कौनसी कमजोरी है? मैं अपनी कमजोरी कैसे दूर करूँ? इसका मैं चिन्तन करूँ। आप अपनी कमजोरियों को देखें और समझें। हर व्यक्ति को संकल्पबद्ध होकर प्रयास करना चाहिए। प्रयास करने वाला पार होता है। राम ने पूछा सुग्रीव से कि "लंका कितनी दूर है?" जब राम ने सुग्रीव से यह पूछा तो वहाँ उपस्थित सुभटों ने एक स्वर से कहा कि पास हो या दूर, क्या अन्तर पड़ता है क्योंकि रावण के सामने तो हम सब तिनके हैं, उस पर विजय पाना हमारे लिए असंभव है। ऐसी बातें सुनकर भी भगवान् राम और लक्ष्मण लंका में जाकर सीता की खोज कर उसे लाने के लिए लगातार कठिन से कठिन उद्यम करते रहे और अन्त में लंका में प्रवेश कर रावण का वध किया और सीता को पाया। त्रिपष्टिशलाका पुरुष चरित्त में इसका विस्तृत विवरण 7/6-8 में आया है। कहने का तात्पर्य है कि उद्यम करने वाला मंजिल पाता है। आज के दिन संकल्प लेकर चलें तो एक-एक कमजोरी दूर होती जाएगी। आज का दिन महावीर प्रभु को जानने, मानने और पाने का दिन है।

आपने विजय सेठ और विजया सेठानी का संकल्प सुना है। उन्होंने शादी करने के साथ संकल्प किया। कितना महान् संकल्प था? शीलव्रत के

उस संकल्प को जानें। जो संकल्प के अनुसार चलते हैं, उन्हें मंजिल मिलती है।[2]

आप में से कई दादा हैं किन्तु शीलव्रत लेने का कहूँ तो जवाब मिलता है कि विचार करेंगे। यह जवाब क्यों? अभी भावना जगी नहीं। आप, पाप घटाने का प्रयास करें, कुशील घटाने का लक्ष्य बनाएँ। आरम्भ कम करें, कषाय घटे तो आप महावीर बनने के पथ के पथिक कहला सकते हैं। आप आज के दिन यह संकल्प करें कि हम महावीर को जानेंगे, मानेंगे और पाएँगे। आप महावीर बनने का प्रयास करेंगे तो सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हो सकेंगे।

जोधपुर
26 अक्टूबर 2011

संदर्भ

1. मुनि भोजन के लिए जीव वध न करे, न करवाए और न करने वाले का अनुमोदन करे। न भोजन मोल ले, न लिवाए और न लेने वाले का अनुमोदन करे। न भोजन पकाए, न पकवाए और न पकाने वाले का अनुमोदन करे। इस नौ कोटियों से विशुद्ध और भैक्ष अन्नादि ही मुनि के लिए विधि-विधान के अनुसार ग्राह्य होते हैं।
2. कौशाम्बी नगर में ऋषभदत्त नाम का एक बड़ा सेठ रहता था। ऋषभदत्ता उनकी सेठानी थी। दोनों ही धार्मिक प्रवृत्ति वाले थे। उनके एकमात्र संतान थी जिसका नाम रखा विजय कुमार। माता-पिता द्वारा प्रदत्त संस्कारों के कारण वह साधु-संतों के यहाँ आता और उनके प्रवचन सुनता। एक बार प्रवचन में उसने ब्रह्मचर्य के महत्त्व को सुना। ब्रह्मचर्य को धारण करने से जीवन में तेज और ओज प्राप्त होता है। प्रवचन सुनकर उसने एक सीमित ब्रह्मचर्य का संकल्प लिया कि विवाह होने के बाद वह प्रत्येक मास के शुक्ल पक्ष में ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करेगा।

   उसी नगर में धनावाह नामक एक सेठ रहता था। उसके विजया नाम की रूप व गुणों से सम्पन्न एक पुत्री थी। उसने भी साधु-संतों से ब्रह्मचर्य का महत्त्व जाना और साध्वीजी से संकल्प लिया कि वह विवाहोपरान्त भी प्रत्येक मास के कृष्ण पक्ष में ब्रह्मचर्य का पालन करेगी। संयोग से ऋषभदत्त और धनावाह ने योग्य संबंध जानकर विजयकुमार

और विजया का विवाह सम्पन्न करा दिया। सुहागरात्रि के दिन जब दोनों शयन कक्ष में मिले तो सर्वप्रथम विजयकुमार ने विजया को सम्बोधित करते हुए कहा- " प्राणप्रिये! हम गृहस्थ जीवन में मर्यादा पूर्वक रहेंगे। मैंने विवाहपूर्व ही गुरुदेव से शुक्ल पक्ष में ब्रह्मचर्य व्रत के पालन का नियम लिया हुआ है। शुक्ल पक्ष को पूर्ण होने में अभी तीन दिन का समय शेष है।" सुनते ही विजया की आँखें भर आई और वह उदास हो गई। यह देखकर विजयकुमार ने पूछा- "प्रिये! उदास क्यों हो? तीन दिन तो अभी ऐसे ही निकल जायेंगे।" तब विजया ने कहा- "हे पतिदेव! प्रश्न अब तीन दिन का नहीं, यह तो अब सारी जिन्दगी का है, क्योंकि मेरे भी विवाहपूर्व प्रत्येक मास के कृष्ण पक्ष में ब्रह्मचर्य पालन का व्रत लिया हुआ है। अतः अब आप दूसरा विवाह कर जीवन का आनन्द लें। मैं तो आपकी दासी के रूप में जीवन बीता लूँगी।"

विजयकुमार विजया से यह बात सुनकर स्तंभित सा रह गया। वह गंभीर हो गया। कुछ देर के बाद बोला- "प्रिये! कभी-कभी जीवन में अनायास ही शुभ संयोग मिल जाते हैं। ऐसा ही संयोग आज हमें भी मिला है। मैं भाग्यशाली हूँ कि तेरी जैसी महान् पत्नी मुझे मिली है जो आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर सकती है। यदि तुम कर सकती हो तो मैं क्यों नहीं कर सकता। हम इसका पूर्णरूप से पालन करेंगे और किसी को भी इसके बारे में नहीं बतायेंगे। परन्तु जिस दिन यह रहस्य माता-पिता के सामने खुल जायेगा, उसी दिन हम दोनों दीक्षित हो जायेंगे।" विजया ने इस संकल्प में भी सहमति व्यक्त की।

उस समय चंपानगरी में जिनदास नामक बारहव्रती श्रावक रहता था। उसने एक दिन स्वप्न में देखा कि वह चौरासी हजार मुनियों को मासखमण के पारणे के लिए निर्दोष आहार बहरा रहा है। सुबह होने पर उसने वहाँ विराजित केवलज्ञानी विमलमुनि से स्वप्न का फल पूछा। केवलज्ञानी मुनि ने फरमाया कि स्वप्न तो उत्कृष्ट है परन्तु इतने मुनियों को एक ही दिन निर्दोष आहार बहराना कठिन है। तब जिनदास ने पूछा- "भगवन्! क्या मेरा स्वप्न साकार नहीं हो सकता है?" मुनिवर ने कहा- "श्रेष्ठी! कौशाम्बी नगरी में ऋषभदत्त के अंगजात विजय कुमार एवं उनकी पुत्रवधू अखण्ड गुप्त ब्रह्मचारी हैं। इनके दर्शन मात्र से ही तुम्हें इतना लाभ होगा जो चौरासी हजार मुनियों को पारणा के लिए बहराने में होता है।"

जिनदास उनके दर्शन करने को कौशाम्बी पहुँचा तो विजयकुमार और विजया की गुप्त बात प्रकट हो गई। ऐसी स्थिति में विजयकुमार और उसकी पत्नी ने अपने पिताजी से निवेदन किया कि हमारे संकल्प के अनुसार हमें दीक्षा की आज्ञा प्रदान करें। गुप्त ब्रह्मचारियों ने सजोड़े दीक्षा ली। निरतिचार संयम का पालन कर अंत में दोनों सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुए। संयम का ऐसा उदाहरण दुर्लभ है।

बनें वीर-धीर-गंभीर

अविनाशी-अविचलपदवासी सिद्ध भगवन्त, सर्वज्ञ-सर्वदर्शी, अरिहन्त भगवन्त तथा ज्ञान-दर्शन-चारित्र में रमण करने वाले संत भगवन्तों के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन !

बन्धुओं!

तीर्थंकर भगवान् महावीर की आदेय-अनमोल वाणी में जीवन-निर्माण के कुछ सूत्रों का कथन किया जा रहा है। सूत्र में तीन शब्द हैं- वीर-धीर-गंभीर। व्यक्ति चारित्र लेने में वीर बनता है। जब तक जीवन में वीरता का संचार नहीं होता, तब तक व्रत-नियम और महाव्रत ग्रहण करने की भावना नही आती।

संसार में वीर अनेक हैं। हाथियों पर बैठने वाले हैं। शेर को नचाने वाले हैं। साँप का खेल दिखाने चाले हैं। परन्तु हिंसक दुर्दान्त पशुओं को जीतने के बजाय आत्मा में रही पाशविक प्रवृत्तियों को जीतना वीरता की निशानी है। आपने देखा होगा कि सपेरा साँप को नचाता है। सरकस में खेल दिखने वाला मास्टर, शेर के खेल को दिखाता है। शेर, चीता, भालू जैसे खूँखार जानवरों को वश में करने वाले है, उन्हें वीर नहीं कहते हैं। किन्तु जो विपरीत प्रवृत्तियाँ हैं उन्हें काबू में रखना वीरता है। मैं विषय को और थोड़ा स्पष्ट करूँ- शेर को नचाने वाले विकारों के आगे नाचने लग जाते हैं। दुर्दान्त-भयंकर हिंसक प्राणियों को वश में करने वाले या साँप का खेल

दिखाने वाले, काम-वासना के आगे खुद वशीभूत हो जाते हैं, नाचने लगते हैं। वे वीर नहीं हैं, वीर उनको कहा जा रहा है जो भीतर में रहे विकारों पर विजय पाते हैं।

वीर कई होते हैं। शूरवीर होते हैं तो दानवीर भी हैं। सब-कुछ लुटाने वाले, सर्वस्व समर्पण करने वाले भी है। पैसों की, सोने की, चाँदी की, हीरे-जवाहरात की, राज-पाट की बात क्या कही जाय, देने वालों ने अपने प्राण तक अर्पित-समर्पित कर दिए। ऐसे-ऐसे दानवीर भी हुए हैं, जो ढूँढने पर मिल सकते हैं। किन्तु वे कभी-कभी अपनी विपरीत प्रवृत्तियों पर विजय मिलाने वाले, छोटे-से नियम को निभाने में कायर हो जाते हैं। शरीर की थोड़ी-सी वेदना सहन करने में लाचार ही नहीं, ली हुई प्रतिज्ञा को तिलांजलि भी दे देते हैं। ऐसे लोग जब किसी नियम को अंगीकार भी करेंगे तो आगार की छूट रखने की बात करेंगे। शास्त्रकार कह रहे हैं- नियम के पालने में आत्मा को, आत्म-स्वभाव में जिन प्रक्रियाओं से पाया जाता है, उसका प्राण-पण से पालन करना वीरता है। एक व्यक्ति शक्ति-सम्पन्न है फिर भी सामान्य से नियम निभाने में कमजोर हो जाता है। वीर वह है जो प्राणों का संकट आ जाने पर, सब-कुछ लुट जाने पर सब-कुछ अर्पण करते हुए भी अपनी ली हुई प्रतिज्ञा के पालन में दृढ़ रहता है। इसलिए नियम लेना, व्रत-पालना और चारित्र का मार्ग वीरों का मार्ग है। वीर कैसे पार होता है? नियम जैसा लिया, उसे उसी प्रकार पालना वीरता की कसौटी पर खरा उतरना है। नहीं तो, लेने के समय अलग विचार था, नियम लेकर पालते समय अलग विचार था, तो समय बीतने के साथ न नियम रहेगा, न नियम लिया है यह विचार मन में आएगा। कुछ लोग नियम तो लेते हैं, नियम पालने की मनःस्थिति में नहीं होते, इसलिए वे नियम में बार-बार परिवर्तन करने की बात कहते हैं। परिवर्तन का आग्रह रखने वाले तो फिर भी नियम को

नियम मानते हैं। किन्तु नियम लेकर भूल जायँ उन्हें क्या कहना?

वीरता के पश्चात् धीरता की बात है। मारवाड़ी कहावत है -"चट रोटी, पट दाल"। इधर बोया, उधर फल चाहना। इधर सगाई, उधर विवाह। लोग इतने उतावले हैं कि घी की डली मुँह में रखकर पेट पर हाथ फेरतें हैं कि शरीर में चिकनाहट आई या नहीं। खाने के बाद असर देखने की जिनकी आदत है तो कहना होगा- यहाँ धीरज का दिवाला निकल गया है। कुछ ऐसे लोग हो सकते हैं जो सोचते हैं- इधर दवा ली, उधर रोग गायब। उसे घंटों, दिनों, महिनों का इन्तजार बर्दास्त नहीं होता।

आज हर काम में लोगों को तुरन्त रिजल्ट चाहिए। इस जल्दी-जल्दी में न वीरता है, न धीरता। वीरता के साथ धीरता का गुण होना चाहिए। कभी कोई कष्ट आ जाय, उपसर्ग हो जाय, रोग हो जाय तो धैर्य के बल पर उसे क्षीण किया जा सकता है। उतावलेपन में कष्ट हो या रोग, दुःख हो अथवा शोक, वह दूर तो शायद नहीं होता, अपितु बढ़ सकता है। मैं इसीलिए कह रहा हूँ- जो धीरता रखते हैं वे मीठे फल पाते हैं। उतावलेपन में नुकसान है, धीरता में फायदा।

साधना के क्षेत्र में धीरज चाहिए। आप बोलते हैं, और सुनते हैं कि "धीरज का फल मीठा होता है।" किसी काम को व्यवस्थित करना है तो धैर्य चाहिए, शांति चाहिए, एकाग्रता चाहिए और चाहिए विशुद्धता। उतावलेपन से काम बिगड़ता है। आज अधिकांश लोग रोग-निकन्दन में, स्वभाव-परिवर्तन में और प्रकृति के चिन्तन में तत्काल फल की अपेक्षा करते हैं। इससे लाभ कम, हानि अधिक होती है। सुना आपने भी है, सुना मैंने भी है कि अगर खाया हुआ ज्यों का त्यों निकल गया, पचा नहीं तो खाया हुआ, शरीर-पुष्ट करने के बजाय शरीर को कमजोर करेगा। आपने सुना होगा -

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आयाँ फल होय।।

माली रोज पानी देता है। उसे धीरज है, जल्दी नहीं, इसलिए ऋतु आने पर फल पाता है। जो भी तत्काल फल की अपेक्षा करता है, उसे कुछ नहीं मिलता। व्यक्ति जितना जल्दी धनवान बनता है तो उतना ही जल्दी कंगाल भी बन सकता है। इसलिए वीर के बाद धीर की बात कही जा रही है। धीरता में सहनशीलता समाहित होती है। धीरता कहो या सहनशीलता कहो, व्यक्ति लिए हुए व्रतों का, किए हुए कामों का और प्रारम्भ की गई प्रवृत्तियों का धीरता के साथ संचालन करे तो वह उसके मीठ फल पाता है।

तीसरी बात कही जा रही है- गंभीरता। ज्ञानी, गंभीर होता है। अज्ञानी, उतावला। व्यक्ति ने मशीन की तरह इधर खाया, उधर निकाला तो क्या उसका रस बनेगा? वीर और धीर के बाद जरूरत है गंभीर होने की। साधना-मार्ग में चारित्र अंगीकार करना, व्रत-ग्रहण करना वीरता है, अंगीकृत चारित्र पर श्रद्धा-विश्वास रखना धीरता है और फिर ज्ञान की गंभीरता है तो लिए व्रत अच्छी तरह पूरे होते हैं, पार लगते हैं। नियम भले ही छोटा है या बड़ा, उसके प्रति दृढ़ता हो तभी नियम की पालना होती है, नियम पार पड़ता है। जरूरत है- व्रत लेने की वीरता हो, पालन में धीरता हो और ज्ञान में गंभीरता हो। तीनों गुणों को संयुक्त करके चलने वाला मंजिल तक पहुँचता है। वीर-धीर-गंभीर प्रकृति के व्यक्ति साधना में सिद्धि पाते हैं। उनका काम हर क्षेत्र में सफलता तक पहुँचाता है।

चारित्र-मार्ग में हम गुणों का अनुसरण करना चाहें तो आचार्य भगवन्त पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमलजी महाराज का जीवन देख सकते हैं। गुणों के कारण भगवन्त आज तक याद किए जाते हैं, हम उस महापुरुष के गुणगान करते थक नहीं रहे हैं। वे हमारे मार्गदर्शक ही नहीं, हमारे जीवन के लिए ध्रुव-मार्ग में पाथेय बने हुए हैं। जरूरत है- हम व्रत-नियम लें, संकल्प के साथ आगे बढ़ें।

संकल्प, संकल्प होता है। वह न बड़ा होता है, न छोटा। छोटा संकल्प भी वीरता के साथ लिया जाए, धीरता के साथ पाला जाए और गंभीरता के साथ नियम पर चला जाय, तो नियम पार उतार सकता है। एक नियम लिया- गीली लकड़ी नहीं काटूँगा। इतना-सा नियम, पर उसकी शुद्ध पालना की तो उस नियम से एकाभवतारी बना जा सकता है। एक छोटा-सा नियम "पूनम के दिन ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा।" इस नियम का परिपालन करने से कितना लाभ हुआ, आपने पहले कई बार सुना है। एक नियम किया- "जाल में आई पहली मछली को छोड़ दूँगा।" ये बहुत सामान्य नियम हैं। नियम सहज पाले जा सकते हैं। बस, नियम पालें और विचारों की गंभीरता बनाए रखें तो छोटा नियम भी एकाभवतारी बना सकता है, मोक्ष तक पहुँचा जा सकता है। आप-हम वीर-धीर-गंभीर बनकर चलेंगे तो सुख-शांति-आनन्द पा सकेंगे।

जोधपुर
2 नवम्बर 2011

विद्वत्संगोष्ठी की सफलता निर्मल आचार के पालन में

जैसा जाना वैसा जीवन जीने वाले सर्वोत्कृष्ट आचारधारी अरिहन्त भगवन्त, अपने विचार और आचार की शुद्धि के लिए महाव्रत-समिति-गुप्ति की आराधना करने वाले संत-भगवन्तों के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन।

बन्धुओं!

तीर्थंकर भगवान् महावीर की आदेय-अनमोल वाणी यथाख्यात-चारित्र के रूप में जानने, मानने और पालने का भेद मिटाती है। जैसा जाना है, माना है, उसी तरह की आराधना करने वाले यथाख्यात चारित्र सम्पन्न साधक वीतरागी बनते हैं। इस वीतराग मार्ग का अनुसरण कराने वाली शास्त्र वाणी का स्वाध्याय आवश्यक है। आचार्य भगवन्त (पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमल जी महाराज) के शब्दों में "जो भी जीवन बनाने और सुधारने में सहायक हैं चाहे वह स्वाध्याय हो, चाहे सत्संग हो, चाहे ज्ञानगोष्ठी हो, चाहे साहित्य-साधना हो, सभी उपक्रम जीवन-निर्माण और समाज-सुधार के लिए आवश्यक हैं। विद्वत् परिषद्, व्यक्ति-समाज और राष्ट्र-निर्माण में मस्तिष्क और आँख का काम करती है।"

विचारों में जितनी पवित्रता होगी, आचार उतना ही श्रेष्ठ होगा। विचार की पवित्रता में आचार निर्मल होता ही है। जिसका आचरण किया

जाता है, वह आचार है। आचार के दो रूप भाई शिखरमल जी सुराणा ने आपके समक्ष रखे हैं। भगवान् की आज्ञा का पालन करना विशुद्ध आचार है। सामाजिक व्यवस्था को सामाजिक आचार के रूप में विद्वानों ने प्रस्तुत किया है। समाज को संत लाभान्वित करते हैं इसी तरह विद्वान् भी अपने ज्ञान से समाज को लाभान्वित करें, इस दृष्टिकोण को लेकर पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमल जी महाराज के इन्दौर चातुर्मास में सन् 1979 में प्रथम बार विद्वत्संगोष्ठी का आयोजन किया गया था। डॉ. नरेन्द्र भानावत, फकीरचन्द जी मेहता और कन्हैयालाल जी लोढ़ा जैसे विद्वानों का चिन्तन बना कि संत-समाज अपने पास आने वालों को लाभान्वित करता है, मार्गदर्शन देकर उनका जीवन-निर्माण करता है, पर विद्वान् लोग प्रचार के माध्यम से, साहित्य के माध्यम से, संगोष्ठियों के माध्यम से सामाजिक दृष्टिकोण को लेकर समाज में आचार की पवित्रता लाने में सहयोगी बन सकते हैं। यह क्रम विद्वत् समाज में अनेक वर्षों तक चला। पूज्य गुरुदेव की विद्यमानता में 1991 तक बराबर चलता रहा। 1991 के पश्चात् भी डॉ. नरेन्द्र भानावत की मौजूदगी में दो साल तक और चलता रहा, फिर व्यवधान आया। विद्वत् संगोष्ठी के विराम को हटाने के लिए फिर से प्रयास चालू हुए और अध्यात्म-चेतना वर्ष में गत वर्ष पाली चातुर्मास में फिर से विद्वत् परिषद् का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ।

पाली के पश्चात् जोधपुर में विद्वत् परिषद् का कार्यक्रम चल रहा है। संगोष्ठी में अध्यात्म, समाज और भ्रष्टाचार विषय रखा गया है। विषय कहने में जितना सरल है, उतना ही पालने में कठिन है। समाज में आचार की स्थापना करना सरल नहीं है। आचार का पालन कठिन है, क्योंकि मर्यादा विरुद्ध जितने भी काम चल रहे हैं उनकी बुराई बताकर, हानि समझाकर समाज उनसे कैसे दूर रहे, विकृति से समाज कैसे बचे, यह बहुत टेढ़ा काम है।

विद्वत् संगोष्ठी में आए विद्वान् विशद् विवेचन कर रहे हैं। विद्वान् चिन्तन-मनन करके, विषय की बारीकियों में जाकर समाज को राह दिखायें, उसके लिए कार्यक्रम के अनुसार सत्रों का निर्धारण किया गया है। कल सत्र चले थे, आज भी सत्र चलेंगे। तत्त्वचिन्तक प्रमोदमुनि जी ने अपना दृष्टिकोण रखा है। मुझे तो इतना ही कहना है कि सम्पदा मिलना पुण्यवानी का द्योतक है। जिसकी जितनी पुण्यवानी है उसे उतनी-उतनी सम्पदा मिलती है। प्रभुत्व बढ़ना, अनुकूल साधन मिलना, बाहर की सामग्री जुटाना अनन्त-अनन्त पुण्यवानी से होता है। उत्तराध्ययन सूत्र के तीसरे अध्ययन में जिन चार स्कन्धों का उल्लेख मिलता है, वे पुण्यवानी के द्योतक कहे गये हैं-

खेत्तं वत्थुं हिरण्णं च, पसवो दास-पोरुसं।
चत्तारि काम-खंधाणि, तत्थ से उववज्जए।।

-उत्तराध्ययन सूत्र 3/17

भगवन्त ने हिन्दी में इसका रूपान्तरण किया-

क्षेत्र वास्तु हिरण्य स्वर्ण, पशुदास अंगरक्षक होते।
ये चार जहाँ हो काम स्कन्ध, उस कुल में वे पैदा होते।।

पुण्यशाली जीव वहीं जाकर उत्पन्न होता है जहाँ खेत हों, आवास योग्य स्थान हों, पशुधन हों, दास-दासी हों। पुण्य से साधन मिलते हैं, पुण्य से सामग्री मिलती है, पुण्य से प्रभुत्व प्राप्त होता है, शक्ति मिलती है। शारीरिक शक्ति, बौद्धिक शक्ति, मानसिक शक्ति जैसे शक्ति के कई रूप हैं। शरीर का बल देखना हो तो चक्रवर्ती का देखें। आपने सुना होगा कि चक्रवर्ती के हाथ की साँकल पर चारों सेनाएँ लटक जायें फिर भी हाथ नीचे आना तो दूर, हिलता तक नहीं। वहीं चक्रवर्ती अपना हाथ खींच ले तो पकड़ी हुई चारों सेनाएँ लुढ़क जाती हैं। यह चक्रवर्ती का बल पुण्यशीलता से है। आचार्य की आठ सम्पदाएँ हैं, उनमें एक सम्पदा है- संग्रहपरिज्ञा। संग्रहपरिज्ञा में क्षेत्र का, संतों की संख्या का, अनुकूल स्थितियों का जो भी संग्रह है इस सम्पदा में

शुमार है। संग्रह करना न पाप है, न भ्रष्टाचार। संग्रह पुण्यवानी से होता है। हमारी जितनी-जितनी पुण्यशीलता है उतने-उतने अनुकूल साधन मिलते हैं, मिलेंगे। सम्पदा शालिभद्र के पास थी वह भ्रष्टता से नहीं, पुण्यशीलता से थी।

आपका आज का विषय है- भ्रष्टाचार। भ्रष्टाचार क्या है- इस पर विद्वान् अपना चिन्तन रख रहे हैं। मेरी दृष्टि से मिली सम्पदा का दुरुपयोग है भ्रष्टाचार। इसी प्रकार प्राप्त योग्यता, सामर्थ्य एवं बल का दुरुपयोग भी भ्रष्टाचार है। दुरुपयोग चाहे तन का है, मन का है, वचन का है, जिसके पास जो भी बल है उसका यदि दुरुपयोग हो रहा है तो भ्रष्टाचार है। तन का बल होता है, ऐसे ही धन का बल भी होता है, परिवार का भी बल होता है। सत्ता का भी बल कम नहीं है। प्राप्त सम्पदा का, प्राप्त बल का जहाँ दुरुपयोग है वहाँ भ्रष्टाचार है।

भ्रष्टता कितने प्रकार की होती है? आप सुन चुके हैं। मैं उन बातों को नहीं दोहराते हुए केवल इतना कहना चाहूँगा कि हर आचार में भ्रष्टता हो सकती है। नियम, कायदे-कानून और सिद्धान्तों से आप परिचित हैं। जो भी नियम हैं, मर्यादाएँ हैं, सिद्धान्त हैं उनका सम्यक् पालन हो। सम्यक् पालन स्वभाव है। स्वभाव में आने की बजाय विभाव में जाना भ्रष्टाचार है। विभाव में जाने के जितने भी साधन हैं वे सब भ्रष्टाचार में शुमार हैं। हमारी आत्म-समाधि जहाँ भी समाप्त होती है वह सब भ्रष्ट आचरण में समाहित है।

आचार में भ्रष्टता कैसे आती है? आचार में भ्रष्टता आती है विचार की भ्रष्टता से। विचारों में भ्रष्टता आयेगी तो आचरण भ्रष्ट होगा। इसके लिए दृष्टि की पवित्रता चाहिये। दृष्टि पवित्र नहीं तो विचार एवं आचार की निर्मलता नहीं आ सकती। शास्त्र की भाषा में कहूँ- बाहर का हर एक आचार और उसका पालन करके जीव नौग्रैवेयक तक चला जाये तो उसमें

कोई आश्चर्य नहीं, पर जब तक विचारों की पवित्रता नहीं होगी, तब तक जीव भवी नहीं बनता। ऊपर से हर नियम का सम्यक् पालन करते हुए भी अगर दृष्टि में परिवर्तन नहीं, तो कहना होगा वह बाहर का आराधक है, भीतर का विराधक।

हमारे यहाँ दर्शन-ज्ञान-चारित्र को मुक्ति का मार्ग कहा है। जब तक दृष्टि में पवित्रता-निर्मलता नहीं, आचार की शुद्धता नहीं आ सकती। आचार की निर्मलता के लिए विचार की पवित्रता चाहिये। आपने मुहावरा सुन रखा है- ''दृष्टि बदल गई तो सृष्टि बदलते देर नहीं लगती।''

दृष्टि बदलने के लिए बाहर के निमित्त की अनिवार्यता नहीं। फिर कह रहा हूँ- शास्त्र वाणी, विद्वान् संत ही नहीं, केवलज्ञानी तक भी हमें रास्ता ही दिखा सकते हैं, तारने में वे भी समर्थ नहीं हैं। भगवान् तारने वाले होते तो महावीर प्रभु सबसे पहले गौतम को तारते। गणधर गौतम स्वामी का ज्ञान, उनकी श्रद्धा-भक्ति और समर्पण क्या कम था? उनकी पुण्यशीलता थी, साधना थी, ज्ञान था, सब कुछ होते हुए भी भगवान् महावीर स्वामी के रहते वे केवलज्ञानी नहीं बन सके। आप जानते हैं, आपने सुन रखा है कि भगवान् महावीर के निर्वाण पश्चात् गौतम स्वामी को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। मुक्ति के लिए विचारों की पवित्रता चाहिये तो आचरण की निर्मलता भी चाहिये।

आज कई कानून हैं। नित नये कानून बन रहे हैं। चाहे जितने कानून बन जायें, लोकपाल का विधेयक भी बन जाये, उससे क्या होगा? पहले से कई अधिकारी हैं, कई और अधिकारी बढ़ जायेंगे उससे भ्रष्टाचार मिट जायेगा, कहा नहीं जा सकता। भ्रष्टाचार मिटता है दृष्टि बदलने से। भ्रष्टाचार मिटता है आचार की शुद्धि से। आप गृहस्थों में, समाज में आम लोगों में ही नहीं, साधक वर्ग भी भ्रष्टाचार से पूर्ण मुक्त नहीं है। साधना करने वाले भी जब तक यथाख्यात चारित्र नहीं प्राप्त करते, तब तक उनका

भी भ्रष्ट आचरण रह सकता है।

हम (साधु) भ्रष्टाचार से मुक्त होने की राह पर चल रहे हैं। पूर्ण मुक्त हो गये हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। आप श्रावक हैं तो आपको परिवार की, समाज की, राष्ट्र की सेवा में भागीदारी निभानी है। यहाँ यह ध्यान में रखना होगा कि हमारी दृष्टि में पवित्रता रहे, आचरण में निर्मलता रहे। दृष्टि की पवित्रता में छोटे-बड़े का भेद नहीं किया जा सकता। एक चक्रवर्ती की दृष्टि पवित्र हो सकती है तो एक भिखारी में भी दृष्टि की पवित्रता रह सकती है। बाहर का संग्रह पुण्यवानी से है तो आचरण की पवित्रता व्यक्ति की दृष्टि पर निर्भर है। हमारे देश की आचरण की पवित्रता जगत् विख्यात थी। एक समय ऐसा भी था जब भारत में जवाहरात की दुकानों पर भी ताले नहीं लगते थे। रास्तें में छोटी-मोटी चीज नहीं, रत्नों की पोटली भी मिल जाती थी तो उसे भी मालिक तक पहुँचाया जाता था। वह भारत की आदर्श स्थिति थी। भारत उस समय जगत्गुरु के नाम से विख्यात था। भारत का नाम यहाँ के निवासियों के आचरण से था। आज क्या स्थिति है?

आज की स्थिति आप देख रहे हैं, अनुभव भी कर रहे हैं। आज सुख प्राप्ति के लिए भ्रष्टता बढ़ती जा रही है। अपने सुख के लिए दूसरों को दुःख देना भ्रष्टाचार का मूल है। आप इस भ्रष्टाचार को मिटाना चाहें, हटाना चाहें, निर्मूल करना चाहें तो आचार्य भगवन्त (पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमल जी महाराज) के प्रिय भजन की कड़ी याद करें-

अपने दुःख सब सहूँ,
किन्तु पर दुःख सहा न
जाय।
दयामय ऐसी मति हो जाय।।

हमारी भावना में दूसरों का दुःख खटकने लगे तो फिर भ्रष्ट

आचरण के बजाय श्रेष्ठ आचरण ही होगा। आपने देखा होगा- काले बादल सफेद हो जाते हैं। बादल समुद्र से पानी ग्रहण करते हैं तब तक काले दिखाई देते हैं। बरसने के बाद काले दिखने वाले बादल सफेद हो जाते हैं, साफ दिखाई देते हैं। पानी बरसा कर दूसरों के दुःख दूर करके अथवा उनका उपकार करके वे निर्मल सफेद हो जाते हैं। यही बात है- हम दूसरों के दुःख दूर करके आगे बढ़ सकते हैं। यही अनुकम्पा है। यही सम्यक्त्व है। हम इस आचरण का पालन करें। आचार-धर्म का पालन करते-करते हम वीतरागता प्राप्त कर सकते हैं।

आपने विद्वत् संगोष्ठी में बहुत कुछ सुना है, बहुत कुछ सुनेंगे। आप सुनकर ही न रहें, उसे आचरण में लाएँ। टन भर सुनें, मण भर ग्रहण करें और कण भर भी धारण करेंगे तो भी एक-एक बूँद धारण करते-करते बहुत कुछ धारण कर सकेंगे। जरूरत है एक-एक आचार का निर्मल पालन करते हुए हम-सब अपने आपको भ्रष्टाचार से मुक्त करके जीवन को पावन बनाने का संकल्प लेकर यहाँ से जाएँ। अपनी लोभवृत्ति और भोगवृत्ति मिटाकर, इच्छाओं और कामनाओं को हटाकर स्वभाव में आने की दृष्टि बनायेंगे तो विद्वत्संगोष्ठी का यह आयोजन सफल हो सकेगा।

जोधपुर
6 नवम्बर, 2011

नारियाँ शीलवान, गुणवान और संस्कारवान बनें

स्व-स्वरूप में रमण करने वाले सिद्ध भगवन्त, संसार को सिद्धि की ओर ले जाने वाले अरिहन्त भगवन्त तथा साधना को स्वीकार कर सिद्धि को पाने वालों की मनःशक्ति को बनाने वाले संत भगवन्तों के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन!

बन्धुओं!

तीर्थंकर भगवान् महावीर की आदेय-अनमोल वाणी में साधना के शिखर पर पहुँचने वाले व्यक्तियों में जितना स्थान नर का है, उतना ही स्थान नारी का भी है। जितनी श्रेष्ठता पुरुष प्राप्त कर सकता है, उतनी श्रेष्ठता नारी भी प्राप्त कर सकती है। बढ़कर कहूँ- शायद अधःपतन स्थान में जहाँ पुरुष जा सकता है वहाँ नारी जा सकती है। नारी की महिमा है, गरिमा है, स्तुति पूर्ण वर्णन हैं, फिर भी कुछ लोग हैं जो जिज्ञासा करते हैं कि नारी को राक्षसी क्यों कहा जाता है? नारी नागिन की तरह क्यों कही जाती है? नारी को क्यों बंधन में रखा जाता है? वह क्यों नहीं स्वतन्त्र रह सकती है? इस तरह के प्रश्न सामने आते हैं, जिज्ञासाएँ की जाती हैं। इसी के बारे में आपके सम्मुख कुछ विचार रखे जा रहे हैं।

आज की नारियाँ साक्षर हैं। साक्षरता में नारियों का स्थान पुरुषों से कम नहीं है। जिज्ञासा का समाधान करते हुए, शास्त्र वर्णन करता है, संत-मुनिराज भी कहते हैं और कई दृष्टान्त व रूपक कहने-सुनने में आते

हैं। त्रिलोक्य पूज्य तीर्थंकर भगवन्तों को जन्म देने वाली नारी को, पुरुष जितना सम्मान ही नहीं उससे ज्यादा सम्मान उनकी माता को मिला। सम्मान में पुरुषों के द्वारा नहीं, किन्हीं राजाओं-महाराजाओं द्वारा नहीं बल्कि इन्द्रों के द्वारा मिला। चौसठ इन्द्र तीर्थंकरों को वन्दन करने के पूर्व, तीर्थंकर भगवान् की माता को वन्दन करते हैं।

भारतीय संस्कृति में, हमारी प्रचलित परम्परा में पुरुष के आगे शीलवती नारी का नाम रखा गया है। कोई व्यक्ति रामसीता नहीं, सीताराम बोलता है। श्यामराधा नाम आपने नहीं सुना होगा। हर व्यक्ति के मुँह से राधेश्याम नाम निकलता है। पहले शंकर है या गौरी? आप सुनते और कहते हैं- गौरीशंकर। गौरीशंकर नाम तो है, शंकर गौरी नाम शायद ही सुनने में आए। पुरुष के पहले नारी का नाम आना क्या नारी का सम्मान नहीं है?

संसार में अच्छाइयाँ होती है तो बुराइयाँ भी होती हैं। अच्छाइयों के लिए गुणगान हैं, बुराइयों के लिए तिरस्कार। हर युग में राम हुए तो रावण भी हुए हैं। कृष्ण और कंस दोनों हुए हैं। आप एक-दो या पाँच-दस ही नहीं, जितने चाहो उतने नाम गिनाए जा सकते हैं। सीता जैसी सती हुई तो शूपर्णखा जैसी नारी भी? जो अच्छा है वह नमस्करणीय है, प्रशंसनीय है। अच्छे के गुणगान गाए जाते हैं। भगवती स्वरूप जैसा सम्बोधन नारी के लिए सुनने को मिलता है।

गुणगान किसके होते हैं? व्रती-महाव्रती के गुणगान हैं, संयम के गुणगान हैं, आचारवान के गुणगान हैं। व्रत-नियम धारण करने वाले आज तक गाये जाते हैं। नारी हर समस्या का समाधान दे सकती है, नारी स्वयं सुशील होती है, स्नेह-सौहार्द उसके जीवन में रचा-पचा होता है। नारी संस्कार प्रदात्री है। नारी संतान को जो संस्कार दे सकती है, नर वैसे संस्कार चाहते हुए भी नहीं दे सकता।

प्रकृति या स्वभाव बदलना किसी के हाथ में नहीं है। नारी में स्नेहशीलता होती है, वह संस्कार दे सकती है। नारी जन्मदात्री है। गर्भ में रहे शिशु को वह संस्कार दे सकती है, जब कि पुरुष गर्भ धारण करता ही नहीं, तो संस्कार जो गर्भ में मिलते हैं पुरुष से प्राप्त हो ही नहीं सकते। पुरुष संस्कार भी देगा तो बच्चे के जन्म के पश्चात् लेकिन नारी गर्भ में बच्चे को संस्कार दे सकती है, देती है। माता गर्भ में बच्चे को वीर बना सकती है, दानी बना सकती है, त्यागी-वैरागी बना सकती है। अभिमन्यु ने गर्भ में रहते हुए चक्रव्यूह के भेदन की कला सीख ली। माता बच्चे को सिखाने में, संस्कार देने में, उसके सद्गुणों में वृद्धि करने में कभी थकती नहीं। पिता थक जाता है, किन्तु माँ बार-बार बोलते-कहते-सिखाते थकती नहीं। माँ संस्कार देती है, सार-सँभाल करती है, परवरिश करती है। यह बात मेरी ही है, ऐसा नहीं। शास्त्र कह रहा है- हजार गुरु मिलकर भी जो संस्कार नहीं दे सकते, माता दे सकती है। कल जिसके हाथों ने पिता को कैद में डाला, आज वही सम्राट श्रेणिक का पुत्र कोणिक, कुल्हाड़ी लेकर पिंजरा तोड़ने जा रहा है। इसके पीछे प्रेरणा किसकी? माँ की। भारतीय दर्शन में पुरुष के बजाय नारियों को सत्ता दी गई है। आप चाहे लक्ष्मी कहें, सरस्वती कहें और किसी नाम से कहें, जितनी भी नारियों का उल्लेख है, पुरुष से नारी का स्थान पहले दिया गया है। शायद, संसार के कामों में जितना पुरुषों को याद नहीं किया जाता, नारियों को पुरुषों की अपेक्षा अधिक याद किया जाता है। नारियों का नाम, नारियों का स्मरण, नारियों का सम्मान ज्यादा है।

आज आपका महिला सम्मेलन है। आपकी श्राविका मण्डल की सभा है। श्राविका मण्डल की सभा में नारी का सबसे पहला गुण, संस्कार प्रदात्री के रूप की व्याख्या की जानी चाहिए। बच्चा चाहे गर्भ में है, पालने में है, घर-आँगन में है, संस्कारवान है तो वह वैरागी बन सकता है। नारी चाहे तो

बच्चे को पुरुषत्व की ओर ही नहीं, देवत्व की ओर ले जा सकती है।

आज माताएँ बच्चों को पढ़ाने के लिए सक्रिय रहती है। पढ़ाई करा कर, डिग्रियाँ प्राप्त कराने की मानो होड़-सी लगी हुई है। आप नोट कर लें- पढ़ा-लिखा साक्षर होता है, वह यदि बदल जाय तो राक्षस बनते देर नहीं लगती। वैर जाग गया, विपरीत भावना बन गई तो वह राक्षस बन सकता है। वह परिवार और समाज को ही नहीं, देश को भी जलाने वाला बन सकता है। स्कूल और कॉलेज की डिग्रियों से शांति-सौहार्द नहीं मिल सकता। आप शांति चाहते हैं तो बच्चों को बचपन से संस्कारित करें। बच्चा सदाचारी हो, सत्यवादी हो, शीलवान हो, दयावान हो, ये बच्चे के आवश्यक गुण उसमें होने ही चाहिए। बच्चा गुणवान होगा, संस्कारवान होगा तो आपको शांति मिलेगी, परिवार को शांति मिलेगी।

आज माँ-बाप बच्चों को क्या आशीर्वाद देते हैं? "तू बड़ा सेठ बनना, तू बड़ा अधिकारी बनना, लम्बी उम्र हो तेरी और तू सुखी रहकर हमको प्रसन्न रखना।" ये मोह है या बच्चों के लिए प्रगति-पथ पर बढ़ने का आशीर्वाद?

आपकी भावना में स्वार्थ है, संस्कारों का वपन नहीं। संस्कार देने पर विकृतियाँ दूर होती है संस्कार नारी ही दे सकती है। पुरुष संस्कार देने का प्रयास भी करें तो नारी की तुलना में पुरुष का प्रयास कम ही रहेगा। आप चाहे जहाँ देख लीजिए। घर हो या स्कूल, सब जगह नारी संस्कार देने में आगे रही है। सोते हुए बच्चे को उठाना भी हो तो नारी एक-दो नहीं, दस बार उठाने का प्रयास करती है फिर भी बच्चा नहीं उठता तो इसे रोष नहीं आएगा। बच्चे को खड़ा करना हो तो पचास बार खड़ा करेगी। पुरुषों को कह दिया जाए तो...? पुरुष दो-चार बार तो खड़ा करेंगे, फिर स्वयं थक जाऐंगे। आप बच्चे को आवाज दो, बच्च दो-तीन आवाज सुनकर भी नहीं आए तो गुस्सा आएगा या

नहीं? माँ चार-पाँच बार कहे, बच्चा नहीं आएगा तो छट्ठी बार आवाज देगी, सातवीं बार फिर पुकारेगी, लेकिन क्रोध नहीं करेगी।

माता का स्वभाव प्रकृतिजन्य है। नारी में स्नेह है, सौहार्द है, समता है। ये गुण बनावटी नहीं, दिखावटी नहीं। सरल स्वभावी होती है इसलिए पारिवारिक व्यवस्था नारी कर सकती है, पुरुष नहीं कर सकता। बच्चों को स्नेह और बुड्ढों की सेवा नारी कर सकती है, पुरुष चाहते हुए भी नारी के समान न स्नेह दे सकता है, और न सेवा ही कर सकता है।

आज सम्बन्धों को लेकर झगड़े होते हैं। मैनासुन्दरी को कोढ़ी के संग दे दिया तब भी सहर्ष स्वीकार किया। आज शादी-विवाह कैसे होते हैं? मैं कहूँ -शादी विवाह कलेण्डर की तरह बदले जाते हैं, समाज उस पर कभी सोचता तक नहीं। पश्चिमी देशों में पति-पत्नी के सम्बन्धों को लेकर दयनीय स्थिति सुनने को मिलती है, क्या वैसी स्थिति हमारे यहाँ तो नहीं हो रही है? पश्चिमी देशों में पति-पत्नी चार-पाँच साल साथ में निकाल दे, फिर भी सम्बन्ध विच्छेद करने की स्थिति क्यों आती है? उनके बच्चों का और परिवार का क्या हाल होता है जब सम्बन्ध-विच्छेद हो जाते हैं? बच्चों को कौन सँभाले? क्या पुरुष बच्चों को सँभाल सकता है? दो-तीन साल का बच्चा बिना माँ के सँभलता नहीं है।

पुराने जमाने में लड़के-लड़की कुँवारे रह जाय, यह सुनने में नहीं आता था। आज तीस-पैंतीस साल के लड़के-लड़कियाँ कुँवारे बैठे मिल जाते हैं। माता-पिता ढूँढ रहे हैं किन्तु सम्बन्ध नहीं बैठता। बड़ी उम्र के लड़के हो या लड़कियाँ, वे किस मायूसी के साथ कुंठाग्रस्त वातावरण में रहते हैं, उनका कैसा जीवन है? उन्हें चैन नहीं, शांति नहीं, समाधि नहीं, सुख नहीं। यह कैसा जीवन है?

आज संस्कारों की जरूरत है। आज शील की आवश्यकता है।

शास्त्र कहता है- नारी यदि ब्रह्मचारिणी है तो सर्वश्रेष्ठ है, सर्वपूज्य है। क्यों? क्योंकि वह सती है, साध्वी है। सम्बन्ध हो गया, पर लड़का-लड़की नहीं हुए तो भी बिना संतान वाली नारी भी पवित्र है, पूज्या है, पतिव्रता है। कुछ लोग हैं, जो विधवा को हेय समझते हैं, विधवा का मुँह देखना नहीं चाहते, विधवा सामने आ जाय तो अपशकुन मानते हैं, पर ऐसा नहीं है। नारी बंध्या है तब भी पूजनीया है, विधवा है तब भी आदरणीया है। कारण नारी शीलवान है, पवित्र है तो कच्चे धागे से चालनी में कुँए से पानी निकाल सकती है। नारी पवित्र है तो अग्नि भी पानी रूप में परिवर्तित हो सकती है, साँप फूल की माला बन सकता है।

आपका आज श्राविका मण्डल का सम्मेलन है। मैं तीन सूत्र सामने रख रहा हूँ। पहली बात है- दायित्व की। आप जहाँ है, जिस स्थिति में हैं, बच्चों को संस्कारित करें। उन्हें शीलवान और गुणवान बनाएँ। आप स्वयं अनैतिक आचरण से बचें। आप नोट कर लें- अनैतिक आचरण के कारण, रावण आज तक जलाया जाता है। रावण ने सीता का शील खण्डित नहीं किया था, केवल अपहरण किया था। मात्र अपहरण के कारण से रावण आज दिन तक जलाया जाता है। आज छोटे-से-छोटे बच्चे को पूछ लीजिए, वह कहता है कि मैं रावण को जलाने जाता हूँ। क्या छोटे बच्चे में रावण को मारने या जलाने की क्षमता है? रावण को मारने के लिए राम चाहिए।

महिलाएँ शीलवान हों, संस्कारवान हों, गुणवान हों। शील महिलाओं का शृंगार है। शील एक ऐसा गुण है कि शील के प्रभाव से धरती हिल जाय। नारी जिस किसी जाति की हो, वह चाहे लोढ़ा हो, मेहता हो, सिंघवी हो, काँकरिया हो, अबानी हो या किसी जाति की ही क्यों न हो, नारी शील के कारण पूजी जाती है। आपने सुन रखा है- सीता ने राम को ढूँढने में मदद मिले, इस भावना से अपने पहने हुए जेवर एक-एक कर गिरा दिए थे। राम

को जेवर मिले भी। लक्ष्मण से पूछा- देखकर बता, क्या ये तेरी भाभी के हैं? लक्ष्मण का जवाब था- मैंने सीता माता के सदा पैर ही देखे हैं। पैरों के ऊपर कभी मेरी नजर गई ही नहीं इसलिए मैं कुण्डल को कैसे जानूँ? सीता ने राम के अलावा किसी पुरुष का स्पर्श तक नहीं किया। तन-मन-वचन से ही नहीं, सपने में भी राम के अलावा सीता ने कभी किसी पर-पुरुष के लिए सोचा तक नहीं। सीता की पवित्रता के कारण अग्नि परीक्षा के समय उसके मुँह से निकला- "अगर मैंने मन-वचन-काया से शील का पालन किया हो तो अग्निदेव मेरी रक्षा करना।"

आज महिलाओं की सभा हैं। आप शीलवान बनें, आपके शील से संसार, स्वर्ग बन सकता है। शीलवान होने के साथ स्नेह का वातावरण बनाए रखना आप महिलाओं का दायित्व है। नारी सबके प्रति स्नेह बनाए रखती हैं। एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक जितने जीव हैं सबको अपना मानने वाली नारी पूज्या होती है। आज सबके साथ स्नेह का भाव कम होता जा रहा है। घर-परिवार वालों के प्रति स्नेह है, किन्तु नौकरों के प्रति वह स्नेह नहीं तो सेठ का भोजन अलग और नौकर का भोजन अलग बनेगा। सेठ-मुनीम का एक-सा खाना हो। मेरे कहने का मतलब केवल खाने की बात से ही नहीं है किन्तु हर व्यवहार में सद्व्यवहार चाहिए। सेठ के हाथ से स्याही की दवात गिर जाय तो प्रतिक्रिया होती है- स्याही गिरना शुभ है और वही मुनीम के हाथ से गिर जाय तो सेठ कह देता है- तुम्हें दिखता नहीं क्या? सेठ मुनीम को उपालम्भ देता है और खुद के हाथ से स्याही गिर जाय तो शुभ शकुन मानता है, इस तरह के व्यवहार को सद्व्यवहार नहीं कहा जा सकता।

कहना या बोलना सरल है, पर आत्मीय व्यवहार रखना उतना सरल नहीं है। नारी चाहे तो सरस्वती बनकर संसार के सभी व्यक्तियों को शिक्षित कर सकती है। प्रत्येक समस्या का समाधान निकाल सकती है। संक्षेप

में कहूँ- आप महिलाएँ अपने-अपने दायित्व का निर्वहन करें। दायित्व निभाना बड़ी चीज है। संसार के व्यवहार में भगवान् आदिनाथ से लेकर भगवान् महावीर तक नारियों का दायित्व और भूमिका पुरुषों से अधिक रही है। नारी देहली-दीपक बनकर इस घर को और उस घर को रोशन करती है। आगे बढ़कर कहूँ- आप तीर्थंकर भगवन्तों के शासन देख लीजिए। शीलवती नारियाँ दुगुणी है, ज्यादा है। आप देख लीजिए संत कितने हैं और सतियाँ कितनी हैं? पुरुषों की तुलना में नारियाँ संख्या में ज्यादा है। आज तो हर क्षेत्र में नारियाँ पुरुषों की बराबरी ही नहीं, आगे बढ़ रही हैं। नारियाँ शीलवान, गुणवान, संस्कारवान बनें, यही मंगल मनीषा है।

जोधपुर,

16 नवम्बर, 2011

मोह जीतने के लिए है- स्वाध्याय, सत्संगति और आत्मचिन्तन

स्व-स्वभाव में रमण करने वाले सिद्ध भगवन्त, ज्ञान गुण को साकार करने वाले अरिहन्त भगवन्त तथा ज्ञान की साधना को प्रधानता देकर स्वाध्याय की साधना, संयम की आराधना करने वाले संत भगवन्तों के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन!

बन्धुओं!

"मोह सब कर्मों का राजा हैं" इस विषय पर आप बात सुन रहे थे। प्रश्न है- मोह को तोड़ा कैसे जाये? आचार्य भगवन्त (पूज्य गुरुदेव श्री हस्तीमलजी महाराज) के शब्दों में कहूँ- मोह तोड़ने के लिए स्वाध्याय, सत्संगति और आत्मचिन्तन चाहिए। मोह-माया तोडने के लिए तीन उपाय बताए जा रहे हैं। पहला उपाय है- स्वाध्याय। दर्द भरे शब्दों में तत्त्वचिन्तक प्रमोदमुनिजी ने बहतु-कुछ कह दिया। मैं दर्द के साथ कुछ कड़वी बात कहूँ- आचार्य भगवन्त ने जीवन भर स्वाध्याय के लिए जोर दिया, उनके भक्त क्या कर रहे है? मैं बोलूँ या आप चिन्तन कर लेंगे?

क्या आपने खाना छोड़ दिया? क्या आपने सोना छोड़ दिया? कमाना छोड़ दिया? परिवार का पोषण छोड़ दिया? क्या-क्या छोड़ा है? आपने न खाना छोड़ा है, न सोना। कमाना आपका ज्यों का त्यों चल रहा है, परिवार की परवरिश में भी कोई कमी नहीं है। आप सब कुछ करते हैं, कर रहे हैं

तो फिर स्वाध्याय करना क्यों छोड़ दिया?

कहने में तो आप और हम, मोह तोड़ने की बात कहते हैं, पर काम मोह जोड़ने का करें तो? आपको चातुर्मास के चार महिने ही नहीं, छः-सात महिने हो गए सुनते-सुनते। इतना सुनने के बाद क्या आपकी भावना स्वाध्याय करने की जगी है? कितने भाई-बहिन हैं जो पन्द्रह मिनट स्वाध्याय किए बिना अन्न-जल ग्रहण नहीं करेंगे? हैं नियम ऐसा? नियम नहीं तो सुनने और सुनाने का क्या फायदा?

आप सुनते हैं लेकिन सुनने के लिए नहीं। आप यह सोच कर कि चातुर्मास करवाया है, व्याख्यान में जाकर नहीं सुनेंगे तो अच्छा नहीं लगेगा। आपका सुनना चातुर्मास की लाज रखने के लिए है, रिवाज निभाने के लिए है तो कहना होगा- आपका सुनना जीवन बनाने के लिए नहीं है, केवल और केवल दिखाने के लिए है।

स्वाध्याय करते-करते धर्मदासजी महाराज जग गए। स्वाध्याय करते-करते धन्नाजी महाराज जग गए। स्वाध्याय से कई लोगों में जागृति आई है। स्थानकवासी परम्परा का इतिहास जानने वाले, युग-प्रधान आचार्य धर्मदासजी महाराज के नाम से परिचित हैं। आपको जैसे गुरु की संगति मिल रही है, उनको वैसे गुरु की संगति नहीं मिली। फिर वे कैसे जगे? उनके जगने का कारण था- स्वाध्याय। आज भी एक परम्परा में रिवाज है कि पन्द्रह मिनट स्वाध्याय किए बिना अन्न-जल ग्रहण नहीं करना।

दूणी के पास एक गाँव है- आवाँ। वहाँ दिगम्बर परम्परा के ताराचन्दजी बगेरवाल स्वाध्यायी थे, नित्य-प्रति स्वाध्याय करते थे। वे रिवाज के लिए नहीं, मान्यता निभाने के लिए नहीं किन्तु स्वाध्याय करते-करते उनका चिन्तन चला और उनको वैराग्य आ गया। उनका पढ़ना, पढ़ने के लिए नहीं, किन्तु आत्म-जागृति के लिए था।

आज लाखों बच्चे पढ़ते हैं। बहुत से बच्चे-बच्चियों का, पढ़ने के लिए पढ़ना नहीं होता, उनका पढ़ना डिग्री लेने के लिए होता है। डिग्री लेने के लिए जो पढ़ता है, डिग्री मिल जाने के बाद उसका पढ़ना क्यों छूट गया? कुछ हैं जो शास्त्रार्थ के लिए भी पढ़ते हैं। शास्त्रार्थ हो गया, पढ़ना बन्द। पर, जो पढ़े हुए को जीवन में उतारने के लिए पढ़ते हैं उनका पढ़ना बन्द नहीं होता। उनका शास्त्र-स्वाध्याय निरन्तर चलता रहता है।

ताराचन्द जी बगेरवाल को शास्त्र-स्वाध्याय करते-करते वैराग्य आ गया। उन्होंने निश्चय कर लिया- अब, मुझे घर में नहीं रहना। उनके दो लड़के थे। एक का नाम था- भुवन, दूसरा था- नन्दलाल। ताराचन्दजी ने अपने पुत्रों के सामने बात रखी कि "अब तुम घर-गृहस्थी सँभालो। मुझे दीक्षा लेनी हैं, मैं दीक्षा लूँगा।" पिता ने बच्चों के सामने कहा- "भटकते हुए मुझे अनादि काल हो गया, अब मुझे नहीं भटकना। भटकने से मेरी आत्मा में तड़फन है।" पुत्रों ने कहा- "पिताश्री ! आप भटकना नहीं चाहते, यह अच्छी बात है। आप हमको इस भटकन में छोड़कर क्यों जाना चाहते हैं?" दोनों बच्चों ने अपना अभिमत बताते हुए स्पष्ट कर दिया कि जहाँ आप, वहाँ हम। आप दीक्षित होते हैं तो हम भी दीक्षा लेंगे, साथ चलेंगे। बाप-बेटे तीनों घर पर पहुँचे। ताराचन्दजी ने अपनी पत्नी से कहा- "मैं दीक्षा लेने को जाता हूँ।" पिता की बात पूरी होने पर लड़कों ने भी कह दिया कि हम भी पिताजी के साथ दीक्षित होने जा रहे हैं।

आप जरा अन्दाज तो करिये- बाप बेटे दीक्षा लेने की बात कहें तो माँ की क्या हालत हुई होगी? माँ ने तब कहा- "फिर मेरा कौन?" पत्नी ने पतिदेव से कहा- "आप जाते हैं तो जायें किन्तु बच्चों को यहाँ छोड़ दें। अगर बच्चे जाना चाहें तो आप यहाँ रुक जायें। मेरे लिए कोई तो सहारा चाहिये?" ताराचन्दजी ने कहा- "मैं तो दीक्षित होने जाऊँगा ही। तू तेरे

बच्चों को समझा सकती है तो समझाकर रोक ले।" माता ने बच्चों को रोकने का भरसक प्रयास किया पर बच्चे टस से मस नहीं हुए।

मेरे कहने का तात्पर्य है कि स्वाध्याय करते-करते ताराचन्दजी को वैराग्य आ गया। आप में से कई स्वाध्यायी हैं, आपको सत्संग का सुयोग भी मिल रहा है, अभी आप सत्संग सेवा में बैठे हैं इतना सब-कुछ होते हुए भी आपमें से किसी को वैराग्य आया क्या?

आप अपना जवाब नहीं दे रहे हैं। मैं 174 साल पहले की बात कह रहा हूँ। यह बात है वि.स. 1894 की। आज वि.स. 2068 है। यह उस समय की बात है जब एक पैसे में पेट भरता था। भूँगड़े खाकर नहीं, जलेबी खाकर पेट भरता था।

दो रुपये लेकर पिता और दो पुत्र, तीनों घर से निकल गए। उनके समक्ष प्रश्न था- दीक्षा कहाँ लें। गुरु किसे बनाएँ, गुरु कहाँ मिलेगा?

उनको न गुरु का सुयोग मिला और न ही गुरु की जानकारी ही थी। आपको यदि वैराग्य आए तो आपके गुरु हैं। आपको पूछ लिया जाय तो आप बता भी देंगे कि दीक्षा लेंगे तो इस परम्परा में, अमुक गुरु के पास में। अभी तो आप गुरु सान्निध्य में वीतराग वाणी सुनते हुए सामायिक-साधना में बैठे हैं पर यदि आप नींद में भी हों और कोई आपसे गुरु का नाम पूछे तो बता देंगे कि ये मेरे गुरु हैं। पर, ताराचन्दजी और उनके दोनों बेटों को पता नहीं कि दीक्षा कहाँ लें, गुरु किसे बनाएँ?

समस्या के समाधान में बाप-बेटे एक चातुर्मास में कहीं दो दिन, कहीं चार दिन रहकर गुरु की खोज करते रहे। खोज करते-करते पर्युषण पूरे हो गए। आश्विन का महिना आ गया। उन्होंने देखा और अनुभव किया, तो पाया कि कहीं आडम्बर है तो कहीं ज्ञान नहीं, कहीं क्रिया नहीं तो कहीं संतों में प्रकृति का मेल नहीं।

गुरु की खोज में घूमते-घूमते वे पाली पहुँचते हैं। पाली में वे पूज्य धीरजऋषि के चरणों में उपस्थित हुए। वहीं व्याख्यान सुना। कुछ घंटे रहे। मन लग गया। सोचा, यहाँ रहा जा सकता है। दो दिन रुकने के बाद उन्होंने मुनिश्री के समक्ष दीक्षा लेने की भावना रखी। स्वामीजी महाराज ने उनकी दिनचर्या देखी, उनकी वैराग्य भावना परखी और पूज्य श्री गुमानचन्द्रजी महाराज से आज्ञा मँगवाई। आज्ञा मिल जाने पर आज ही के दिन उनकी दीक्षा हो गई।

दीक्षा लेकर नवदीक्षित ताराचन्दमुनि स्वाध्याय, ध्यान और आत्मचिन्तन में लग गए। उस समय शायद ऐसी परिस्थितियाँ नहीं थी, जो आज है। मुझे खेद के साथ कहना पड़ रहा है कि दिन भर में पचासों बार मांगलिक सुनानी पड़ती है। कुछ तो ऐसे भक्त भी हैं जो बड़ी मांगलिक सुनाने की बात कहते हैं। कई हैं जो आते ही कहते हैं- बाबजी! मांगलिक फरमाओ। कुछ हैं जो अपना परिचय देते कहते हैं कि मैं अमुक जगह रहता हूँ, अमुक जगह से आया हूँ, मुझे मांगलिक सुनाओ। कुछ ऐसे भी आते हैं, जो आने के साथ कहते हैं- मैं बीमार हूँ, मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है, आप मांगलिक सुनाओ। जो बीमार हैं या जिनका स्वास्थ्य ठीक नहीं है, उन्होंने कहीं महाराज को डॉक्टर तो नहीं समझ लिया? मुझे इतना ही कहना है कि हमारे भक्तों ने महाराज को मांगलिक देने की मशीन तो नहीं मान लिया?

मेरी बात कड़वी लग सकती है। ताराचन्दजी ने और उनके दोनों पुत्रों ने दीक्षा ले ली। ताराचन्दजी तपस्वी संतरत्न थे। नन्दलालजी तार्किक संत थे। उस समय स्वाध्याय के लिए लिखे हुए शास्त्र कम मिलते थे, टब्बा चूर्णी के माध्यम से स्वाध्याय किया जाता था। आज हमारे स्वाध्याय में न जाने कितनी बार व्यवधान आता है। ज्ञान करने वालों को विघ्न-बाधाओं का सामना करना होता है। हमारे श्रावक स्वयं तो स्वाध्याय करते नहीं और हम

जो स्वाध्याय करना चाहते हैं, उनको सहयोग देने के बजाय बाधा पहुँचाने वाले लोग ज्यादा हैं। मैं कठोर शब्दों में इसलिए कह रहा हूँ कि आप हमारी दिनचर्या में सहयोगी बनें। आप स्वयं स्वाध्याय करें, सत्संगति में रहें, आत्मभाव जगाएँ। जोधपुर का यह चातुर्मास अच्छा रहा, यह बात हर आदमी से सुन रहा हूँ पर आप अपना चिन्तन करें कि आपने चातुर्मास का सुयोग पाकर क्या किया?

आपको कई बार प्रेरणा की जा चुकी है, आज फिर से मैं याद दिला रहा हूँ कि चातुर्मास पश्चात् भी हर सामायिक-स्वाध्याय भवन में प्रतिदिन, सामायिक-स्वाध्याय के साथ, संवर-साधना चले। आपके पास जो भी स्थानक हैं, चाहे पावटा हो या शक्तिनगर, नेहरू पार्क हो या घोड़ों का चौक, हाऊसिंग बोर्ड का स्थानक हो या महामन्दिर का ढालिया, जो भी धर्म स्थान आपके पास है वहाँ जाकर धर्म-क्रिया करने का रूप रहेगा तो हर धर्म-स्थान हरा-भरा नजर आएगा। धर्म स्थान में धर्म-साधना करने वाले लोग पहुँचते रहेंगे तो लोगों को समझ में आएगा कि यहाँ चातुर्मास हुआ था। कई भाई प्रयास कर भी रहे हैं लेकिन प्रयास करने वाले थोड़े हैं, मनुहार करवाने वाले ज्यादा हैं। आप सामायिक, स्वाध्याय, सँवर जो भी क्रिया करें वह मोह को जीतने के लिए होनी चाहिए। आप मोह जीतने का प्रयास करेंगे तो आपका सुनना और हमारा सुनाना सार्थक होगा।

जोधपुर

8 नवम्बर 2011

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
के विविध सेवा सोपान

जिनवाणी हिन्दी मासिक पत्रिका का प्रकाशन

जैन इतिहास, आगम एवं अन्य सत्साहित्य का प्रकाशन

अखिल भारतीय श्री जैन विद्वत् परिषद् का संचालन

उक्त प्रवृत्तियों में दानी एवं प्रबुद्ध चिन्तकों के रचनात्मक सक्रिय सहयोग की अपेक्षा है।

सम्पर्क सूत्र

मंत्री

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

दुकान नं. 182 के ऊपर, बापू बाजार

जयपुर-302003 (राजस्थान)

दूरभाष : 0141-2575997

फैक्स : 0141-4068798 ई-मेल : sgpmandal@yahoo.in